कर्मकारक के आदर्श वाक्य

1. गाँव के दोनों ओर नदी बहती है।	1. ग्रामम् उभयतः नदी वहति।
2. छात्र गुरुजी से प्रश्न पूछता है।	2. छात्रः गुरुं प्रश्नं पृच्छति।
3. वन में जाकर मैं सुन्दर दृश्य को देखता हूँ।	3. वनं गत्वा अहं सुन्दरं दृश्यं पश्यामि।
4. हम दोनों विद्यालय नहीं जाएँगे।	4. आवां विद्यालयं न गमिष्यामः।
5. गाँव के चारों ओर नदी बहती है।	5. ग्रामं परितः नदी अस्ति।
6. हे राजन्! परिश्रम मत करो।	6. हे राजन्! परिश्रमं मा कुरु।
7. मैं कल कुरुक्षेत्र जाऊँगा।	7. अहं श्वः कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि।
8. विद्यालय के चारों ओर जल है।	8. विद्यालयं परितः जलम् अस्ति।
9. हम दोनों वहाँ कल जाएंगे।	9. आवां श्वः तत्र गमिष्यामः।
10. हरि के बिना कौन रक्षक है?	10. हरिं बिना कः रक्षकः अस्ति?
11. नदी के दोनों ओर वृक्ष हैं।	11. नदीम् उभयतः वृक्षाः सन्ति।
12. विद्यालय के दोनों ओर वृक्ष हैं।	12. विद्यालयं उभयतः वृक्षाः सन्ति। **(म.द.वि. 2008)**
13. मंदिर के चारों ओर सड़क हैं।	13. मन्दिरं परितः राजमार्गाः सन्ति।
14. ज्ञान के बिना सुख नहीं है।	14. ज्ञानं बिना सुखं नास्ति।
15. विद्यालय के चारों ओर वृक्ष हैं।	15. विद्यालयं परितः वृक्षाः सन्ति। **(म.द.वि. 2008, 2011)**
16. मेरे मित्र कल दिल्ली चले गए।	16. मम मित्राणि ह्यः दिल्लीनगरम् अगच्छन्।
17. राम और हरि घर गए।	17. रामः हरिश्च गृहम् अगच्छताम्।
18. रमा गाय से दूध दुहती है।	18. रमा गां दोग्धि पयः।
19. पथिक किसान से मार्ग पूछता है।	19. पथिकः कृषकं ग्रामं पृच्छति।
20. दुष्ट को धिक्कार हो।	20. दुष्टं धिक्।
21. वह मेरी बात नहीं सुनता है।	21. सः मां न शृणोति।
22. राजा चौर को सौ रुपये दण्ड देता है।	22. नृपः चौरं शतं दण्डयति।
23. दुष्ट सज्जनों को पीड़ित करते हैं।	23. दुष्टाः सज्जनान् पीडयन्ति।
24. परिश्रम के बिना सुख नहीं है।	24. परिश्रमं बिना सुखं नास्ति।
25. गाँव के चारों ओर वृक्ष हैं।	25. ग्रामं परितः वृक्षाः सन्ति।
26. मैं प्रतिदिन विद्यालय जाता हूँ।	26. अहं प्रतिदिनं विद्यालयं गच्छामि। **(म.द.वि. 2007)**
27. विद्यालय के दोनों ओर फूल है।	27. विद्यालयं उभयतः पुष्पाणि सन्ति। **(म.द.वि. 2007)**

अभ्यास-9

1. तुम पिता को क्या कहते हो?
2. पुरोहित यज्ञ करेंगे।
3. वे सब स्नान करेंगे।
4. सोने का मृग लाओ।
5. मैंने पत्र लिखा।
6. वे सब चलचित्र देख रहे हैं।
7. शिष्य ने गुरु को कहा।
8. रमा दूध नहीं पीती है।
9. सेठ आज धन देता है।
10. क्या तुमने लेख नहीं लिखा?

करण कारक (तृतीया विभक्ति)

जहाँ 'से' या 'के द्वारा' अर्थ को बताया जाता है वहाँ तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। परन्तु संस्कृत में निम्नलिखित शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति आती है–

1. सह (साथ)–रामेण सह सीता अपि गच्छति। (राम के साथ सीता भी जाती है।)
2. सदृश (समान)–पुत्रः पित्रा सदृशः वर्तते। (पुत्र पिता के समान है।)
3. अलम् (मत)–अलं कोलाहलेन। (शोर मत करो।)
4. अंग विकार में–

    (क) भिखारी आँखों से अंधा है। (भिक्षुकः नेत्राभ्यां अंधः अस्ति।)

    (ख) निर्धन नेत्र से काना है। (निर्धनः नेत्रेण काणः अस्ति।)

    (ग) वह कानों से बहरी है। (सा कर्णाभ्यां बधिरः अस्ति।)

    (घ) वह एक पैर से लंगड़ा है। (सः पादेन पङ्गुः अस्ति।)

करण कारक के आदर्श वाक्य

1.	चाँदनी चाँद के साथ रहती है।	1.	कौमुदी चन्द्रेण सह भवति।
2.	मोहन कलम से लिखता है।	2.	मोहनः कलमेन लिखति।
3.	राम ने रावण को बाण से मारा।	3.	रामः रावणं बाणेन अहन्।
4.	राम सीता के साथ वन को गए।	4.	रामः सीतया सह वनम् अगच्छत्।
5.	परिश्रम से ही कार्य सिद्ध होते हैं।	5.	परिश्रमेण एवं कार्याणि सिध्यन्ति।
6.	व्यायाम से शरीर स्वस्थ रहता है।	6.	व्यायामेन शरीरं स्वस्थं भवति।
7.	सीता राम के साथ वन में गई।	7.	सीता रामेण सह वनम् अगच्छत्।
8.	वह कानों से बहरी है।	8.	सा कर्णाभ्यां बधिरा अस्ति।
9.	बच्चे गेंद से खेल रहे हैं।	9.	बालकाः कन्दुकेन क्रीडन्ति।
10.	मेघ के साथ बिजली भी जाती है।	10.	मेघेन सह तडित् लीयते।
11.	डण्डे से साँप मर गया।	11.	दण्डेन सर्पः मृतः।
12.	वह जटाओं से वटु दिखाई देता है।	12.	सः जटाभिः वटुः दृश्यते।
13.	वह नेत्र से काना है।	13.	सः नेत्रेण काणः अस्ति। **(म.द.वि. 2010)**
14.	राम कलम से पत्र लिखता है।	14.	रामः लेखन्या पत्रं लिखति।
15.	परिश्रम से कार्य सिद्ध होते हैं।	15.	परिश्रमेण कार्याणि सिध्यन्ति।
16.	वह कल पिता के साथ जाएगा।	16.	सः श्वः जनकेन सह गमिष्यति।
17.	बालक बालकों के साथ खेलता है।	17.	बालकः बालकैः सह क्रीडति।
18.	भोजन के साथ घी दो।	18.	भोजनेन सह घृतं देहि।
19.	वह पिता के साथ घूमेगी।	19.	सा जनकेन सह भ्रमिष्यति।
20.	मूर्ख पुत्र से क्या लाभ?	20.	मूर्खेन पुत्रेण किं प्रयोजनम्?
21.	धर्म के बिना मनुष्य पशु होता है।	21.	धर्मेण हीनः नरः पशुः भवति।
22.	पिता पुत्र के साथ घर जाता है।	22.	पिता जनकेन सह गृहं गच्छति। **(म.द.वि. 2011)**
23.	वह दोनों आँखें से अंधा है।	23.	सः नेत्राभ्यां अंधा अस्ति।
24.	आचरण के बिना पशुओं के समान होता है।	24.	आचारेण हीनः पशुभिः समानः भवति।
25.	मानव धर्म से सुशोभित होता है।	25.	मानवः धर्मेण शोभते।
26.	बालक गेंद से खेलता है।	26.	बालकः कन्दुकेन क्रीडति।

27. दुर्जन स्वभाव से क्रूर होता है। — 27. दुर्जनः स्वभावने क्रूरः भवति। (म.द.वि. 2010)
28. गुरु पिता के समान है। — 28. गुरुः पित्रा समानः अस्ति। (म.द.वि. 2009)

अभ्यास-10

1. भरत शेर के साथ खेल रहा था।
2. राजा सेनापति के साथ युद्ध में गया।
3. बालिका माता के सदृश है।
4. मैंने आँखों से देखा था।
5. लोभ से ज्ञान नष्ट होता है।
6. सदा मन से कार्य करो।
7. एक पैसे से क्या होता है?
8. उसने ध्यान से पढ़ा था।
9. सीता और गीता रेलगाड़ी से गयी हैं।
10. बुद्धिमान् एक पैर से चलता है।

सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति)

'के लिए' अर्थ को बताने के लिए चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है, परन्तु निम्नलिखित शब्दों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति आती है–

1. **दा (देना)** – धनिकः निर्धनाय धनं ददाति। (धनवान् निर्धन को धन देता है।)
2. **रुच् (अच्छा लगना)** – बालकाय मिष्टान्नं रोचते। (बालक को मिठाई अच्छी लगती है।)
3. **नमः (नमस्कार)** – इन्द्राय नमः। (इन्द्र को नमस्कार हो)
4. **स्वस्ति (कल्याण)** – जनेभ्यः स्वस्ति। (मनुष्यों का कल्याण हो।)
5. **स्वाहा (आहुति)** – देवाय स्वाहा। (देवता को आहुति)
6. **अलम् (बस, मत)** – अलं कलहाय। (लड़ाई मत करो)

सम्प्रदान कारक के आदर्श वाक्य

1. राजा ब्राह्मण के लिए धन देता है। — 1. राजा ब्राह्मणाय धनं ददाति।
2. वह पढ़ने के लिए विद्यालय जाएगा। — 2. सः पठनाय विद्यालयं गमिष्यति।
3. वह निर्धन के लिए धन देता है। — 3. सः निर्धनाय धनं ददाति। (म.द.वि. 2008)
4. ऋषियों को नमस्कार हो। — 4. ऋषिभ्यः नमः।
5. शिशु को दूध अच्छा लगता है। — 5. शिशवे दुग्धं रोचते।
6. भूखे को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। — 6. बुभुक्षाय किमपि न रोचते।
7. हनुमान को नमस्कार हो। — 7. हनुमते नमः। (म.द.वि. 2011)
8. प्रजा का कल्याण हो। — 8. प्रजाभ्यः स्वस्ति।
9. बालक को दूध अच्छा लगता है। — 9. बालकाय दुग्धं रोचते। (म.द.वि. 2009)
10. हम पढ़ने के लिए विद्यालय जाते हैं। — 10. वयं पठितुं विद्यालयं गच्छामः।
11. मुझे दूध अच्छा नहीं लगता। — 11. मह्यं दुग्धं न रोचते।
12. भूखों को अन्न दो। — 12. बुभुक्षेभ्यः अन्नं देहि।
13. पुत्र पिता को लड्डू देता है। — 13. पुत्रः जनकाय मोदकं ददाति।
14. शिवजी को नमस्कार हो। — 14. शिवाय नमः।
15. जनक राम को राज्य नहीं देंगे। — 15. जनकः रामाय राज्यं न दास्यति।
16. सभी मनुष्यों का कल्याण हो। — 16. सर्वेभ्यः जनेभ्यः स्वस्ति।
17. देशभक्त देश के लिए प्राण अर्पण करते हैं। — 17. देशभक्ताः देशाय प्राणान् त्यजन्ति।
18. राम विभीषण को राज्य देता है। — 18. रामः विभीषणाय राज्यं ददाति।

19. सेनापति विजय के लिए प्रयत्न करता है। — 19. सेनापतिः विजयाय यतते।
20. भीम दुर्योधन के लिए पर्याप्त था। — 20. भीमः दुर्योधनाय अलम्।
21. गुरु को नमस्कार हो। — 21. गुरवे नमः।
22. पवनसुत को नमस्कार हो। — 22. पवनसुताय नमः। (म.द.वि. 2010)

अभ्यास-11

1. गीता भिखारी को रोटी देती है।
2. परम पिता परमेश्वर को नमस्कार।
3. वे खेलने के लिए आये थे।
4. क्या तुम चोर से डरते हो?
5. मुझे दूध अच्छा लगता है।
6. धर्मात्मा स्वर्ग के लिए तपस्या करता है।
7. मर्यादा पुरुषोत्तम राम को नमस्कार है।
8. हम जीवित रहने के लिए खाते हैं।
9. माली राजा के लिए माला लाता है।
10. बादल कल्याण के लिए वर्षा करते हैं।

अपादान (पंचमी विभक्ति)

जहाँ पर 'अलग होना' अर्थ हो, वहाँ पर जिससे अलग हुआ बताया जाता है, उसमें पंचमी विभक्ति प्रयोग की जाती है। परन्तु निम्नलिखित शब्दों के योग में भी पंचमी विभक्ति आती है। जैसे–

1. **भय अर्थवाली धातु के साथ** – कृषकः सिंहात् बिभेति। (किसान सिंह से डरता है।)
2. **रक्षा अर्थवाली धातु के साथ** – नृपः दुष्टेभ्यः प्रजां रक्षति। (राजा दुष्टों से प्रजा की रक्षा करता है।)
3. **उत्पत्ति स्थान में** – (क) गंगा हिमालयात् प्रभवति। (गंगा नदी हिमालय से निकलती है।)
   (ख) गंगा हिमालयात् उद्‌भवति। (गंगा नदी हिमालय से निकलती है।)
4. **भिन्नः (अतिरिक्त)** – ईश्वरात् भिन्नः कः रक्षकः अस्ति? (ईश्वर के अतिरिक्त कौन रक्षक है?)
5. **अन्यः (दूसरा)** – ईश्वरात् अन्यः कः रक्षकः अस्ति? (ईश्वर से दूसरा और कौन रक्षक है?)
6. **बिना (बिना)** – ज्ञानात् बिना कल्याणं न भवति। (ज्ञान के बिना कल्याण नहीं होता है।
7. **आरभ्य (प्रारंभ करके)** – शैशवात् आरभ्य स पठति। (बचपन से आरंभ करके वह पढ़ता है।)
8. **बहिः (बाहर)** – मन्दिरात् बहिः भिक्षुकः तिष्ठति। (मंदिर के बाहर भिखारी बैठता है।)
9. **प्राक् (पहले)** – विद्यालयात् प्राक् उद्यानं वर्तते। (विद्यालय से पहले बगीचा है।)

अपादान कारक के आदर्श वाक्य

1. मैं आज ही घर से आ रहा हूँ। — 1. अहम् अद्य एव गृहात् आगच्छम्।
2. असत्य से बड़ा और कोई भी पाप नहीं है। — 2. असत्यात् महत्तरं कमपि पापं नास्ति।
3. नर्मदा नदी विंध्याचल से निकलती है। — 3. नर्मदा विंध्याचलात् उद्‌भवति।
4. गंगा नदी हिमालय से निकलती है। — 4. गंगा हिमालयात् प्रभवति। (म.द.वि. 2008, 2009)
5. वह सिंह से डरता है। — 5. सः सिंहात् बिभेति।
6. वृक्ष से पत्ते गिरते हैं। — 6. वृक्षात् पत्राणि पतन्ति।
7. काम से क्रोध पैदा होता है। — 7. कामात् क्रोधः जायते।
8. शिष्य आचार्य से संस्कृत पढ़ता है। — 8. शिष्य आचार्यात् संस्कृतं पठति।
9. घुड़सवार घोड़े से गिरता है। — 9. अश्वारोही अश्वात् पतति।
10. छात्रा अध्यापक से पढ़ती है। — 10. छात्रा अध्यापकात् पठति।
11. आकाश से पक्षी गिरते हैं। — 11. आकाशात् खगाः पतन्ति।
12. महल से बच्चा गिरता है। — 12. प्रासादात् शिशुः पतति।

13. मोहनः कुत्ते से डरता है।	13. मोहनः कुक्कुरात् बिभेति।
14. वृक्ष से पत्ते गिरते हैं।	14. वृक्षात् पत्राणि पतन्ति। (म.द.वि. 2008)
15. धर्म पाप से रक्षा करता है।	15. धर्म पापात् रक्षति।
16. तुम गाँव से बाहर नहीं जाओगे।	16. त्वं ग्रामात् वहिः न गमिष्यसि।
17. बीजों से अंकुर पैदा होते हैं।	17. बीजेभ्यः अङ्कुराः जायन्ते।
18. मोहन से सोहन अधिक चतुर है।	18. मोहनात् सोहनः पटुतरः।
19. मैं गुरु के पास से आ रहा हूँ।	19. अहं गुरोः समीपात् आगच्छामि।
20. ब्रह्मा से प्रजा पैदा होती है।	20. ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।
21. कमला लता से फूल चुनती है।	21. कमला लतायाः पुष्पाणि अवचिनोतिं (म.द.वि. 2010)
22. बालक कुत्ते से डरता है।	22. बालकः कुमकुरात् बिभेति। (म.द.वि. 2007)
23. बालक शेर से डरता है।	23. बालकः सिंहात् विभेति। (म.द.वि. 2010)
24. वृक्ष से पत्ता गिरता है।	24. वृक्षात् पत्रं पतति। (म.द.वि. 2008,)

अभ्यास-12

1. गीता उपाध्याय से पढ़ती है।
2. पाप से सर्वनाश होता है।
3. बीजों से वृक्ष पैदा होते हैं।
4. बालक घोड़े से गिर पड़ा।
5. मैं विद्यालय से घर जाऊँगा।
6. फूलों से ही फल उत्पन्न होते हैं।
7. धर्म पाप से रक्षा करता है।
8. बादलों से बूदें गिरती हैं।
9. हम बचपन से ही संस्कृत नहीं पढ़े।
10. आकाश से सूर्य चमकेगा।

सम्बन्ध कारक (षष्ठी विभक्ति)

प्रायः दो वस्तुओं का संबंध बताने के लिए संबंध कारक का प्रयोग किया जाता है। निम्नलिखित शब्दों के योग में भी षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–

1. **सम्बन्ध के योग में** – रामस्य भ्राता अस्ति। (राम का भाई है।)
2. **स्मृ धातु के योग में** – सुता मातुः स्मरति। (पुत्री माता को याद करती है।)
3. **बहुतों में से एक को बताने के लिए** – मनुष्येषु ब्राह्मणः श्रेष्ठः। (मनुष्यों में ब्राह्मण सबसे अच्छा है।)

सम्बन्ध कारक के आदर्श वाक्य

1. महापुरुषों के उपदेश सभी सुनें।	1. महापुरुषाणाम् उपदेशं सर्वे शृणुयुः।
2. संस्कृत भारतवर्ष की प्राचीन भाषा है।	2. संस्कृतं भारतवर्षस्य प्राचीना भाषा अस्ति।
3. कण्व के आश्रम में बहुत से तपस्वी रहते थे।	3. कण्वस्य तपोवने बहवः तपस्विनः अवसन्।
4. तुम विद्वान् की निंदा करते हो।	4. यूयं विदुषः निन्दां कुरुथ।
5. सज्जनों की संगति करनी चाहिए।	5. सतां संगतिः कुर्युः।
6. भक्ष्य और भक्षक में कैसी मित्रता?	6. भक्ष्यभक्षकयोः कीदृशी मित्रता?
7. संस्कृत कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है।	7. संस्कृत-कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः अस्ति।
8. विद्या का धन नम्रता है।	8. विद्यायाः धनं नम्रता अस्ति।
9. रामायण संसार का प्रथम महाकाव्य है।	9. रामायणः संसारस्य प्रथमं महाकाव्यम् अस्ति।

10. राम मेरा भाई है।	10. रामः मम भ्राता अस्ति।
11. हरि राम का बड़ा भाई है।	11. हरिः रामस्य अग्रजः अस्ति।
12. यह गंगा का जल है।	12. इदं गगायाः जलम् अस्ति।
13. पढ़ने का अच्छा फल अवश्य होता है।	13. पठनस्य सुफलं अवश्यं भवति।
14. हे भगवन्! आप संसार के पालन करने वाले हो।	14. हे राजन्! भवान् लोकस्य पालकः असि।
15. गीता के उपदेश में विश्वास करो।	15. गीतायाः उपदेशे विश्वासं कुरू।
16. दुर्जनों की संगति नहीं करनी चाहिए।	16. दुर्जनानां संगतिः न करणीया।
17. माता का वचन प्रमाण होता है।	17. मातुः वचनं प्रमाणं भवति।
18. समुद्र का जल खारा होता है।	18. समुद्रस्य जलं क्षारं भवति।
19. राम के समान पृथ्वी पर कोई भी राजा नहीं था।	19. रामस्य तुल्यः भुवि कोऽपि राजा नासीत्।
20. आचार्य के सामने यह कार्य किया था।	20. आचार्यस्य समक्षं एतत् कार्यं कृतम्।
21. कृष्ण राम के तुल्य है।	21. कृष्णः रामस्य तुल्यः अस्ति। (म.द.वि. 2010)

अभ्यास-13

1. दया धर्म का मूल है।
2. दमयन्ती नल की पत्नी थी।
3. प्राचीनकाल में हमारी मातृभाषा संस्कृत थी।
4. हे दुर्योधन! कृष्ण के वचन सुनो।
5. पाण्डवों का आधा राज्य दुर्योधन ने नहीं दिया।
6. तब मैं बंदरों का खेल देख रहा था।
7. गर्मी में सरोवरों का जल सूख जाता है।
8. सूर्य अस्त होने पर मैं वहाँ गया था।
9. यत्न करने पर कार्य अवश्य सिद्ध होते हैं।
10. भगवान के विषय में आप क्या जानते हो?

अधिकरण कारक (सप्तमी विभक्ति)

आधार में सप्तमी विभक्ति होती है, परन्तु निम्नलिखित के योग में भी सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे–

1. **निर्धारण अर्थ में**–जीवेषु मानवाः श्रेष्ठाः। (जीवों में मानव श्रेष्ठ हैं।)
2. **एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर**–सूर्ये उदिते कमलानि विकसन्ति। (सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं।)
3. **समय बोधक शब्दों में**–सायंकाले स स्नानं न करोति। (सांयकाल वह स्नान नहीं करता है।)
4. **विषय के अर्थ में**–ईश्वरः सर्वस्मिन् विषये जानाति। (ईश्वर सभी के विषय में जानता है।)

अधिकरण कारक के आदर्श वाक्य

1. सभी छात्र अपने-अपने स्थान पर बैठ जाएँ।	1. सर्वे छात्राः निज-निज-स्थानेषु उपविशेयुः।
2. परीक्षा भवन मेरे घर के पास ही है।	2. परीक्षाभवनं मम गृहस्य समीपे एव अस्ति।
3. कालिदास कवियों में श्रेष्ठ है।	3. कालिदासः कविषु श्रेष्ठः अस्ति।
4. दुष्टों में कभी भी विश्वास मत करो।	4. दुष्टेषु कदापि विश्वासं मा कुरु।
5. ईश्वर हमारे विषय में सब जानता है।	5. ईश्वरः अस्माकं विषये सर्वं जानाति।
6. सूर्य के उदय होने पर चन्द्रमा और तारे छिप जाते हैं।	6. सूर्यस्य उदिते चन्द्रः तारकाणि विलीयन्ते।
7. माता पुत्र से स्नेह करती है।	7. माता पुत्रे स्निह्यति।
8. संस्कृत के कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है।	8. संस्कृतकविषु कालिदासः श्रेष्ठः अस्ति।
9. वह घर के कार्यों में निपुण है।	9. स गृहकार्येषु निपुणः अस्ति।
10. बाग में भ्रमर घूमते हैं।	10. उपवने भ्रमराः भ्रमन्ति।
11. खेल के मैदान में छात्र खेलते हैं।	11. क्रीडाक्षेत्रे छात्राः क्रीडन्ति।

12. मोहन कक्षा में सबसे चतुर है। — 12. मोहनः कक्षायां चतुरतमः अस्ति।
13. एक वन में एक सिंह रहता था। — 13. एकस्मिन् वने एकः सिहः न्यवसत्।
14. लोकतंत्र में नेताओं का निर्वाचन होता है। — 14. लोकतन्त्रे नेतानां निर्वाचनं भवति।
15. राम लक्ष्मण से स्नेह करते थे। — 15. रामः लक्ष्मणे स्निह्यति स्म।
16. मेघों में बिजली चमकती है। — 16. मेघेषु विद्युत् द्योतते।
17. रात में चन्द्रमा चमकता है। — 17. रात्रौ चन्द्रः भाति।
18. पिता राज्य के भार को सौंपकर वन चले गए। — 18. पिता राज्यभारम् आरोप्य वनं जगाम।
19. वीर युद्ध में पराक्रमशील होते हैं। — 19. वीराः युद्धे पराक्रमशीलाः भवन्ति।
20. विद्वान् शास्त्रों में निपुण था। — 20. विद्वान् शास्त्रेषु निपुणः आसीत्।

अभ्यास-14

1. संस्कृत के कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं।
2. फलों में आम सर्वोत्तम होते हैं।
3. बुद्धिमान् सभा में सुशोभित होते हैं।
4. एक दिन मैं हनुमान के मंदिर गया था।
5. मेरे विषय में आप क्या जानते हैं?
6. पुस्तकों में गीता मान्य है।
7. पिता के मरने पर वह राजा हो गया।
8. सभी जिलों में हरियाणा महत्त्वपूर्ण है।
9. क्या तुम संस्कृत भाषा में लिख सकते हो?
10. तब उपवन में फूल खिल रहे थे।

क्त्वा प्रत्यय

1. कर या करके अर्थ में क्त्वा प्रत्यय का प्रयोग धातु के साथ किया जाता है जिसका त्वा शेष रहता है। कभी-कभी त्वा को ट्वा या ध्वा भी हो जाता है।

2. यदि धातुएँ पूर्व कोई उपसर्ग होता है तो त्वा का ल्यप् हो जाता है। जिसका 'य' शेष रहता है। उपसर्ग के अनुसार धातु का अर्थ भी बदल जाता है। जैसे—

	धातु	+	प्रत्यय	=	रूप	=	अर्थ
1.	गम्	+	क्त्वा	=	गत्वा	=	जाकर
2.	पठ्	+	क्त्वा	=	पठित्वा	=	पढ़कर
3.	नम्	+	क्त्वा	=	नत्वा	=	नमस्कार करके
4.	भू	+	क्त्वा	=	भूत्वा	=	होकर
5.	लिख्	+	क्त्वा	=	लिखित्वा	=	लिखकर
6.	नी	+	क्त्वा	=	नीत्वा	=	लेकर
7.	दृश्	+	क्त्वा	=	दृष्ट्वा	=	देखकर
8.	कृ	+	क्त्वा	=	कृत्वा	=	करके
9.	क्री	+	क्त्वा	=	क्रीत्वा	=	खरीदकर
10.	पा	+	क्त्वा	=	पीत्वा	=	पीकर
11.	प्रच्छ्	+	क्त्वा	=	पृष्ट्वा	=	पूछकर
12.	जि	+	क्त्वा	=	जित्वा	=	जीतकर
13.	ज्ञा	+	क्त्वा	=	ज्ञात्वा	=	जानकर

ल्यप् (य) प्रत्यय

उपसर्ग	+	धातु	=	रूप	=	अर्थ
आ	+	गम्	=	आगत्य	=	आकर

प्र	+	नम्	=	प्रणम्य	=	प्रणाम करके
वि	+	क्री	=	विक्रीय	=	खरीदकर
आ	+	नी	=	आनीय	=	लाकर

उदाहरण के लिये–

1.	मैं प्रातः उठकर पढ़ता हूँ।	1.	अहं प्रातः उत्थाय पठामि।
2.	तुम वहां जाकर क्या करोगे?	2.	त्वं तत्र गत्वा किं करिष्यसि।
3.	हम सब पढ़-लिखकर महान् होंगे।	3.	वयं पठित्वा लिखित्वा विद्वांसः भविष्यामः।
4.	तू जाकर पढ़। (म.दि.वि. 2007)	4.	त्वं गत्वा पठ।
5.	शिष्यः नमस्कार करके बैठ गया।	5.	शिष्यः प्रणम्य अतिष्ठत्।
6.	युद्ध जीतकर राम आए।	6.	युद्धं जित्वा रामः आगच्छत्।
7.	वह सिनेमा देखकर आएगा।	7.	सः चलचित्रं दृष्ट्वा आगमिष्यति।

'तुमुन्' प्रत्यय

'के लिए' अर्थ को प्रकट करने के लिए तुमुन प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जिसका 'तुम्' शेष रहता है। जैसे–

	धातु	+	प्रत्यय	=	रूप	=	अर्थ
1.	कृ	+	तुमुन्	=	कर्तुम्	=	करने के लिए।
2.	गै	+	तुमुन्	=	गातुम्	=	गाने के लिए।
3.	दृश्	+	तुमुन्	=	द्रष्टुम्	=	देखने के लिए।
4.	नी	+	तुमुन्	=	नेतुम्	=	ले जाने के लिए।
5.	प्रच्छ	+	तुमुन्	=	प्रष्टुम्	=	पूछने के लिए।
6.	क्री	+	तुमुन्	=	क्रेतुम्	=	खरीदने के लिए।
7.	वच्	+	तुमुन्	=	वक्तुम्	=	कहने के लिए।
8.	हन्	+	तुमुन्	=	हन्तम्	=	मारने के लिए।
9.	स्मृ	+	तुमुन्	=	स्मर्तुम्	=	स्मरण करने के लिए।
10.	लभ्	+	तुमुन्	=	लब्धुम्	=	प्राप्त करने के लिए।
11.	स्ना	+	तुमुन्	=	स्नातुम्	=	स्नान करने के लिए
12.	कथ्	+	तुमुन्	=	कथयितुम्	=	कहने के लिए।

1.	हम सब पढ़ने के लिए विद्यालय जाते हैं।	– वयं पठितुं विद्यालयं गच्छामः।
2.	वे सब भम्रण करने के लिए जाएंगे।	– ते भ्रमितुं गमिष्यन्ति।
3.	प्रश्न पूछने के लिए वह आया था।	– प्रश्नं प्रष्टुम् स आगच्छत्।
4.	हम नहाने के लिए नदी पर गये थे।	– वयं स्नातुं नदीं अगच्छाम।
5.	विद्या प्राप्त करने के लिए पढ़ो।	– विद्यां लब्धुं पठ।
6.	तुम क्या करने आ रहे हो।	– त्वं किं कर्तुं आगच्छसि।

शतृ-प्रत्यय

पढ़ता हुआ, लिखता हुआ आदि अर्थ को प्रस्तुत करने के लिए धातु के साथ शतृ प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं के साथ जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्रत्यय जोड़ने से जो रूप बनते हैं। वे तीनों लिङ्गों में होते हैं। जैसे–

धातु	न.पु.	पु.लि.	स्त्री लि.
भू	भवत्	भवन्	भवन्ती

कृ	कुर्वत्	कुर्वन्	कुर्वन्ती
दृश्	पश्यत्	पश्यन्	पश्यन्ती
पठ्	पठत्	पठन्	पठन्ती
पा	पिबत्	पिबन्	पिबन्ती
प्रच्छ्	पृच्छत्	पृच्छन्	पृच्छन्ती।

उदाहरण के लिए–

1. वह खेलते-खेलते गिर गया। — सः क्रीडन् अपतत्।
2. वह पढ़ता हुआ भी फैल हो गया। — सः पठन् अपि असफलः अभवत्।
3. बालिका दौड़ते-दौड़ते घर आ गयी। — बालिका धावन्ती गृहं आगच्छत्।
4. जल पीते हुए नहीं हँसना चाहिए। — जलं पिबन् न हसेत्।
5. पापी धर्म को देखते हुए भी पाप करते हैं। — पापाः धर्मं जानन्तः अपि पापं कुर्वन्ति।
6. दुष्ट जानता हुआ भी बुरा कर्म-करता है। — दुष्टः जानन् अपि अशुभं कार्यं करोति।

कुछ उपयोगी आदर्श वाक्य

1. मनुष्यों को प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिए।
2. हमें अपना पाठ याद करना चाहिए।
3. क्या आप गायन नहीं जानते हो?
4. सभी को प्रतिदिन खेलना चाहिए।
5. अभिमान पाप का कारण है।
6. महाराज दशरथ के चार पुत्र थे।
7. पं. जवाहरलाल भारत के पहले प्रधानमंत्री थे।
8. विद्वान् की सभी जगह पूजा होती है।
9. ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है।
10. हमें अपने देश की सेवा करनी चाहिए।
11. प्राचीन समय में सब लोग संस्कृत पढ़ते थे।
12. भारतवर्ष हमारा देश है।
13. तुम्हारा नाम क्या है?
14. मधुर और सत्य बोलना चाहिए।
15. धर्म की स्थापना के लिए ईश्वर अवतार लेता है।
16. मोहन भोजन करके विद्यालय जाएगा।
17. सिन्धु एक विशाल नदी है।
18. आज हम घर नहीं जाएँगे।
19. दशरथ अयोध्या का राजा था।
20. जो जैसा करता है वह वैसा भरता है।
21. सदा सत्य बोलो।
22. माता की सेवा करो।
23. बालक जोर से हँसते हैं।
24. अर्जुन एक महान् योद्धा था।
25. गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

1. मानवः प्रतिदिनं व्यायामं कुर्यात्।
2. वयं निजं पाठं स्मरेम।
3. किं भवान् गायनं न जानाति?
4. सर्वे प्रतिदिनं क्रीडेयुः।
5. अहंकारः पापस्य कारणम् अस्ति।
6. महाराजस्य दशरथस्य चत्वारः पुत्राः आसन्।
7. पं. जवाहरलालः भारतस्य प्रथमः प्रधानमंत्री आसीत्।
8. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।
9. ज्ञानं बिना मुक्तिः न भवति।
10. वयं निजं देशं सेवेमहि।
11. प्राचीन काले सर्वेजनाः संस्कृतम् अपठन्।
12. भारतवर्षः अस्माकं देशः अस्ति।
13. तव किं नाम अस्ति?
14. मधुरं सत्यं च वदेत्।
15. धर्मस्य स्थापनार्थं ईश्वरः अवतरति।
16. मोहनः भोजनं कृत्वा विद्यालयं गमिष्यति।
17. सिन्धु नदी एका विस्तृता अस्ति।
18. अद्य वयं गृहं न गमिष्यामः।
19. दशरथः अयोध्यायाः नृपतिः आसीत्।
20. यः यथा करोति तथा आप्नोति।
21. सर्वदा सत्यं वद।
22. मातरं सेवस्व।
23. बालकाः उच्चैः हसन्ति।
24. अर्जुनः एकः महान् योद्धा आसीत्।
25. गुरोः आज्ञां पालयेत्।

26. क्या यह पुस्तक तुमने नहीं पढ़ी?
27. कुछ पुरुष ईश्वर को नहीं मानते हैं।
28. कृपया धीरे-धीरे चलें।
29. सच बोलने वाला सदा निडर रहता है।
30. आपका घर कहाँ है?
31. सदा सच बोलो।
32. स्वामी विवेकानंद महापुरुष थे।
33. दिव्या कल रोहतक जाएगी।
34. अब तुम्हें पढ़ना चाहिए।
35. आजकल मंहगाई बढ़ रही है।
36. विद्या विनय को देती है।
37. राम और श्याम परस्पर बातचीत करते हैं।
38. भक्त ईश्वर का भजन करते हैं।
39. आजकल प्रायः वर्षा होती है।
40. तुम क्या करते हो?
41. मोहन विमान से दिल्ली जाएगा।

26. किं इदं पुस्तकं त्वं न अपठः?
27. केचित् पुरुषाः ईश्वरं न मन्यन्ते।
28. कृपया शनैः-शनैः गच्छ।
29. सत्यवादी सदा निर्भयः भवति।
30. भवतः गृहं कुत्र अस्ति?
31. सदा सत्यं वद।
32. स्वामी विवेकानंदः महापुरुषः आसीत्।
33. दिव्या श्वः रोहतकं गमिष्यति।
34. इदानीं त्वं पठेः।
35. अधुना महार्घता अस्ति।
36. विद्या ददाति विनयम्।
37. रामः श्यामः च परस्परं वार्ता कुरुतः।
38. भक्ताः ईशं जपन्ति।
39. अद्यत्वे प्रायः वर्षा भवति।
40. त्वं किं करोषि?
41. मोहनः विमानेन दिल्लीनगरं गमिष्यति।

❖ ❖ ❖

कण्ठस्थ चार श्लोकों का शुद्ध लेखन (प्रश्न-पत्र में छपे श्लोकों से भिन्न)

(म.द.वि. 2011)

नोट–चार श्लोकों को शुद्धता के साथ याद करना है। कुछ श्लोकों के अर्थ भी दिए गए हैं। श्लोकों को याद करने के लिए अर्थ सहायक होता है। यदि अर्थ भी पूछा गया हो तो अर्थ लिख देना चाहिए।

श्लोक 1. **त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

हिन्दी अनुवाद– हे ईश्वर! तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बन्धु हा और तुम ही मित्र हो। तुम ही विद्या हो और तुम ही धन हो। तुम ही मेरे लिए सब कुछ हो।

श्लोक 2. **परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।**
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।

हिन्दी अनुवाद– परोपकार के लिए ही वृक्ष फल देते हैं। परोपकार के लिए ही नदियां बहती हैं। परोपकार के लिए ही गायें दूध देती है। परोपकार के लिए ही यह शरीर है।

श्लोक 3. **अष्टादश-पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।**
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

हिन्दी अनुवाद– अठारह पुराणों में व्यास के दो वचन हैं–परोपकार पुण्य के लिए होता है और दूसरों को पीड़ा देना–पाप के लिए होता है।

श्लोक 4. **आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः।**
आचारः परमं ज्ञानमाचारात् किं न साध्यते।।

हिन्दी अनुवाद– सदाचार परम धर्म है। सदाचार परम तप है। सदाचार परम ज्ञान है। सदाचार से क्या सिद्ध नहीं होता।

श्लोक 5. **अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।**
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।

हिन्दी अनुवाद– हे सरस्वति! आपका खजाना विचित्र है जो खर्च करने से बढ़ता है और एकत्रित करने से नष्ट होता जाता है।

श्लोक 6. **येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।**
ते मृत्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

हिन्दी अनुवाद– जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है वे मनुष्यलोक में पृथ्वी पर भार हैं तथा मनुष्य के रूप में पशु के समान आचरण करते हैं।

श्लोक 7. **गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु र्गुरू र्देवो महेश्वरः।**
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

हिन्दी अनुवाद– गुरु ब्रह्म है, गुरु विष्णु है, गुरु देवता है, गुरु महेश्वर है। गुरु साक्षात् परम ब्रह्म है उस गुरु को नमस्कार हो।

श्लोक 8. **विद्या ददाति विनयं, विनयायाति पात्रताम्।**
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनात् धर्मं ततः सुखम्।।

हिन्दी अनुवाद– विद्या विनय को देती है। विनय से पात्रता आती है। पात्रता से धन प्राप्त होता है। धन से धर्म होता है। धर्म से सुख की प्राप्ति होती है।

श्लोक 9. **सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।**
ततो युद्धाय युजस्व, नैवं पापमवाप्स्यसि।।

हिन्दी अनुवाद– हे अर्जुन! सुख-दुःख में समान होकर, लाभ-हानि में, जय-पराजय में समान होकर युद्ध करो, नहीं तो पाप के भागी हो जाओगे।

श्लोक 10. **यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानि र्भवति भारत।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

हिन्दी अनुवाद– हे अर्जुन! जब कभी धर्म की हानि होती है। तब मैं अधर्म का विनाश करने के लिए मैं जन्म लेता हूँ।

श्लोक 11. **योगस्थः कुरु कर्माणि, संगं त्यक्त्वा धनंजय।**
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते।।

हिन्दी अनुवाद– हे अर्जुन! योग में स्थित होकर, आसक्ति छोड़कर कर्म करो। सिद्धि और असिद्धि में समान रहना ही योग कहा गया है।

श्लोक 12. **न विश्वसेत् कुमित्रे च, मित्रे चापि न विश्वसेत्।**
कदाचित् कुपितं मित्रं, सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्।

हिन्दी अनुवाद– कुमित्र पर विश्वास नहीं करना चाहिए। मित्र पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। कभी क्रोधित होकर मित्र सभी रहस्यों को न बता दें।

श्लोक 13. **गौरवं प्राप्यते दानान्न, तु वित्तस्य सञ्चयात्।**
स्थितिरुच्चैः पयोदानां, पयोधीनामधः स्थितिः।

हिन्दी अनुवाद– दान देने से ही गौरव प्राप्त होता है। धर्म के संचय से नहीं। वर्षा करने वाले बादलों का स्थान ऊपर है तथा जल एकत्रित करने वाले समुद्र का स्थान नीचे है।

श्लोक 14. **मूकं करोति वाचालम्, पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।**
यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द-माधवम्।

हिन्दी अनुवाद– जिसकी कृपा गूँगें को बहुत बोलने वाला बना देती है, लंगड़ा भी पर्वत को पार कर जाता है। उस परम आनंद को देने वाले श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्लोक 15. **त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।**
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम, त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम्।।

हिन्दी अनुवाद– हे परमेश्वर! तुम आदि देव हो, प्राचीन पुरुष हो, इस संसार के उत्तम खजाने हो, सब के ज्ञाता हो, सबके द्वारा जानने योग्य हो, उत्तम स्थान हो। आपसे ही समस्त संसार अनन्त रूप धारण करता है।

श्लोक 16. अभयं देहि देवेश, पापाद् अस्मान् निवारय।
वयं त्वां शरणं यामः, रक्ष नः शरणागतान्।।

श्लोक 17. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति?

श्लोक 18. आचारः कुलमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम्।।

श्लोक 19. यस्मिन् देशे न सम्मानो, न वृत्तिर्न बान्धवाः।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति, न तत्र दिवसं नयेत्।।

श्लोक 20. न जायते म्रियते वा कदाचि,
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

श्लोक 21. शनैः पन्थाः शनैः कन्था, शनैः पर्वतलंघनम्।
शनै र्विद्या शनै र्वित्तं, पञ्चैतानि शनैः शनैः।।

श्लोक 22. दरिद्रता धीरतया विराजते, कुरूपता शीलतया विराजते।
कुभोजनं चोष्णतया विराजते, कुवस्त्रता शुभतया विराजते।।

श्लोक 23. शीलभारवती कान्ता, पुष्पभारवती लता।
अर्थभारवती वाणी, भजते कामपि श्रियम्।।

श्लोक 25. लक्ष्मी र्वसति जिह्वाग्रे, जिह्वाग्रे मित्रबान्धवाः।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं, जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्।।

श्लोक 25. पिपीलिकार्जितं धान्यं, मक्षिकासंचितं मधु।
लुब्धेन संचितं द्रव्यं, समूलं च विनश्यति।।

श्लोक 26. यथा फलानां पक्वानां, नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य, नान्यत्र पतनाद् भयम्।।

श्लोक 27. शैले शैले च माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

श्लोक 28. सम्पत्तौ विपत्तौ च, महतामेक रूपता।

उदेति सविता ताम्रः, ताम्र एवास्तमेति च।।

श्लोक 29. दधि मधुरं, मधु मधुरं, द्राक्षा मधुरा, सुधापि मधुरैव।
तस्य तदैव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्।।

श्लोक 30. काकः कृष्णः पिकः कृष्णः, को भेदः पिककाकयोः।
प्राप्ते ते वसन्तकाले, काकः, काकः, पिकः पिकः।।

श्लोक 31. यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः।
फलप्रदो भवेत् काले तद्वल्कोको सुरक्षितः।।

श्लोक 32. सर्वं परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतत् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।

श्लोक 33. प्रदोषे दीपकश्चन्द्रः प्रभाते दीपको रविः।
त्रैलाक्यदीपको धर्मः, सुपुत्र, कुलदीपकः।।

श्लोक 34. गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति,
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः,
समुद्रमासाद्य भवन्त्येपेयाः।।

श्लोक 35. अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चति आशापुञ्जम्।।

श्लोक 36. चक्षुः पूतं न्यस्येत् पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेत् वाणी, मनः पूतं समाचरेत्।।

श्लोक 37. वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न साधुः करोत्येव।।

श्लोक 38. उदारस्य तृणं वित्तं, शूरस्य मरणं तृणम्।
विरक्तस्य तृणं भार्या, निःस्पृहस्य तृणं जगत्।।

श्लोक 39. यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

श्लोक 40. सत्यानुसारिणी लक्ष्मी कीर्तिस्त्यागानुसारिणी।
अभ्यासानुसारिणी विद्या, बुद्धि, कर्मानुसारिणी।।

श्लोक 41. किं कोकिलस्य विरुतेन गते वसन्ते,
किं कातरस्य बहुशास्त्रपरिग्रहेण।
मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन,
किं जीवितेन पुरुषस्य निरक्षरेण।।

❖❖❖

दूतवाक्यम् 2

दूतवाक्यम् (भासविरचितम्)

दूतवाक्यम् के पात्र

नामपात्र		परिचय
1. काञ्चुकीयः	–	दुर्योधन के अन्तःपुर का सेवक, बादरायण।
2. दुर्योधनः/सुयोधनः	–	धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र। हस्तिनापुर का राजा।
3. वैकर्णः		दुर्योधन के मित्र
4. वर्णदिवः		
5. भीष्मः	–	पाण्डवों और कौरवों के पितामह।
6. आचार्यः	–	द्रोणाचार्य, पाण्डवों व कौरवों के गुरु।
7. शकुनिः	–	दुर्योधन के मामा, गान्धार के राजा।
8. कर्णः	–	दुर्योधन का मित्र, कुन्ती पुत्र, सूत पुत्र।
9. वासुदेवः	–	श्रीकृष्ण, पाण्डवों के दूत।
10. सुदर्शनः	–	श्रीकृष्ण का दिव्यचक्र।
11. शार्ङ्गः	–	श्रीकृष्ण का दिव्य धनुष।
12. कौमोदकी	–	श्रीकृष्ण की गदा।
13. पाञ्चजन्यः	–	श्रीकृष्ण का शंख।
14. नन्दकः	–	श्रीकृष्ण की तलवार।
15. गरुडः	–	विष्णु भगवान् का वाहन।
16. धृतराष्ट्र	–	कौरवों के पिता।

प्रश्नोत्तर भाग
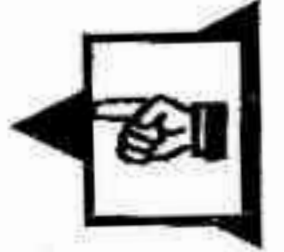
? **भास के नाटकों का परिचय दीजिए।**

उत्तर–आज से कुछ समय पूर्व भास के नाटक उपलब्ध नहीं थे। इतना अवश्य था कि जयदेव, दण्डी, वाक्‌पति, राजशेखर व कालिदास आदि महान् कवियों व लेखकों ने भास को नाटककार के रूप में प्रस्तुत किया था। अतः भास इन सबके पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध नाटककार थे। सन् 1909 में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने ट्रावनकोर राज्य के आसपास से ताडपत्रों पर अंकित 13 नाटकों को प्राप्त किया, जिनका प्रकाशन 1918 ई. में किया गया। इन नाटकों के आदि, मध्य या अन्त में कहीं पर नाटककार का नाम अंकित नहीं था। अतः इनके नाटककार के विषय में पर्याप्त समय तक विवाद बना रहा। इतना अवश्य था कि इनकी भाषा-शैली आदि समान होने के कारण इनके रचयिता कोई एक नाटककार ही था। पर्याप्त साक्ष्यों और आधारों पर विद्वानों ने यह ज्ञात किया था कि इन नाटकों के प्रणेता भास हैं। तभी से भास के ये तेरह नाटक ज्ञात किए गए।

रचनाएँ : भास के ये तेरह नाटक ही प्राप्त हैं। इन तेरह नाटकों का कथावस्तु के आधार पर इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है–

(क) महाभारत पर आधारित– 1. उरुभंग 2. दूतवाक्यम्
3. पंचरात्रम् 4. बालचरितम्
5. दूतघटोत्कचम् 6. कर्णभार 7. मध्यम व्यायोग।

(ख) रामायण पर आधारित– 8. प्रतिमा नाटक 9. अभिषेक नाटक

(ग) उदयन कथा पर आधारित– 10. प्रतिज्ञायौगन्धरायण 11. स्वप्नवासवदत्तम्

(घ) कल्पना मर आधारित– 12. अविमारक 13. चारुदतम्।

इनमें पाँच नाटक–दूतवाक्यम्, मध्यम व्यायोग, दूतघटोत्कचम्, कर्णभार, उरुभंग–एकांकी हैं, शेष नाटक 4 से 7 अंकों में विभक्त हैं।

नाटकों का विवेच्य विषय

1. प्रतिज्ञायौगंधरायण : इसकी कथावस्तु चार अंकों में विभक्त है। इसमें उदयन और वासवदत्ता की प्रेमकथा है। यौगन्धरायण उदयन का मंत्रीं है जो अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करता है तथा उदयन और वासवदत्ता को प्रद्योत से छुड़ाकर उनका विवाह करा देता है।

2. स्वप्नवासवदत्ता : इसमें छः अंक हैं। यह भास का सर्वोत्तम नाटक है। इसमें राजा उदयन और पद्मावती का विवाह होता है। इसमें भी मंत्री यौगन्धरायण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख देता है। पद्मावती नहीं जानती कि यह वासवदत्ता है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है अन्त में उसका स्वप्न यथार्थ हो जाता है।

3. उरुभंगम् : यह एक एकांकी है। भीम द्रौपदी के अपमान का बदला लेता है तथा दुर्योधन की उरु (जंघा) को तोड़ देता है। यह दुःखान्त नाटक है।

4. दूतवाक्यम् : महाभारत के युद्ध के पूर्व श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बनकर जाते हैं तथा सन्धि का प्रस्ताव रखते हैं।

5. पंचरात्रम् : यह तीन अंकों का नाटक है। दुर्योधन यज्ञ करता है। यज्ञ के समाप्त होने पर द्रोणाचार्य दक्षिणा में यह माँग करते हैं कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया जाए। दुर्योधन यह शर्त रखता है कि यदि पाँच रात में अज्ञातवासी पाण्डव मिल गये तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जाएगा। द्रोणाचार्य उनका पता लगा लेते हैं और पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया जाता है।

6. बालचरितम् : यह पाँच अंकों में विभाजित है, जिसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर उनके द्वारा किए गये कँस के वध तक की कथा है।

7. दूतघटोत्कचम् : महाभारत के युद्ध में जब अभिमन्यु की मृत्यु हो जाती है तो श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर सन्धि के लिए धृतराष्ट्र और दुर्योधन के पास भेजते हैं। जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि दुर्योधन घटोत्कच का अपमान करते हैं।

8. कर्णभार : राजा कर्ण के दान का वर्णन है। इन्द्र ब्राह्मण का वेश धारण करके कर्ण से कवच और कुण्डल प्राप्त कर लेता है तथा बदले में एक ऐसी अमोघ शक्ति प्रदान करता है जो एक बार प्रयोग की जा सकती है।

9. मध्यम व्यायोग : नाटक की दृष्टि से यह व्यायोग है। इसमें मध्यम पाण्डव भीम एक ब्राह्मण पुत्र की घटोत्कच से रक्षा करता है। तभी वह अपनी पत्नी हिडम्बना से मिलता है।

10. प्रतिमा नाटक : यह सात अंकों में विभक्त है। रामायण की घटनाओं को इसमें चित्रित किया गया है। जब भरत को राम के राज्याभिषेक के लिए बुलाए जाते हैं तो उसके आने से पूर्व ही राम का वनवास व दशरथ की मृत्यु हो चुकी थी। वह घर आने से पूर्व नगर के बाहर देव कुल में दशरथ की प्रतिमा देखता है तो उसे पिता की मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

11. अभिषेक नाटकम् : इसमें रामायण की घटनाओं को संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है। राम रावण को मारकर अयोध्या आते हैं उनका राज्याभिषेक होता है।

12. अविमारक : इसमें राजकुमार अविमारक कुरंगी की प्रेमकथा है।

13. चारुदत्तम् : यह चार अंकों का नाटक है, जिसमें निर्धन परन्तु परोपकारी चारुदत्त नामक युवक का वसन्त सेना नामक वेश्या के प्रेम का वर्णन है।

इस प्रकार इन तेरह नाटकों में विभिन्न कथानकों को सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

❐

भास की नाट्य-कला

? भास की नाट्यशैली/नाट्यकला की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर–नाट्यकला की दृष्टि से भास एक ऐसे नाटककार थे जिन्होंने नाटक के क्षेत्र में नवीन व विविधमुखी उद्भावनाएँ प्रस्तुत करके नाटक को महत्त्व प्रदान किया था। नाटक में ऐतिहासिकता को लेकर इस प्रकार की कल्पना का मिश्रण किया जिसके कथानक प्रभावपूर्ण व दर्शकों को शिक्षा प्रदान करने वाले हों। उन्होंने प्रकल्पित नाटकों की भी रचना की जो नाटकों के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी कदम था। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके नाटक बार-बार रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाते थे, अतः उन्होंने उन्हें काट-छाँटकर इस प्रकार का रूप प्रदान किया था जिससे वे लोकप्रिय हो गये थे। दर्शक उन्हें बार-बार देखना चाहते थे। नाट्य कला की दृष्टि से भास के नाटकों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. सुव्यवस्थित कथानक : भास के कथानक इतने व्यवस्थित व सुगठित हैं कि उनमें कहीं भी अनावश्यक आडम्बर नहीं है। दर्शकों को कौतूहल बना रहता है। 'मध्यम व्यायोग' में कौन सा ब्राह्मण पुत्र घटोत्कच को दिया जाए? जिज्ञासा बनी रहती है। भास अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्मुख रहते हैं। वे दर्शकों व पाठकों को ऊबने नहीं देते। प्रसिद्ध व ऐतिहासिक कथानकों को उठाकर भी उनमें इस प्रकार की कल्पना का पुट रखा है कि दर्शकों को आभास होता है कि इस समस्या का यही हल उचित है। 'पंचरात्रम्' में कौरवों व पाण्डवों के राज्य विभाजन का हल द्रोणाचार्य सहज में खोज लेते हैं। कथावस्तु नाटक में गतिशील रहती है। घटनाओं में उतार-चढ़ाव होता रहता है।

2. यथार्थ पात्र : बाण ने भास के नाटकों की पात्र-योजना के विषय में लिखा है–**'बहुभूमिकैः'** अर्थात् उनके पात्रों की संख्या बहुत रहती है। जैसे 'पंचरात्रम्' में 26 पात्र हैं तो 'अविमारक' में 25 पात्र हैं। पात्रों की भीड़ दर्शकों के लिए कथानक में बाधा पैदा करती है। परन्तु इन नाटकों का कथानक ऐतिहासिक होने के कारण विभिन्न पात्रों को रंगमंच पर लाना पड़ा है। फिर भी प्रमुख पात्र बहुत कम हैं जिनके व्यक्तित्व को नाटककार ने उभारा है। नायकों में उदयन, चारुदत्त, राम, दुर्योधन, कर्ण, कृष्ण, भीम आदि सभी नायक उदात्त और शालीन हैं। जिनका व्यापक प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है। वे भारतीय आदर्श के ज्वलंत उदाहरण हैं। प्रत्येक पात्र की अपनी-अपनी विशेषता है। पात्र विविध क्षेत्रों में लिए हैं। वे जीवन के लिए संदेश देने वाले हैं। सभी पात्र आडम्बर रहित हैं और मितभाषी हैं।

3. रसात्मकता : रस की दृष्टि से भास के नाटक उत्तम कोटि के हैं। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं, बल्कि सच्ची रसात्मकता प्रदान करना है। महाभारत व रामायण की कथा पर आधारित नाटक प्रायः वीर रस प्रधान हैं। उनमें करुण रस भी है और हास्य भी, कहीं-कहीं भयानक और वात्सल्य भी है। वासवदत्ता, चारुदत्त आदि नाटकों में शृंगार रस की अभिव्यक्ति है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में सुकुमार हास्य है। चाहे 'बालचरितम्' हो या 'अभिषेक नाटक' सभी रसात्मकता लिए हुए हैं। जयदेव ने भास के विषय में कहा था–**'भासो हासः'** अर्थात् भास के नाटकों में हास्य रस की प्रधानता है। विदूषक की योजना इस तथ्य को सिद्ध करती है।

4. अभिनेयता : नाटक की सफलता उसकी अभिनेयता पर निर्भर करती है। भास के नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल रहे हैं। भास ने रंगमंच को ध्यान में रखकर ही नाटकों की रचना की थी। यथास्थान उन्होंने पात्रों के लिए संकेत कर दिया है कि किस प्रकार से अभिनय करना चाहिए। आंगिक, वाचिक और सात्त्विक तीनों प्रकार का अभिनय इन नाटकों में दिखाई पड़ता है। न तो कभी पात्रों की भीड़ रंगमंच पर दिखाई देती है और न कभी कथावस्तु में रुकावट आती है। भाषा व शैली सरल होने के कारण शिक्षित व अशिक्षित सभी उनके नाटकों को समझ सकते हैं। वहाँ वर्णनात्मकता नहीं है बल्कि गतिशीलता है।

5. कथोपकथन : कथोपकथन या संवाद नाटक के प्राण होते हैं क्योंकि नाटक में पात्रों का संवाद ही कथानक की सृष्टि करता है तथा पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करता है। वहाँ नाटककार कुछ नहीं कहता है। भास के नाटकों के कथानक स्वाभाविक हैं। उनमें बनावटीपन नहीं। प्रायः संवाद छोटे हैं, कहीं पर भी कोई उपदेष्टा के समान बहुत देर तक नहीं बोल पाता। कभी-कभी एक श्लोक के दो भाग कर दिये गए हैं। आधे भाग को एक पात्र बोलता है और शेष आधे में उसका उत्तर रहता है। जिससे संवाद रोचक बन जाते हैं। उदाहरण के लिए 'पंचरात्रम्' में संवाद इस प्रकार है–

राजा – क्व बृहन्नला इदानीं?
भटः – प्रियनिवेदनार्थम् अभ्यन्तरं प्रविष्टा।
राजा – बृहन्नला तवाद् आहताम्।
भटः – यद् आज्ञपयति महाराजः।

6. वर्णनात्मकता : भास वर्णन करने योग्य व्यक्ति, वस्तु, स्थान या भाव का वर्णन भी कम से कम शब्दों में इस प्रकार करते हैं कि उनका चित्र प्रस्तुत हो जाता है। क्रोधित व्यक्ति का चित्र, प्रेम का वर्णन, संयोग और वियोग दशा का चित्रण आदि विविध मुखी वर्णन उनके नाटकों में है। जैसे 'स्वप्नवासवदत्ता' में राजा के भावों को चित्रित करते हुए कहा है–

दुखं व्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः।
स्मृत्वा-स्मृत्वा याति दुखं नवत्वम्।।

(दृढ़ अनुराग को छोड़ना बहुत कठिन होता है। दुःख को याद करके वह नया-नया होता जाता है।)

यथा समय वे प्रकृति का चित्रण भी करते हैं। कहीं-कहीं प्रकृति भावों को उद्दीप्त करती हुई ज्ञात होती है। कहीं-कहीं प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण है। वासवदत्ता में तपोवन का चित्रण करते हुए कहा गया–**'विश्रब्धं हरिणा'**..... इत्यादि। संध्या का वर्णन करते हुए कहा गया है–**'खगा वासोपेताः'** इस प्रकार विविध वर्णन है, परन्तु वे लघु हैं, निरर्थक व लम्बे नहीं हैं।

7. अलंकार योजना : उनके नाटकों में अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का प्रयोग है तो उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकार भाषा के सौंदर्य को तथा भावों के उत्कर्ष को बढ़ाते हुए दिखाई पड़ते हैं। 'बालचरित' में उत्प्रेक्षा अलंकार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टि विफलतां गतः।।

भास भावों के अनुरूप अलंकारों का प्रयोग करते थे।

8. समुचित भाषा : भास के नाटकों की भाषा सरल है उसमें भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। उसमें यथास्थान प्रसाद, माधुर्य व ओज गुण है। भाषा में न तो कठिन शब्द हैं और न अनावश्यक पद हैं। दीर्घ पदावली भी कहीं पर प्रयोग नहीं की गई है। प्रायः बोलचाल की भाषा है। उसमें सूक्तियाँ हैं, लोकोक्तियाँ हैं और मुहावरे हैं। छोटी-छोटी सूक्तियाँ अत्यन्त प्रभावक हैं। जैसे–

1. दुःखं न्यासस्य रक्षणम्। 2. स्त्रीस्वभावस्तु कातरः।
3. अनतिक्रमणीया हि विधिः। 4. चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।

इस प्रकार उनकी भाषा में भावों की अभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक है।

9. शैली : भास ने नाटकीय शैली को स्वाभाविक व मनोरम बनाया है। भावों व वातावरण के अनुसार उनकी शैली बदलती जाती है। कहीं सरलता व सरसता है तो कहीं ओजगुण होने के कारण वीरता का समावेश है। युद्ध के वर्णन में उनकी शैली भी मानो वीरता से भरकर आती है। पात्रों के भावों को प्रस्तुत करने में उन्होंने विविधमुखी शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने नाटकों के नियमों का कहीं भी उल्लघंन नहीं किया है।

अतः कहा जा सकता है कि भास नाट्य-कला के मर्मज्ञ थे। वे अपने युग के नाटक लेखक ही नहीं थे बल्कि रंगमंच के सच्चे ज्ञाता भी थे। दर्शकों की रुचि और जिज्ञासा का उन्हें ज्ञान था। उनके नाटक के उद्देश्य सदा सार्थक, शालीन व उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले हैं। एक विद्वान् के शब्दों में–

"भास के नाटक उनकी नाट्यकला के उस स्वस्थ युग के सूचक हैं जब रंगमंच, नाट्य और नाटककार एक-दूसरे के परिपूरक एवं परिपोषक थे। महाकवि कालिदास ने भास की महनीय नाट्यकला से प्रभावित होकर ही उनको 'प्रथितयशसाम्' कहकर सम्मानित किया है।"

'दूतवाक्यम्' का सारांश

? 'दूतवाक्यम्' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

'दूतवाक्यम्' के कथानक को प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर–'दूतवाक्यम्' संस्कृत साहित्य का एक अंक में प्रस्तुत नाटक है, जिसे संस्कृत के आचार्यों ने 'व्यायोग' नामक रूपक कहकर पुकारा है। इसके रचयिता सुप्रसिद्ध नाटककार 'भास' हैं। इसका कथानक मूलतः 'महाभारत' से लिया गया है।

पाण्डव जुए में हारकर बारह वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर लेते हैं तथा अपनी पैतृक-सम्पत्ति (पूर्वजों की सम्पत्ति) के रूप में हस्तिनापुर का आधा राज्य चाहते हैं। उनकी यह माँग न्यायपूर्ण है। इसके लिए वे श्रीकृष्ण को दूत बनाकर हस्तिनापुर के राजा दुर्योधन के पास भेजते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत के रूप में कार्य करते हैं। इसी कारण इस एकांकी नाटक का नाम 'दूतवाक्यम्' रखा गया है। इस नाटक का सारांश इस प्रकार है–

1. मंत्रशाला को सजाना–नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार मंच पर आता है और दर्शकों को संकेत देता है कि कौरवों का पाण्डवों के साथ विरोध हो जाने पर दुर्योधन ने सेवक को आज्ञा दी है कि सभा भवन को सुसज्जित किया जाए।

तत्पश्चात् काञ्चुकीय आकर दुर्योधन से निवेदन करता है कि सभाभवन सजा दिया गया है तथा उनके आदेश के अनुसार सभी राजाओं को सभाभवन में बुला लिया गया है।

2. सेनापति का चुनाव–सभाभवन में सभी क्षत्रिय-राजागण दुर्योधन की आज्ञा से अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। दुर्योधन अपने मित्र वैकर्ण तथा वर्षदिव से पूछता है कि मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। इसका सेनापति किसे बनाया जाए? मामा शकुनि (गान्धार के राजा) के निर्देश पर ही भीष्म पितामह को कौरव पक्ष की सेना का सेनापति बनाया गया।

3. श्रीकृष्ण के प्रति व्यवहार–दुर्योधन चाहता है कि श्रीकृष्ण के प्रति सभा में अशिष्ट व्यवहार किया जाना चाहिए। जब काञ्चुकीय श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहकर पुकारता है तो दुर्योधन उस पर क्रोधित हो जाता है। क्षमा-याचना करने पर ही दुर्योधन शान्त होता है। दुर्योधन सभा भवन में उपस्थित राजाओं से पूछता है कि पाण्डवों के दूत बनकर आए श्रीकृष्ण के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए? वह स्वयं कहता है कि उसका सम्मान न करके उसे बाँध लेना चाहिए। वह सभी राजाओं को यह आदेश भी देता है कि जो श्रीकृष्ण के सभाभवन में आने पर उसके सम्मान के लिए खड़ा होगा उसे बारह स्वर्ण-मुद्राओं से दण्डित किया जाएगा। तभी दुर्योधन एक चित्रपट मँगवाता है, जिसमें द्रौपदी के केश व वस्त्र खींचने और उसे अपमानित करने के चित्र हैं। वह उसी चित्रपट को देखने में संलग्न होकर श्रीकृष्ण के आने पर स्वयं खड़ा होना नहीं चाहता।

4. चित्रपट के दृश्य–दुर्योधन ने यह चित्रपट पाण्डवों का अपमान करने के लिए मंगाया है। वह इस चित्रपट के उन दृश्यों का भी वर्णन करता है जिसमें द्रौपदी के अपमान से क्रोधित होकर भीम खम्भा उखाड़ने को तैयार है, अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहता है, नकुल व सहदेव अपनी-अपनी तलवार खींचने की तैयारी करते हैं, परन्तु युधिष्ठिर उन्हें रोक लेता है। उसी चित्रपट से ज्ञात होता है कि शकुनि कुदृष्टि से द्रौपदी को देखता है। भीष्म पितामह व द्रोणाचार्य लज्जित होकर आँचल से अपना मुख ढक लेते हैं।

5. श्रीकृष्ण का सभाभवन में प्रवेश–श्रीकृष्ण सभाभवन में जाते हुए सोचते हैं कि दुर्योधन अत्यन्त दुष्ट स्वभाव का है वह पाण्डवों को आधा राज्य नहीं देगा। फिर भी, मैं अर्जुन का मित्र हूँ तथा मुझे अर्जुन के बड़े भाई युधिष्ठिर ने भेजा है। अतः मुझे आना पड़ा है, परन्तु दुर्योधन का घमण्ड उनके विनाश का कारण बन जाएगा।

श्रीकृष्ण के व्यक्तित्त्व का इतना महान् प्रभाव है कि उसके प्रवेश करते ही सभी क्षत्रिय राजा घबरा जाते हैं, यहाँ तक कि स्वयं दुर्योधन अपने आसन से गिरने लगता है। श्रीकृष्ण सभी को धैर्य बँधाते हैं और अपने आसन पर बैठने को कहते हैं। चित्रपट को देखकर श्रीकृष्ण को अनुभव होता है कि दुर्योधन नासमझ है जो सभाभवन में इस चित्रपट को रखकर अपने ही वंश का अपमान कर रहा है। परन्तु स्वयं दुर्योधन शिष्टाचार के कारण पाण्डवों की कुशलता का समाचार पूछता है।

6. श्रीकृष्ण का प्रस्ताव–श्रीकृष्ण सभी राजाओं व सभासदों के सामने पाण्डवों का यह प्रस्ताव रखते हैं कि पाण्डवों ने जुए में हारकर शर्त के अनुसार बारह वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर लिया है। अब उनकी पैतृक सम्पत्ति के रूप में उन्हें आधा राज्य प्रदान किया जावे।

परन्तु दुर्योधन इसके पक्ष में नहीं है। वह तो स्पष्ट कह देता है कि यदि पाण्डवों को राज्य चाहिए तो वे युद्ध करके प्राप्त कर लें, अन्यथा शान्ति के साथ वन में संन्यासी बनकर रहें। श्रीकृष्ण जानते हैं कि दुर्योधन युद्ध करके कौरव वंश का विनाश कर डालेगा।

7. श्रीकृष्ण व दुर्योधन का विवाद–दुर्योधन यह भी तर्क प्रस्तुत करते हैं कि पाण्डव के पिता पाण्डु किमृदम ऋषि के शाप से संतान रहित थे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तो क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र व अश्वनी कुमारों (देवों) की सन्तान हैं, उन्हें राज्य का अधिकारी नहीं माना जा सकता। श्रीकृष्ण भी बताते हैं कि उनके पिता धृतराष्ट्र भी व्यास के नियोग से उत्पन्न हैं। अतः कौरवों का भी राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। विवाद जब बढ़ने लगता है तो दुर्योधन पुनः स्पष्ट कह देते हैं कि यदि पाण्डवों को राज्य चाहिए तो वे युद्ध करें–

कुर्वन्तु ते साहसम्।

8. श्रीकृष्ण का क्रोधित होना–श्रीकृष्ण विवाद में अपने को अपमानित जानकर क्रोधित हो जाते हैं और अपने शस्त्र सुदर्शन को याद करते हैं। शीघ्र ही, सुदर्शन चक्र आकाश मार्ग से आ जाता है। वह भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश का पालन करने के लिए तत्पर है। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण के दिव्य शस्त्र–शार्ङ्ग धनुष, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख, नंदक तलवार आदि शस्त्र भी आ जाते हैं।

9. सुदर्शन का श्रीकृष्ण को शान्त करना–जब श्रीकृष्ण दुर्योधन पर प्रहार करने के लिए सुदर्शन चक्र से कहते हैं तो सुदर्शन नम्र निवेदन करता है कि आपका यह उद्देश्य नहीं है। वह कहता है–

'महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले'

आप ने तो पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए अवतार लिया था। इस पर श्रीकृष्ण शान्त हो जाते हैं और सभी शस्त्र लौट जाते हैं।

10. श्रीकृष्ण का पाण्डवों के शिविर में जाना–नाटक के अन्त में धृतराष्ट्र आते हैं और अपने पुत्र दुर्योधन की ओर से श्रीकृष्ण से क्षमा याचना करते हैं। श्रीकृष्ण शीघ्र ही वापस पाण्डवों के शिविर में चले जाते हैं।

❑

श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण

? **श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण अपने शब्दों में लिखिए।** **(म.द.वि. 2011)**

अथवा

'दूतवाक्यम्' के आधार पर श्रीकृष्ण के चरित्र की विवेचना कीजिए।

उत्तर–संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार भास द्वारा विरचित 'दूतवाक्यम्' एक रूपक है जिसमें श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास जाते हैं। वे कौरवों और पाण्डवों के हितैषी हैं। इसीलिए वे चाहते हैं कि दोनों में परस्पर युद्ध न हो। आर्यवर्त में सुख और शान्ति व्याप्त हो। धर्म व न्यायपूर्वक पाण्डवों को आधा राज्य मिलना चाहिए। इसी आधार पर प्रजा आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगी। संभवतः, इसी भावना को ध्यान में रखकर वे पांडवों के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने आते हैं। प्रस्तुत रूपक में श्रीकृष्ण के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. कथानायक–श्रीकृष्ण प्रस्तुत रूपक के केन्द्र बिन्दु हैं। वे इस रूपक में आद्यन्त दिखाई देते हैं। उन्हीं का महत्त्व व वर्चस्व प्रस्तुत रूप में परिव्याप्त है। इस कथा में वे पाण्डवों के दूत के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उन्हीं के वचन या दूतवाक्य इस रूपक को सार्थक बना देते हैं। अतः कहा जा सकता है कि इस रूपक के नायक श्रीकृष्ण हैं।

दूसरी बात यह है कि रूपक के अन्त में उन्हीं के वचन सार्थक सिद्ध होते हैं क्योंकि दुर्योधन के पिताश्री धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण के समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं।

2. प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व–श्रीकृष्ण ऐतिहासिक व पौराणिक पुरुष हैं जो दिव्यशक्ति सम्पन्न होकर भी भूमण्डल पर जन-सामान्य की भांति रहते हैं। फिर भी, पृथ्वीतल पर शत्रुवर्ग व मित्रवर्ग सभी उनका सम्मान करते हैं। जब वे पाण्डवों के दूत के रूप में कौरवों की मंत्रशाला में आते हैं तो वहां दुर्योधन की आज्ञा थी कि कोई भी राजा श्रीकृष्ण के सम्मान में खड़ा नहीं होगा। यदि कोई खड़ा हो गया तो उसे बारह स्वर्णमुद्राओं से दण्डित किया जाएगा। परन्तु श्रीकृष्ण के सभामण्डल में आते ही राजा घबराकर खड़े हो जाते हैं तब श्रीकृष्ण पूछते हैं–

'कथं कथं मां दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः'

(मुझे देखकर सभी क्षत्रिय राजागण घबराकर क्यों खड़े हो गए।)

इतना ही नहीं, स्वयं दुर्योधन श्रीकृष्ण के आगमन पर अपने आसन से विचलित हो जाते हैं उसे बड़ा आश्चर्य होता है तभी वह सोचता है–

अहो बहुमानोऽयं दूतः।

(यह दूत बहुत सम्माननीय है)।

यह श्रीकृष्ण के प्रभावपूर्ण व्यक्ति का ही प्रभाव है।

3. लोक-कल्याण के इच्छुक—श्रीकृष्ण ने इस वसुधामण्डल पर इस कारण नर के रूप जन्म लिया था जिससे अधर्म का विनाश हो और धर्मपूर्वक राजागण राज्य कर सकें। प्रस्तुत रूपक में भी वे यही चाहते हैं कि कौरवों और पाण्डवों का विनाशक युद्ध न हो। वे भविष्य द्रष्टा थे। इसी कारण महाभारत में होने वाले महाविनाश को दूर करना चाहते थे। वे दोनों पक्षों में धैर्यपूर्वक सन्धि चाहते हैं। वे दुर्योधन की मंत्रशाला में आकर दुर्योधन को समझाते हैं कि धर्मपूर्वक पाण्डवों को आधा राज्य दे देना चाहिए, नहीं तो समस्त कौरवकुल नष्ट हो जाएगा—

'एवं परस्पर-विरोध–विवर्धनेन, शीघ्रं भवेत् कुरुकुलं नृप! नामशेषम्।'

(इस प्रकार विरोध बढ़ाने से कौरववंश शीघ्र नष्ट हो जाएगा।)

श्रीकृष्ण के ये कथन इसी ओर संकेत करते हैं कि वे लोक-कल्याण के इच्छुक थे।

4. व्यवहारज्ञ—श्रीकृष्ण व्यवहार के ज्ञाता, परम पुरुष थे। जब दुर्योधन, श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को सुनकर क्रोध से भर जाता है तो वह कहता है कि राज्य दान में नहीं दिया जाता, बल्कि वीरतापूर्वक छीना जाता है। यदि पाण्डवों में शक्ति है तो राज्य प्राप्त कर लें। दुर्योधन के इस कथन को अनुचित मानते हुए श्रीकृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं—

भोः सुयोधन! अलं बन्धुजने परुषं अभिधातुम्।

(हे दुर्योधन! तुम्हें अपने भाइयों के प्रति इस प्रकार के कठोर वचन नहीं कहने चाहिए।)

इस प्रकार के वचनों से भाइयों में शत्रुता पैदा होती है। अच्छा यही है—

'कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहः'।

(भाइयों के प्रति स्नेहपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।)

श्रीकृष्ण को उस समय बहुत आश्चर्य होता है जब दुर्योधन सभाभवन में 'द्रौपदी के केश खींचने वाला' चित्र सभी के समक्ष रखते हैं। वस्तुतः, द्रौपदी का सम्बन्ध तो दुर्योधन के परिवार से था। उसका अपमान अपने ही परिवार का अपमान है। श्रीकृष्ण दुर्योधन के इस कार्य को सर्वथा अनुचित मानते हैं और उस चित्र को सभा से हटाने के लिए कहते हैं—

'आः अपनीयताम् चित्रपटः'।

(इस चित्रपट को शीघ्र हटाइए।)

इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण व्यवहार के अनुरूप सभी कार्य स्वयं करते हैं और दूसरों को भी करने की सलाह देते हैं।

5. पाण्डवों के पक्षधर—श्रीकृष्ण दुर्योधन की सभा में पाण्डवों का समाचार लेकर जाते हैं कि पाण्डवों ने अपनी वनवास की प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है। अतः धर्मपूर्वक उन्हें आधा राज्य दे दिया जाए। यह कार्य श्रीकृष्ण के लिए उचित नहीं था। जैसा कि वे स्वयं समझते हैं—

सुयोधनं प्रति मया अपि अनुचित-दौत्य-समयोऽनुष्ठितः।

(दुर्योधन के पास जाना मेरे लिए दूत का कार्य सर्वथा अनुचित है।)

मैं जानता हूँ कि दुर्योधन दुष्ट स्वभावी है। यह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगा—

दुर्योधनं हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यपि।

(दुर्योधन मुझे देखकर यह संधि का कार्य स्वीकार नहीं करेगा।)

परन्तु श्रीकृष्ण का पाण्डवों के प्रति अगाध स्नेह है। वह अर्जुन का परम मित्र है। धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति उनकी महती आस्था है। फिर, पाण्डव धर्म के मार्ग पर चल रहे हैं। इसी कारण श्रीकृष्ण पाण्डवों का पक्ष लेते हैं—

रूपक के अन्त में भी धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

क्व नु खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः?

(पाण्डवों के हितैषी भगवान् श्रीकृष्ण कहां पर है।)

यह सत्य है कि श्रीकृष्ण सदैव पाण्डवों के साथ रहे हैं।

6. गुरुजनों के प्रति कृतज्ञ—श्रीकृष्ण इतने शिष्ट व विनयशील थे कि बड़ों के प्रति सदा सम्मान प्रदर्शित करते थे। जब वे दुर्योधन की सभा में दूत के रूप में पाण्डवों का प्रस्ताव लेकर जाते हैं तो उन्हें देखकर घबराहट से सभी राजागण खड़े हो जाते हैं। श्रीकृष्ण सम्माननीय गुरुजनों को सर्वप्रथम बैठने के लिए कहते हैं—

'आचार्य आस्यताम्। गाङ्गेय-प्रमुखाः राजानः! स्वैरं आस्यतां भवन्तः।'

(आदरणीय द्रोणाचार्य! आप अपना स्थान प्राप्त कीजिए, भीष्म पितामह आदि आदरणीय क्षत्रिय राजागण अपना-अपना स्थान ग्रहण करें।)

उनके बैठने पर ही श्रीकृष्ण आसन पर बैठते हैं। यह उनकी गुरुजनों या बड़ों के प्रति कृतज्ञता और शिष्टता है।

इतना ही नहीं, दुर्योधन श्रीकृष्ण से दुर्व्यवहार करता है यहां तक कि उसे बांधने के लिए आज्ञा देता है। इतना अपमान होने पर भी, रूपक के अन्त में जब दुर्योधन के पिताश्री वयोवृद्ध धृतराष्ट्र नतमस्तक होकर श्रीकृष्ण से क्षमा याचना करते हैं तो श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं–

हाधिक्, पतितोऽत्रभवान्! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

(मुझे दुख है कि आप मेरे चरणों पर झुक गए हैं। आप उठिए, शीघ्र उठिए।)

आप बड़े होने के कारण आदरणीय है। इससे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण बड़ों के प्रति सम्मान रखते थे, मानो यह उनका स्वभाव था।

7. परम तार्किक–श्रीकृष्ण व्यर्थ की बहस किसी से नहीं करते हैं। यदि कोई सार्थक प्रश्न करता है या आक्षेप लगाता है तो तर्कपूर्ण उत्तर देने में तत्पर रहते हैं।

जब दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य देना नहीं चाहता है और पाण्डवों को राज्याधिकारी न मानता हुआ उन पर आक्षेप करता है–वन में शिकार करते हुए अपराध के कारण पितृव्य (चाचा) पाण्डु उस समय किन्दम नामक ऋषि के शाप से अपनी पत्नी से विमुख हो गए थे, अतः युधिष्ठिर आदि, पाण्डु के पुत्र नहीं है तो वे हस्तिनापुर के राज्य के अधिकारी कैसे हो सकते हैं–

परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्?

(दूसरों के पुत्रों का पैतृक सम्पत्ति में कैसे अधिकार हो सकता है?)

इस प्रश्न का सार्थक व तर्कपूर्ण उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–

पुरुवंशी विचित्रवीर्य की दो पत्नियां थी–अम्बिका ओर अम्बालिका। विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् व्यास के नियोग से धृतराष्ट्र अम्बिका से पैदा हुए थे। जब धृतराष्ट्र ही राज्य के अधिकारी नहीं है तो उनके पुत्र दुर्योधन आदि कौरव राज्य के अधिकारी कैसे हो सकते हैं–

व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते।

श्रीकृष्ण के इस तर्कपूर्ण उत्तर को सुनकर दुर्योधन शान्त हो जाता है।

दूसरी ओर, दुर्योधन श्रीकृष्ण पर भी व्यक्तिगत रूप से आपेक्ष करता हुआ पूछता है कि तुमने अपने मामा कंस को क्यों मार डाला था तब तुम्हें दया नहीं आई थी? हमें पाण्डवों पर दया करने को कहते हो? इस पर कृष्ण कहते हैं कि कंस ने एक ओर तो अपने पिता को बंदी बना रखा था। दूसरी ओर, उसने माता देवकी के पुत्रों को मार डाला था। अतः वह अपने पापों के कारण मारा गया–

'हतोऽयं मृत्युना स्वयम्'।

इस प्रकार श्रीकृष्ण इतने चतुर और निष्णात हैं कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर तर्कसंगत देते हैं।

8. स्वाभिमानी–श्रीकृष्ण की अन्यतम विशेषता यह है कि वे स्वाभिमानी रहे हैं। वे अपने अपमान को सहन नहीं करते हैं। यदि कोई उन पर आक्षेप करता है तो वे क्रोधित हो उठते हैं। दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रति अनुचित व्यवहार करता है। यहां तक कि उन्हें बांधने का आदेश देता है। श्रीकृष्ण देखते हैं–

कथं बद्धुकामो मां किल सुयोधनः।

तभी वे अपनी माया का प्रयोग करते हुए दुर्योधन के अनौचित्यपूर्ण व्यवहार से आक्रोश में भरकर अपने दिव्य अस्त्रों को याद करते हैं। तभी उन्हें अनुभव होता है कि जो कौरवों का विनाश कार्य पाण्डवों को करना चाहिए वह मुझे ही करना पड़ रहा है। अतः शांत हो जाते हैं। दूसरी ओर, रूपक के अन्त में जब दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र आकर, दुर्योधन के अपराध की क्षमा चाहते हैं और कहते हैं–

एतन्मे त्रिदशाध्यक्षः! पादयोः पतितं शिरः।

हे देवों के देव! (श्रीकृष्ण!) मेरे पुत्र दुर्योधन ने अपराध किया है। अतः क्षमा के लिए मैं तुम्हारे चरणों में शीश झुकाता हूं। तभी श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को ससम्मान शान्त करके चले जाते हैं, परन्तु अपने स्वाभिमान पर चोट नहीं आने देते।

9. विष्णु के अवतार–श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। वे यहां पर नारायण से नर के रूप में क्रीड़ा कर रहे हैं। पृथ्वी के अधर्म को दूर करके धर्म का आचरण सिखा रहे हैं। दुर्योधन जैसे अहंकारी राजाओं का अधार्मिक व्यवहार व आचरण उन्हें मान्य नहीं है। अतः क्रोधावेश में होकर अपने अस्त्र सुदर्शन चक्र को याद करते है–

क्व नु खलु भगवान् नारायणः?

(भगवान नारायण = विष्णु या श्रीकृष्ण कहां हैं?)

इतना नहीं, श्रीकृष्ण के स्मरण करते ही उनका शार्ङ्ग नामक धनुष, कौमोदकी नामक गदा, पांचजन्य नाम का शंख, नन्दक नामक तलवार आ जाते हैं। जो विष्णु भगवान के दिव्य अस्त्र है। इन अस्त्रों के दिव्य रूप में यहां पर चित्रण भी किया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण विष्णु भगवान के अवतार थे।

दूसरी ओर, सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण को याद दिलाता है–

महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले।

आपने तो पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए (अधर्म के विनाश के लिए) पृथ्वी पर अवतार लिया था। यदि दुर्योधन मारा गया तो आपका अवतार लेना निष्फल हो जाएगा।

श्रीकृष्ण के शान्त होने पर ही उनकी आज्ञा प्राप्त करके सुदर्शन चक्र पुनः चला जाता है।

10. सुयोग्य दूत–प्रस्तुत रूपक में श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के दूत की भूमिका का निर्वाह किया है परन्तु उनमें वह योग्यता व शालीनता है जो एक सुयोग्य दूत में होनी चाहिए। वे जानते हैं कि दुर्योधन की दुष्टता से समस्त कौरव कुल नष्ट हो जाएगा। अतः वे पाण्डवों के दूत बनकर जाते हैं, बार-बार दुर्योधन को समझाते हैं। वे दूत के रूप में दुर्योधन को संदेश देते हैं कि तुम्हारे भ्रातागण पाण्डव वनवास में गहन दुख भोग चुके हैं तथा शर्त के अनुसार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके हैं। अतः धर्मपूर्वक आधा राज्य उन्हें दे देना चाहिए–

यद् दायाद्यं तद् विभज्यताम्।

(जो भी पैतृक सम्पत्ति है वह उन्हें अधिकार के रूप में विभक्त कर देनी चाहिए।)

दूत के रूप में ये वचन श्रीकृष्ण की सभ्यता व शिष्टता को अभिव्यक्त करते हैं।

श्रीकृष्ण का दुर्योधन की सभा में शिष्टतापूर्वक जाना, वहां पाण्डवों के संदेश को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना, दुर्योधन के प्रत्येक प्रश्न का तर्कपूर्ण उत्तर देना, दुर्योधन को न्याय व धर्म के मार्ग पर चलने को प्रेरित करना आदि उनकी दूतकर्म की योग्यता को व्यक्त करता है।

इस प्रस्तुत रूपक में श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण एक ओर, पौराणिक तथ्यों पर आधारित है तो दूसरी ओर, धर्म और न्याय का पाठ पढ़ाने वाला है।

दुर्योधन का चरित्र-चित्रण

? **दुर्योधन का चरित्र-चित्रण कीजिए।**

अथवा

'दूतवाक्यम्' के आधार पर दुर्योधन के चरित्र की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर–'दूतवाक्यम्' रूपक का द्वितीय प्रमुख पात्र दुर्योधन है। जिसे खलनायक कहा जा सता है। वह कौरवों के सबसे बड़ा भाई है तथा हस्तिनापुर का राजा है। अनेक क्षत्रिय राजागण उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। पाण्डवों व कौरवों के मान्य गुरुवर द्रोणाचार्य, महान् योद्धा व बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह, अद्वितीय वीर कर्ण आदि योद्धा उसी के राज्य में है। वह समस्त हस्तिनापुर पर राज्य करने के कारण भाई पाण्डवों को राज्य देने का इच्छुक नहीं है। प्रस्तुत रूपक में दुर्योधन के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है–

1. प्रभावशाली व्यक्तित्व–रूपक के प्रारंभ में कंचुकी दुर्योधन के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता हुआ कहता है–दुर्योधन पुष्ट शरीरवाला, युवावस्था को प्राप्त, सुंदर छाते व उत्तम चामरवला है जिसने अपने शरीर पर मणियों व आभूषणों से भरा श्वेत वस्त्र धारण कर रखा है। उसका सुंदर शरीर उसी प्रकार सुशोभित है–

नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः

जिस प्रकार नक्षत्रों के मध्य पूर्णिमा का चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार क्षत्रियों के मध्य वह सुशोभित है।

वह मंत्रशाला में अपने अधीनस्थ राजाओं को आमंत्रित करता है क्योंकि श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत के रूप में उनका संदेश लेकर आ रहे हैं। वहां पर वह सर्वप्रथम अपनी सेना के सेनापति के रूप में भीष्म पितामह का चयन अपने प्रभाव से ही करता है। उसका अनेक क्षत्रिय राजाओं पर अधिकार है। अतः उन्हें आदेश देता है–

योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण दण्डयः

जो कोई भी राजा, श्रीकृष्ण के आगमन पर खड़ा होगा, मैं उसे बारह स्वर्णमुद्राओं से दण्डित करूंगा। अतः सावधान होकर आप सुन ले।

उसके इस आदेश से ज्ञात होता है कि उसका प्रभाव सुदरवर्ती अनेक राजाओं पर है।

2. श्रीकृष्ण के प्रति द्वेषी—श्रीकृष्ण पाण्डवों का साथ देते हैं। पाण्डवों को कौरव शत्रु के समान समझते रहे हैं। अतः श्रीकृष्ण के प्रति भी दुर्योधन द्वेषभावना से व्यवहार करता है। जब द्वारपाल कंचुकी, दुर्योधन को श्रीकृष्ण के पाण्डवों के दूत के रूप में आने की सूचना देता है तो वह 'पुरुषोत्तम नारायणः' शब्द श्रीकृष्ण के लिए प्रयोग करता है जो श्रीकृष्ण के प्रति शिष्टता का सूचक शब्द है। इन शब्दों को सुनकर दुर्योधन क्रोधित होकर कहता है—

'किं कंसमृत्यो दामोदरस्तव पुरुषोत्तमः! स गोपालकः तव पुरुषोत्तमः।'

अर्थात् दुर्योधन श्रीकृष्ण को 'कंसमृत्य' (कंस का सेवक), 'दामोदर', 'गोपालक' आदि तुच्छ शब्दों से संबोधित करता है। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण को 'कृष्णमति' (काली बुद्धिवाला) भी कहता है—

दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः सः कृष्णः'।

दुर्योधन को श्रीकृष्ण से इतना द्वेष है कि वह मंत्रशाला से सभी राजाओं को आदेश देता है कि यदि कोई श्रीकृष्ण के आने पर उसके सम्मानार्थ खड़ा होगा तो उसे 12 सोने की मुद्राओं से दण्डित किया जाएगा। फिर भी राजागण श्रीकृष्ण का सम्मान करते हैं।

इस रूपक में आदि से अन्त तक दुर्योधन का श्रीकृष्ण के प्रति द्वेष झलकता है।

3. पाण्डवों का शत्रु—दुर्योधन पाण्डवों को इसलिए शत्रु मानता है क्योंकि वे उसके (हस्तिनापुर के) आधे राज्य के अधिकारी हैं। वह पाण्डवों को राज्य देना नहीं चाहता। उसे पाण्डव शत्रु के समान दिखाई पड़ते हैं। दूत के रूप में आए हुए श्रीकृष्ण को भी वह बंदी बनाना चाहता है क्योकि उसका विश्वास है कि श्रीकृष्ण के बिना पाण्डव निस्तेज हो जाएंगे और समस्त पृथ्वी शत्रुरहित मेरी हो जाएगी—

'क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना'।

दुर्योधन पाण्डवों को राज्य का अधिकारी नहीं मानता है। उसकी मान्यता है कि वन में पाण्डु के शिकार करते समय अपराधी होने के कारण किंदम नामक ऋषि के शाप से वे अपनी पत्नी से विमुख हो गए थे। युधिष्ठिर आदि पाण्डु के पुत्र नहीं है—

'परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्'।

दूसरों की सन्तान होने के कारण पाण्डव हस्तिनापुर के राज्य पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं रख सकते।

श्रीकृष्ण दुर्योधन को बार-बार समझाते हैं कि पाण्डव उनके भाई है। अतः उनसे द्वेष न करके अच्छा सम्बन्ध रखना चाहिए। परन्तु वह राज्य के विभाजन के विषय में कोई भी बात नहीं करना चाहता। बल्कि पाण्डवों को अपना शत्रु मानता है और कहता है—

देवात्मजै मर्नुष्यानां कथं वा बन्धुता भवेत्।

(पाण्डव तो देवताओं के पुत्र है उनका मानवों के साथ कैसा भाईचारा, संभव है?)

दुर्योधन तो यहां तक कहता है कि मैं उन्हें राज्य से एक तिनका भी नहीं दूंगा।

4. विशाल सेना अधिकारी—दुर्योधन के पास विशाल साम्राज्य है। जिसमें अनेक क्षत्रिय योद्धा उसके आधीन हैं। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे अद्वितीय वीर उनके पक्ष में हैं। फिर, उसके पास विस्तीर्ण शस्त्रागार है, जिसमें अनेक प्रकार के असंख्य शस्त्र हैं। बहुत बड़ी घुड़शाला है जहां पर श्रेष्ठ अश्वों का समूह है। उसके पास हाथियों का विशाल समुदाय है।

वह गर्व से सभा में कहता है—

अस्ति मम एकादश-अक्षौहिणी-बल-समुदयः।

(मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना का समूह है।)

प्राचीन काल में एक अक्षौहिणी सेना में 21870 रथ, 21870 हाथी, 65610 घोड़े तथा 109350 पैदल योद्धा होते थे। यह चतुरंगिनी सेना कही जाती थी।

इस प्रकार दुर्योधन अनेक क्षत्रिय वीरों व विशाल सेना का अधिकारी होने के कारण अपने को अनुपम शक्तिशाली मानता है।

5. युद्ध प्रेमी—दुर्योधन युद्ध चाहता है। वह श्रीकृष्ण से स्पष्ट कह देता है कि यदि पाण्डवों को राज्य चाहए तो **'कुर्वन्तु ते साहसम्'** अर्थात् वे या तो युद्ध करें अथवा संन्यासी बनकर वन में जाकर शान्ति प्राप्त करें।

रूपक के प्रारंभ में ही जब दुर्योधन को ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर आ रहे हैं तो दुर्योधन कहता है—

मे हृदयं सहर्षं प्राप्तं रणोत्सवम्।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आज स्वयं ही युद्ध रूपी उत्सव आ गया है। मैं अपनी वीरता से पाण्डवों की सेना के मस्त हाथियों के दांतों को उखाड़ दूंगा।

श्रीकृष्ण बार-बार दुर्योधन को समझाते हैं किउसे अपने भाइयों से द्वेष नहीं करना चाहिए। इसके दुष्परिणाम होंगे। परन्तु दुर्योधन श्रीकृष्ण की एक भी बात पर ध्यान नहीं देता। कभी पांडवों पर आक्षेप करता है तो कभी कृष्ण को ही दोषी कहता है। वह श्रीकृष्ण की शक्ति को जानकर भी उसे बांधने का प्रयत्न करता है और कहता है–

नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाद्य।

तुम, भले ही अपनी माया का प्रयोग करो। दैवीय अस्त्रों को चलाओ परन्तु आज तुम राजाओं के बीच में मेरे द्वारा बांध लिए जाओगे।

इस प्रकार प्रस्तुत रूपक में दुर्योधन का युद्ध प्रेमी का रूप दृष्टिगोचर होता है।

6. राज्य लोलुपी–दुर्योधन मूलतः राज्य का लोभी है। पाण्डवों के वनवास के समय उसने हस्तिनापुर का सम्राट बनकर राजलक्ष्मी का उपभोग किया है। आज भी वह हस्तिनापुर पर अपना पूर्ण अधिकार समझता है; जबकि आधे राज्य के अधिकारी पाण्डव है। वह श्रीकृष्ण से स्पष्ट कह देता है कि यदि युद्ध में भीम के रूप में साक्षात् वायुदेवता तथा अर्जुन के रूप में प्रत्यक्ष इन्द्र देवता भी मुझ पर प्रहार करें तो मैं राज्य नहीं दूंगा–

'न दास्ये, तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये'

(मैं, पिता द्वारा भोगे गए और अपने पराक्रम से सुरक्षित किए गए अपने राज्य के किसी भी भाग को पाण्डवों को नहीं दूंगा।)

दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि राज्य न तो किसी से मांगा जाता है और न किसी को दान में दिया जाता है। मैं हस्तिनापुर का राजा हूं (यह राज्य मेरा ही रहेगा) यदि कोई राज्य चाहता है तो मुझसे बलपूर्वक छीन ले।

7. विवेक शून्य–दुर्योधन विवेक से कार्य नहीं करता, बल्कि व्यर्थ की बातें करता है। लोक में आदरणीय श्रीकृष्ण के मंत्रशाला में आने पर वह सभी राजाओं को खड़े होने से रोकता है। परंतु स्वयं द्रौपदी के केशों के आकर्षण का चित्र सामने रखता है जो उसकी मूर्खता है। जैसा कि श्रीकृष्ण उससे कहता है–

सुयोधनोऽयं स्वजनावमानं, पराक्रमं पश्यति। बालिशत्वात्।

यह दुर्योधन मूर्खता के कारण अपने कुल के अपमान को वीरता समझ रहा है। ऐसा संसार में कोई भी मूर्ख नहीं है जो सभाओं में अपने दोषों को कहेगा।

जब श्रीकृष्ण मायारूपी शरीरों को धारण करते हैं तो दुर्योधन बुद्धि से काम नहीं लेता, बल्कि राजाओं को आदेश देता है कि वे एक-एक करके केशवों को बंदी बना लें। वास्तव में वहां तो श्रीकृष्ण के मायामयी रूप हैं उन्हें बंदी बनाकर श्रीकृष्ण का बंधन कैसे संभव है?

सम्पूर्ण रूपक में भास ने दुर्योधन को विवेकरहित ही सिद्ध किया है।

8. अहंकारी–दुर्योधन को अपने पर, अपने योद्धाओं पर, अपने राज्य की शक्ति पर झूठा अहंकार है। यह ठीक है कि वह हस्तिनापुर का राजा है परन्तु सम्पूर्ण राज्य उसका नहीं है। आधे राज्य पर पाण्डवों का अधिकार है। श्रीकृष्ण, पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास जाते हैं। जिससे वह धर्मपूर्वक राज्य का विभाजन कर दे। परन्तु उनका दुर्योधन पर विश्वास नहीं है। वे कहते हैं–

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः।

(दुर्योधन मूर्ख है, वह दुष्ट है, उसे अहंकार है, अपनों के प्रति निर्दयी है।)

श्रीकृष्ण दुर्योधन के व्यवहार को देखकर क्रोधित होते हैं और उसे सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

शठ! बान्धवनिःस्नेह! काक! केकर! पिङ्गल!

यह दुर्योधन तो मूर्ख, अहंकारी, कौवा व बंदर है। जो अहंकार में इतना डूबा हुआ है कि समुचित व्यवहार भी नहीं करता है।

अतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत रूपक में जहां श्रीकृष्ण का चरित्र अत्यन्त उदार, गंभीर, शालीनतापूर्ण व उदात्त है, वहाँ दुर्योधन का चरित्र इसके विपरीत दुष्टस्वभावी, अनुदार, मूर्खतापूर्ण व अहंकार से व्याप्त है।

□□

व्याख्या भाग

◆ *नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः*

शब्दार्थ— **नान्दी अन्ते** = नान्दी (प्रार्थना) के होने पर। **ततः** = तत्पश्चात्। **प्रविशति सूत्रधारः** = सूत्रधार प्रवेश करता है।

सरलार्थ— (नाटक के प्रारंभ में) नान्दी (प्रार्थना) के होने पर सूत्रधार प्रवेश करता है। सूत्रधार कहता है—

◆ *पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः।*
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे।। 1।।

अन्वय— सर्वलोक-उत्सवः उपेन्द्रस्य स पादः वः पायात्। येन तनु-ताम्रनखेन नमुचिः खे व्याविद्धः।

शब्दार्थ— **सर्वलोक-उत्सवः** = सम्पूर्ण संसार को आनंद देने वाला। **उपेन्द्रस्य** = विष्णु भगवान् का। **स पादः** = वह चरण। **वः** = आप सभी की। **पायात्** = रक्षा करे। **येन** = जिस। **तनु-ताम्र-नखेन** = छोटे और लाल नाखून वाले (चरण) के द्वारा। **नमुचिः** = नमुचि को। **खे** = आकाश में। **व्याविद्धः** = फेंक दिया था।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
नाटक के प्रारंभ में विष्णु भगवान् को स्मरण करते हुए सूत्रधार कहता है—

सरलार्थ— सम्पूर्ण संसार को आनन्द देने वाला विष्णु भगवान् का वह चरण आप सभी की रक्षा करे, जिस छोटे व लाल नाखून वाले चरण के द्वारा नमुचि को आकाश में फेंक दिया था।

भावार्थ— यहाँ पर भगवान् विष्णु के चरण के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी है जो इतना शक्तिशाली था कि जिसने नमुचि नामक राक्षस को आकाश में फेंक दिया था। वह चरण सम्पूर्ण संसार को आनन्द प्रदान करने वाला है।

विशेष— (1) भास के नाटक नान्दी (प्रारम्भिक प्रार्थना) के बाद प्रारम्भ होते हैं।
(2) सूत्रधार नाटक का निर्देशक होता है।
(3) नमुचि एक पौराणिक राक्षस था।
(4) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद प्रयुक्त है।

◆ *एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते।*
अङ्ग! पश्यामि! (नेपथ्ये)
भो भोः प्रतिहाराधिकृताः! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति।
सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

शब्दार्थ— **एवम् आर्यमिश्रान्** = अब मैं आप महानुभावों को। **विज्ञापयामि** = सूचना दे रहा हूँ। **अये किं नु खलु मयि विज्ञापन-व्यग्रे** = अरे, मैं सूचना देने ही जा रहा था। **शब्द इव श्रूयते** = कि यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है। **अङ्ग! पश्यामि** = अच्छा, देखता हूँ। **नेपथ्ये** = पर्दे के पीछे से। **भो भोः प्रतिहार-अधिकृताः** = हे द्वारपालों!। **महाराजो दुर्योधन** = महाराज दुर्योधन। **समाज्ञापयति** = आज्ञा दे रहे हैं। **सूत्रधारः** = सूत्रधार। **भवतु, विज्ञातम्** = ठीक है, मैं समझ गया हूँ।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश नाटककार **'भास'** द्वारा लिखित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
सूत्रधार मञ्च पर आकर दर्शकों के सामने नाटक के प्रारंभ में कहता है—

व्याख्यार्थ– अब मैं आप महानुभावों (दर्शकों) को सूचना दे रहा हूँ। अरे, मैं सूचना देने ही जा रहा था कि यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है। अच्छा, मैं देखता हूँ।

(पर्दे के पीछे से)

हे द्वारपालों! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं।

सूत्रधार–ठीक है, मैं समझ गया हूँ।

◆ ***उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह।***
मन्त्रशालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया।। 2।।

अन्वय– धार्तराष्ट्राणां पाण्डवैः सह विरोधे उत्पन्ने दुर्योधनाज्ञया भृत्यः मन्त्रशालाम् रचयति।

शब्दार्थ– **धार्तराष्ट्राणां** = धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों का। **पाण्डवैः सह** = पाण्डवों के साथ। **विरोध उत्पन्ने** = वैर पैदा हो जाने पर। **दुर्योधन-आज्ञया** = दुर्योधन की आज्ञा से। **भृत्यः** = सेवक। **मन्त्रशालां** = सभाभवन को। **रचयति** = तैयार कर रहा है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार नाटक की भूमिका प्रस्तुत करते हुए कहता है–

व्याख्यार्थ– धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों का पाण्डवों के साथ वैर पैदा हो जाने पर, दुर्योधन की आज्ञा से सेवक सभाभवन को तैयार कर रहा है।

भावार्थ– सूत्रधार की इस सूचना से ज्ञात होता है कि हस्तिनापुर पर कौरवों का अधिकार है। जिसका राजा दुर्योधन है। वह अपने पक्ष के सभी राजाओं से पाण्डवों की शत्रुता के विषय पर विचार करने के लिए सेवक को सभाभवन सुसज्जित करने का आदेश देता है तथा सेवक सभाभवन को तैयार कर रहा है।

विशेष– (1) प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि पाण्डवों का अज्ञातवास समाप्त हो चुका है वे अपना आधा राज्य चाहते हैं।
(2) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *(निष्कान्तः)*

। स्थापना।

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः।)

काञ्चुकीयः–भो भोः प्रतिहाराधिकृताः! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति। अद्य सर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि। तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति। (परिक्रम्यावलोक्य) अये, अयं महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते। य एषः,

शब्दार्थ– **निष्कान्तः** = सूत्रधार चला जाता है। **स्थापना** = प्रस्तावना। **ततः प्रविशति काञ्चुकीयः** = तब कञ्चुकी प्रवेश करता है। **भो भोः प्रतिहाराधिकृताः** = हे द्वारपालों!। **महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति** = महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं। **अद्य** = आज। **सर्व-पार्थिवैः सह** = सभी राजाओं के साथ। **मन्त्रयितुम् इच्छामि** = मैं विचार करना चाहता हूँ। **तद्-आहूयतां** = इसीलिए बुला लाओ। **सर्वे राजानः** = सभी राजाओं को। **परिक्रम्य** = घूमकर। **अवलोक्य** = देखकर। **अये, अयं महाराजो दुर्योधन** = अरे, ये महाराज दुर्योधन। **इत एव अभिवर्तते** = इधर की तरफ ही आ रहे हैं। **य एषः** = जो इस प्रकार हैं।

व्याख्यार्थ–

(सूत्रधार मञ्च से चला जाता है।)

(प्रस्तावना)

(इसके पश्चात् कञ्चुकी मञ्च पर आता है।)

काञ्चुकीय–हे द्वारपालों! महाराज दुर्योधन आज्ञा दे रहे हैं कि आज मैं सभी राजाओं के साथ मैं विचार करना चाहता हूँ। इसीलिए सभी राजाओं को बुला लाओ।

(मञ्च पर घूमकर और सामने देखकर)

अरे! ये महाराज दुर्योधन इधर की तरफ ही आ रहे हैं जो इस प्रकार हैं–

◆ *श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः*
सच्छत्रचामरवरो रचिताङ्गरागः।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः।। 3।। (म.द.वि. 2000, 2011)

अन्वय– श्यामः, युवा, सितदुकूलकृतोत्तरीयः, सच्छत्रचामरवरः, रचिताङ्गरागः, श्रीमान्, विभूषणमणिद्युतिरञ्जिताङ्गः नक्षत्रमध्ये पर्वगतः शशाङ्कः इव।

शब्दार्थ– **श्यामः** = श्यामल वर्ण वाले। **युवा** = युवक। **सित-दुकूल-कृत-उत्तरीयः** = सफेद रेशमी वस्त्र धारण किए। **सत्-छत्र-चामरवरः** = सुन्दर छाते तथा उत्तम चामर वाले। **रचित-अङ्गरागः** = अंगराग से सुशोभित। **श्रीमान्** = लक्ष्मी वाले। **विभूषण-मणि-द्युति-रञ्जित-अङ्गः** = आभूषणों की मणियों की कान्ति से प्रकाशमान शरीर वाले। **नक्षत्र-मध्ये** = तारागणों के बीच में। **पर्वगतः शशाङ्कः इव** = पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुर्योधन ने राजाओं की सभा बुलाई है उसमें जाते हुए राजा दुर्योधन का वर्णन करता हुआ कञ्चुकी कहता है–

सरलार्थ– श्यामल वर्ण वाले, युवा अवस्था वाले, सफेद रेशमी वस्त्र धारण किए हुए, सुन्दर छाते तथा उत्तम चामर वाले, अंगराग से सुशोभित, लक्ष्मी वाले, आभूषणों की मणियों की कान्ति से प्रकाशमान शरीर वाले (राजा दुर्योधन) तारागणों के बीच में पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान (शोभायमान) है।

भावार्थ– इस श्लोक में महाराज दुर्योधन के व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डाला गया है कि वे श्याम वर्ण के होकर युवावस्था में राजकीय वस्त्रों व अलंकारों, छत्र व चामर आदि से इतने सुशोभित हैं मानो तारागणों के बीच में चन्द्रमा जगमगा रहा हो।

विशेष– (1) इस श्लोक में दुर्योधन के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।
(2) अंतिम पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) यहां वसन्ततिलका नामक छंद है।

❑

◆ *(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टो दुर्योधनः)*

सरलार्थ– इसके पश्चात् उसी रूप में दुर्योधन प्रवेश करता है।

❑

◆ *उद्धूतरोषमिव मे हृदयं सहर्षं*
प्राप्तं रणोत्सवमिमं सहसा विचिन्त्य।
इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना-
मुत्कृत्तदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुम्।। 4।।

अन्वय– सहसा प्राप्तम् इमं रणोत्सवं विचिन्त्य उद्धूतरोषम् इव मे हृदयं सहर्षं पाण्डवबले वरवारणानां मुखानि उत्कृत्तदन्तमुसलानि कर्तुम् इच्छामि।

शब्दार्थ– **सहसा प्राप्तम्** = अचानक आए हुए। **इमम् रण-उत्सवम्** = इस युद्ध रूपी उत्सव का। **विचिन्त्य** = विचार करके। **उद्धूत-रोषम् इव** = मानो क्रोध से भरकर भी। **मे हृदयं** = मेरा हृदय। **सहर्षम्** = आनन्द से भर गया है। **पाण्डव-बले** = पाण्डवों की सेना में। **वर-वारणानाम्** = श्रेष्ठ हाथियों के। **मुखानि** = मुखों को। **उत्कृत्त-दन्त-मुसलानि** = उखाड़े गये दाँत रूपी मूसलों वाला। **कर्तुम् इच्छामि** = मैं करना चाहता हूँ।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
राजाओं के सभा में जाते हुए दुर्योधन पाण्डवों से युद्ध करने का इच्छुक होकर सोचता है–

सरलार्थ– अचानक आए हुए इस युद्ध रूपी उत्सव का विचार करके, मानो क्रोध से भरकर भी मेरा हृदय आनन्द से भर गया है। पाण्डवों की सेना के श्रेष्ठ हाथियों के मुखों को, उखाड़े गये दाँत रूपी मूसलों वाला मैं करना चाहता हूँ।

दुर्योधन सोचता है कि पहले तो मुझे पाण्डवों पर क्रोध आता था, परन्तु आज उनके साथ युद्ध की बात जानकर मैं प्रसन्न हो गया हूँ। क्योंकि मैं उनकी सेना के बड़े-बड़े हाथियों के दाँत तोड़ सकूँगा अर्थात् पाण्डवों को पराजित कर सकूँगा।

(1) दुर्योधन को प्रसन्नता है कि वह पांडवों को युद्ध में जीतकर समस्त हस्तिनापुर के राज्य का अधिकारी हो जाएगा।
(2) 'रणोत्सवम्', 'दन्तमुसलानि' में रूपक अलंकार है।
(3) उद्धृतरोषमिव में उपमा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में वसंततिलका छंद है।

◆ ***काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम्।***
दुर्योधनः—सम्यक् कृतम्। प्रविश त्वमवरोधनम्।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः।

(निष्कान्तः)

जयतु महाराजः! = महाराज की जय हो। **महाराज-शासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम्** = महाराज के आदेश से सम्पूर्ण राजमण्डल बुला लिया गया है। **सम्यक् कृतम्** = तुमने ठीक किया। **प्रविश त्वम् अवरोधम्** = तुम अन्तःपुर में जाओ। **यद् आज्ञापयति महाराजः** = महाराज की जैसी आज्ञा हो। **निष्क्रान्तः** = चला जाता है।

काञ्चुकीय—महाराज की जय हो। महाराज के आदेश से सम्पूर्ण राजमण्डल बुला लिया गया है।
दुर्योधन—तुमने ठीक किया। तुम अन्तःपुर में जाओ।
काञ्चुकीय—महाराज की जैसी आज्ञा हो।

(चला जाता है।)

◆ ***दुर्योधनः—आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! उच्यताम्-अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हति। किं किमाहतुर्भवन्तौ—महान् खल्वयमर्थः। मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति। सदृशमेतत्। तदागम्यतां मन्त्रशालामेव प्रविशामः। आचार्य! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। पितामह! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। मातुल! अभिवादये। प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! प्रविशतां भवन्तौ। भो भोः सर्वक्षत्रियाः! स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तः। वयस्य! कर्ण! प्रविशामस्तावत्।***

आर्यौ वैकर्ण-वर्षदेवौ = आर्य वैकर्ण व वर्षदेव। **उच्यताम्** = आप दोनों बताइए। **अस्ति मम-एकादश-अक्षौहिणी-बल-समुदयः** = मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हैं। **अस्य कः सेनापतिः भवितुम् अर्हसि** = इसका सेनापति बनने योग्य कौन है? **किं किं आहतुः भवन्तौ** = क्या? आपने क्या कहा है?। **महान् खलु अयम् अर्थः** = यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। **मन्त्रयित्वा वक्तव्यम्** = विचार करके ही कहेंगे। **इति सदृशम् एतत्** = यह कथन उचित है। **तद् आगम्यताम्** = अतः आओ। **मन्त्रशालां एव प्रविशामः** = सभाभवन में प्रवेश करें। **पितामह! अभिवादये** = पितामह! मैं नमस्कार करता हूँ। **प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्** = आप सभा भवन में चलें। **मातुल! अभिवादये** = मामाश्री! मैं नमस्कार करता हूँ। **आर्यौ वैकर्ण-वर्षदेवौ** = आर्य वैकर्ण और वर्षदेव!। **प्रविशतां भवन्तौ** = आप दोनों भी चलें। **भो भोः सर्वक्षत्रियाः** = हे क्षत्रिय राजाओं। **स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तः** = आप भी स्वतन्त्रतापूर्वक चलें। **वयस्य कर्ण!** = मित्रकर्ण!। **प्रविशामः तावत्** = हम भी चलते हैं।

दुर्योधन—आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनों बताइए—'मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हैं। इसका सेनापति बनने योग्य कौन है?' क्या? आपने क्या कहा? 'यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। विचार करके ही कहेंगे।' आपका यह कथन उचित है। अतः आओ, सभाभवन में चलते हैं। आचार्य! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सभाभवन में प्रवेश करें। मामाश्री! मैं नमस्कार करता हूँ। आप सभाभवन में प्रवेश करें। आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनों भी चलें। हे क्षत्रिय राजाओं! आप भी स्वतंत्रतापूर्वक चलें। मित्रकर्ण! हम भी चलते हैं।

भावार्थ— दुर्योधन पाण्डवों से युद्ध करने का निश्चय कर चुका है। उसके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। एक अक्षौहिणी सेना में 21870 हाथी, 21870 रथ, 63610 घोड़े तथा 109350 पैदल वीर होते थे। वह इस विशाल सेना का किसी को सेनापति बनाना चाहता है। इसी कारण वह अत्यन्त उत्सुकता व तत्परता से सभी कुछ कह रहा है।

◆ ***(प्रविश्य) आचार्य! एतत् कूर्मासनम्, आस्यताम्। पितामह! एतत् सिंहासनम् आस्यताम्। मातुल! एतच्चर्मासनम्, आस्यताम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! आसातां भवन्तौ। भो भोः सर्वक्षत्रियाः! स्वैरमासतां भवन्तः। किमिति किमिति महाराजो नास्त इति। अहो सेवाधर्मः। नन्वयमहमासे। वयस्य कर्ण! त्वमप्यास्व। (उपविश्य) आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ! उच्यताम्–अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबलसमुदयः। अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति। किमाहतुर्भवन्तौ–अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यतीति। भवतु, मातुलेनाभिधीयताम्। किमाह मातुलः–अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्यः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति। सम्यगाह मातुलः। भवतु भवतु, पितामह एव भवतु। वयमप्येतदभिलषामः।***

शब्दार्थ— **प्रविश्य** = प्रवेश करके। **आचार्य! एतत् कूर्मासनम्** = यह कूर्मासन है। **आस्यताम्** = इस पर बैठिए। **पितामह! एतत् सिंहासनम्** = पितामह! यह सिंहासनम् है। **आस्यताम्** = बैठिए। **मातुल! एतत् चर्मासनम्** = मामा श्री! चर्म आसन है। **आर्यौ वैकर्ण-वर्षदेवौ** = आर्य वैकर्ण व वर्षदेव!। **आसातां भवन्तौ** = आप दोनों भी बैठिए। **भो भोः सर्वक्षत्रियाः** = हे सभी क्षत्रियों!। **स्वैरम् आसतां भवन्तः** = आप सब भी स्वतन्त्रता से बैठिए। **किम् इति, किम् इति, महाराजो नास्ते इति** = यह क्या, क्या महाराज दुर्योधन नहीं बैठे हैं। **अहो सवोधर्मः** = आश्चर्य है आपका सेवाधर्म (महान् है)। **ननु अयं अहं आसे** = अच्छा तो मैं बैठ जाता हूँ। **वयस्य कर्णः** = मित्र कर्ण। **त्वम् अपि आस्व** = आप भी बैठ जाओ। **उपविश्य** = बैठकर। **आर्यौ वैकर्ण-वर्षदेवौ** = आर्य वैकर्ण व वर्षदेव!। **उच्यताम्** = आप दोनों बताइए। **अस्ति मम एकादश-अक्षौहिणी-बल-समुदयः** = मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हैं। **अस्य कः सेनापतिः भवितुम् अर्हति** = इसका सेनापति बनने योग्य कौन है। **किम् आहतुः भवन्तौ** = आप दोनों ने क्या कहा। **अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यति इति** = यह बात आदरणीय गान्धारराज (शकुनि) बताएंगे। **भवतु** = ठीक है। **मातुलेन अभिधीयताम्** = मामाश्री ही बताएं। **किम् आह मातुलः** = मामाश्री ने क्या कहा?। **अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते** = मान्य पितामह के रहने पर। **कः अन्यः सेनापति भवितुम् अर्हति** = और कौन सेनापति बनने योग्य है। **सम्यक् आह मातुलः** = मामा ने ठीक कहा है। **भवतु, भवतु** = ठीक है, ठीक है। **पितामह एव भवतु** = पितामह ही (सेनापति) ठीक है। **वयम् अपि एतद् अभिलषामः** = हम भी यही चाहते हैं।

सरलार्थ—

(सभाभवन में प्रवेश करके)

(दुर्योधन कहता है—) आचार्य! यह कूर्मासन है। इस पर बैठिए। पितामह! यह सिहांसन है, बैठिए। मामाश्री, यह चर्मासान है, इस पर बैठिए। आर्य वैकर्ण और वर्षदेव! आप दोनों भी बैठिए। हे सभी क्षत्रियों! आप सब भी स्वतन्त्रता से बैठिए। यह क्या? क्या महाराज दुर्योधन नहीं बैठे हैं। आश्चर्य है, आप सभी का सेवाधर्म (महान्) है। अच्छा तो मैं बैठ जाता हूँ। मित्र कर्ण! आप भी बैठ जाइए। (बैठकर) आर्य वैकर्ण व वर्षदेव! आप दोनों बताइए—मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित है। इसका सेनापति कौन बनने योग्य है? आप दोनों ने क्या कहा? यह बात आदरणीय गान्धार राज (मामाश्री) बताएंगे। ठीक है। मामाश्री ही बताएं। मामाश्री ने क्या कहा? मान्य पितामह के रहने पर और कौन सेनापति बनने योग्य है। मामा ने ठीक कहा है। ठीक है, ठीक है। पितामह ही (सेनापति) ठीक हैं। हम भी यही चाहते हैं।

◆ ***सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादै-***
श्चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः।
गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैरभिषेकतोयैः
सार्धं पतन्तु हृदयानि नराधिपानाम्।। 5।।

अन्वय— चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः सेनानिनादपटहस्वनशङ्खनादैः गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैः अभिषेकतोयैः सार्धं नराधिपानां हृदयानि पतन्तु।

शब्दार्थ– **चण्ड-अनिल-आहत-महा-उदधि-नाद-कल्पैः** = तेज वायु से उठी हुई विशाल समुद्र की गर्जना के समान। **सेना-निनाद-पटह-स्वन-शंख-नादैः** = सेना के शोर, नगाड़ों की आवाज व शंखों की ध्वनियों से। **गांगेय-मूर्ध्नि पतितैः** = पितामह के शीश पर गिरते हुए। **अभिषेक-तोयैः** = अभिषेक के जल के। **सार्धम्** = साथ-साथ। **नर-अधिपानां हृदयानि** = शत्रु राजाओं के हृदय भी। **पतन्तु** = गिर जाएं, निराश हो जाएं।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब कौरवों की ओर से भीष्म पितामह को सेनापति नियुक्त कर दिया जाता है तो दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– तेज वायु से उठी हुई विशाल समुद्र की गर्जना के समान तथा सेना के शोर, नगाड़ों की आवाज व शंखों की ध्वनियों से पितामह के शीश पर गिरते हुए अभिषेक के जल के साथ-साथ शत्रु राजाओं के हृदय भी गिर जाएं अर्थात् निराश हो जावें।

भावार्थ– जैसे ही पितामह का सेनापति के रूप में अभिषेक होगा वैसे ही शत्रुगण भी निराश हो जाएंगे। वे समझ जाएंगे कि अब कौरव-सेना में और अधिक उत्साह भर जाएगा। नगाड़े व शंख और तेजी से बजेंगे। अर्थात् पितामह के सेनापतित्व में शत्रु अवश्य हार जाएंगे।

विशेष– (1) दुर्योधन को प्रसन्नता है कि भीष्म पितामह उसकी सेना के सेनापति चुने गये हैं।
(2) 'सेना...तोयैः' में उपमा अलंकार है।
(3) सम्पूर्ण श्लोक में वसन्ततिलका छंद है।

❑

◆ ***(प्रविश्य) काञ्चुकीयः–जयतु महाराजः। एष खलु पाण्डवस्कन्धावाराद् दौत्येनागतः पुरुषोत्तमो नारायणः। दुर्योधनः–मा तावद् भो बादरायण! किं, किं कंसभृत्यो दामोदरस्तव पुरुषोत्तमः। स गोपालकस्तव पुरुषोत्तमः। बार्हद्रथापहतविषयकीर्तिभोगस्तव पुरुषोत्तमः। अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचारः। सगर्वं खल्वस्य वचनम्। आः अपध्वंस।***

शब्दार्थ– **जयतु महाराजः** = महाराज की जय हो। **एष खलु** = यह। **पाण्डव-स्कन्धावारात्** = पाण्डवों के सैन्य-शिविर से। **दौत्येन आगतः** = दूत बनकर आए हुए हैं। **पुरुषोत्तमः नारायणः** = पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण। **मा तावद् भो बादरायण!** = हे बादरायण! ऐसा मत कहो। **किं, किं कंसभृत्यो दामोदरः तव पुरुषोत्तमः** = क्या? (कहा) क्या कंस का सेवक दामोदर तुम्हारे लिए श्रेष्ठ पुरुष (पुरुषोत्तम) है। **सः गोपालकः तव पुरुषोत्तमः** = वह ग्वाला तुम्हारे लिए श्रेष्ठ पुरुष (पुरुषोत्तम) है। **बार्हद्रथ-अपहत-विषय-कीर्ति-भोगः तव पुरुषोत्तमः** = जरासन्ध ने जिसके देश (विषय), कीर्ति और राज्य को छीन लिया था वह तुम्हारे लिए पुरुषोत्तम है। **अहो! पार्थिव-आसन्नम् आश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचारः** = आश्चर्य है कि राजाओं के पास में रहने के कारण सेवक का यही शिष्टाचार है। **सगर्वं खलु अस्य वचनम्** = निसंदेह, इसके वचन घमण्ड से भरे हुए हैं। **आ! अपध्वंस** = अरे, दूर हट।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब कञ्चुकी दूत के रूप में श्रीकृष्ण के आने की सूचना देता है तब कहा गया है–

सरलार्थ– (प्रवेश करके)

काञ्चुकीय–'महाराज की जय हो। पाण्डवों के सैन्य-शिविर से दूत बनकर यह पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण आए हुए हैं।'
दुर्योधन–'हे बादरायण! ऐसा मत कहो। क्या, क्या कहा? क्या कंस का सेवक दामोदर तुम्हारे लिए श्रेष्ठ पुरुष (पुरुषोत्तम) है? वह ग्वाला तुम्हारे लिए पुरुषोत्तम है। जरासंध (बृहद्रथ का पुत्र) ने जिसके देश, कीर्ति व राज्य को छीन लिया था वह तुम्हारे लिए पुरुषोत्तम है। आश्चर्य है कि राजाओं के पास में रहने के कारण सेवक का यही शिष्टाचार है? निःसंदेह, इसके वचन घमण्ड से भरे हुए हैं। अरे (नीच) दूर हट।'

भावार्थ– कञ्चुकी के श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहने पर दुर्योधन को क्रोध आता है वह श्रीकृष्ण को दामोदर, ग्वाला, जरासंध से पराजित, कंस का सेवक आदि अनेक अनुचित विशेषणों से अपमानित करता है तथा सेवक कञ्चुकी पर भी क्रोध व्यक्त करता है।

❑

◆ *काञ्चुकीयः–प्रसीदतु महाराजः। संभ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः। (पादयोः पतति।)*
दुर्योधनः–संभ्रम इति। आः मनुष्याणामस्त्येव संभ्रमः। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।
काञ्चुकीयः–अनुगृहीतोऽस्मि।
दुर्योधनः–इदानीं प्रसन्नोऽस्मि। क एष दूतः प्राप्तः।
काञ्चुकीयः–दूतः प्राप्तः केशवः।

शब्दार्थ– **प्रसीदतु महाराजः** = महाराज क्षमा करें। **संभ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः** = घबराहट होने से शिष्टाचार भूल गया था। **पादयोः पतति** = चरणों में गिरता है। **संभ्रम इति** = घबराहट। **आः मनुष्याणाम् अस्ति एव संभ्रम** = अरे, मनुष्यों में (सामान्य रूप से) घबराहट हो जाती है। **उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ** = उठो, उठो। **अनुगृहीतः अस्मि** = अपने बड़ी कृपा की है। **इदानीं प्रसन्नः अस्मि** = अब मैं प्रसन्न हूँ। **क एष दूतः प्राप्तः** = यह दूत कौन आया है?। **दूतः प्राप्तः केशवः** = श्रीकृष्ण दूत बनकर आया है।

सरलार्थ– **काञ्चुकीय**–महाराज क्षमा करें। घबराहट के कारण शिष्टाचार भूल गया था। (दुर्योधन के चरणों में गिरता है।)
दुर्योधन–अच्छा, घबराहट। अरे मनुष्यों में (सामान्य रूप से) घबराहट होती है। उठो, उठो।
काञ्चुकीय–आपने बड़ी कृपा की है।
दुर्योधन–अब मैं प्रसन्न हूँ। (अच्छा, बताओ–) यह दूत कौन आया है?
काञ्चुकीय–श्रीकृष्ण दूत बनकर आया है।

❒

◆ *दुर्योधनः–केशव इति। एवमेष्टव्यम्। अयमेव समुदाचारः। भो भो राजानः! दौत्येनागतस्य केशवस्य किं युक्तम्। किमाहुर्भवन्तः। अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्यः केशव इति। न मे रोचते। ग्रहणमस्यात्र हितं पश्यामि।*

शब्दार्थ– **केशव इति** = श्रीकृष्ण यह कहो। **एवम् एष्टव्यम्** = इसी प्रकार कहना चाहिए। **अयम् एव समुदाचारः** = यही शिष्टाचार है। **भो भो राजानः** = हे राजाओं!। **दौत्येन आगतस्य केशवस्य किं युक्तम्** = दूत बनकर आए हुए श्रीकृष्ण के लिए किस प्रकार का व्यवहार उचित है?। **किम् आहुः भवन्तः** = आपने क्या कहा?। **अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्यः केशव इति** = सामग्री समर्पित करके श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। **न मे रोचते** = यह मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता। **ग्रहणम् अस्य अत्र हितं पश्यामि** = यहाँ इसके पकड़ लेने में ही मैं हित समझता हूँ।

सरलार्थ– **दुर्योधन**–'श्रीकृष्ण' यह कहो। इसी प्रकार कहना चाहिए। यही शिष्टाचार है। हे राजाओं! दूत बनकर आए हुए श्रीकृष्ण के लिए किस प्रकार का व्यवहार उचित है? आपने क्या कहा? सामग्री समर्पित करके श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। यह मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता। यहाँ उसे पकड़ लेने में ही मैं हित समझता हूँ।

❒

◆ *ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे*
हतनयना इव पाण्डवाः भवेयुः।
गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना।। 6।। (म.द.वि. 2009, 2010)

अन्वय– वासुभद्रे ग्रहणम् उपगते पाण्डवाः तु हतनयना इव भवेयुः, पाण्डवेषु गतिमतिरहितेषु अखिला अपि क्षितिः मम असपत्ना भवेत्।

शब्दार्थ– **वासुभद्रे ग्रहणम् उपगते** = श्रीकृष्ण के बन्दी बना लिए जाने पर। **पाण्डवाः तु हतनयना इव भवेयुः** = पाण्डव तो मानो नेत्रों के बिना अंधे हो जाएंगे। **पाण्डवेषु** = पाण्डवों के। **गति-मति-रहितेषु** = आश्रय और बुद्धि से रहित होने पर। **अखिला अपि क्षितिः** = समस्त भूमि ही। **मम असपत्ना भवेत्** = मेरे लिए शत्रुरहित हो जाएगी।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण जब पाण्डवों के दूत बनकर आते हैं तो दुर्योधन उन्हें बन्दी बनाना चाहते हैं, अतः वे राजसभा में कहते हैं–

सरलार्थ– श्रीकृष्ण बन्दी बना लिए जाने पर पाण्डवगण तो मानो नेत्रों के बिना अन्धे हो जाएंगे। पाण्डवों के आश्रय और बुद्धि के रहित हो जाने पर समस्त भूमि ही मेरे लिए शत्रुरहित हो जाएगी।

भावार्थ– दुर्योधन का विचार है कि जैसे ही हम श्रीकृष्ण को बन्दी बना लेंगे, वैसे ही पाण्डव श्रीकृष्ण के बिना दिशा रहित हो जाएंगे। वे नहीं समझ सकेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? ऐसी दशा में वे बुद्धिरहित होकर कुछ भी करने में असमर्थ होंगे और मेरा सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार हो जाएगा।

विशेष– (1) दुयोधन श्रीकृष्ण को बंदी बनाने में ही अपना हित देखता है।
(2) प्रथम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) इस श्लोक में पुष्पिताग्रा नामक छंद है।

❒

◆ ***अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण दण्डयः। तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः। (आत्मगतम्) को नु खलु ममप्रत्युत्थानस्योपायः। हन्त दृष्ट उपायः। बादरायण! आनीयतां स चित्रपटो ननु, यत्र द्रौपदीकेशाम्बरावकर्षणमालिखितम्। (अपवार्य) तस्मिन् दृष्टिविन्यासं कुर्वन् नोत्थास्यामि केशवस्य।***

शब्दार्थ– **अपि च यो अत्र** = और भी, जो यहाँ पर। **केशवस्य प्रत्युत्थास्यति** = श्रीकृष्ण के आने पर खड़ा होना। **स मया** = उसे मैं। **द्वादश-सुवर्ण भारेण दण्ड्यः** = बारह सोने की मुद्राओं का दण्ड दूँगा। **तद् अप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः** = इसलिए आप सावधान रहें। **कः नु खलु मम प्रत्युत्थानस्य उपायः** = ऐसा कौन सा उपाय है जो मुझे भी खड़े होना न पड़े। **आत्मगतम्** = अपने मन ही मन में। **हन्त दृष्ट उपायः** = ठीक है, मैंने उपाय सोच लिया है। **प्रकाशम्** = सभी को सुनाकर। **बादरायण, आनीयतां स चित्रपटः** = बादरायण! वह चित्रपट लेकर आओ। **ननु यत्र द्रौपदी-केश-अम्बर-अवकर्षणम् आलिखितम्** = जिसमें द्रौपदी के बालों तथा वस्त्रों को खींचे जाने का चित्र बनाया गया है। **अपवार्य** = दूसरी ओर मुख फेर कर। **तस्मिन् दृष्टि-विन्यासं कुर्वन्** = उस चित्र में देखता हुआ मैं। **न उत्थास्यामि केशवस्य** = श्रीकृष्ण के आने पर नहीं खड़ा होऊँगा।

सरलार्थ– (दुर्योधन राजसभा में राजाओं से कहता है–) और भी, जो यहाँ पर श्रीकृष्ण के आने पर खड़ा होगा उसे मैं बारह सोने की मुद्राओं का दण्ड दूँगा। इसलिए आप सावधान रहें। (अपने मन ही मन में) ऐसा कौन-सा उपाय है जो मुझे भी खड़ा न होना पड़े? ठीक है, मैंने सोच लिया है। (सभी को सुनाकर) बादरायण! वह चित्रपट लेकर आओ जिसमें द्रौपदी के बालों व वस्त्रों को खींचे जाने का चित्र बनाया गया है। (दूसरी ओर मुख फेर कर) उस चित्र में ध्यान देता हुआ मैं श्रीकृष्ण के आने पर खड़ा नहीं होऊँगा।

❒

◆ ***काञ्चुकीयः–यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्कम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। अयं स चित्रपटः।***
दुर्योधनः–ममाग्रतः प्रसारय।
काञ्चुकीयः–यदाज्ञापयति महाराजः। (प्रसारयति।)
दुर्योधनः–अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। एष दुःशासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्। एषा खलु द्रौपदी

शब्दार्थ– **यद् आज्ञापयति महाराजः** = जैसी महाराज की आज्ञा हो। **निष्कम्य प्रविश्य** = बाहर जाकर और प्रवेश करके। **जयतु महाराजः** = महाराज की जय हो। **अयं स चित्रपटः** = यह वही चित्रपट है। **मम अग्रतः प्रसारय** = मेरे सामने फैलाओ। **प्रसारयति** = फैलाता है। **अहो, दर्शनीयः अयं चित्रपटः** = यह चित्रपट तो देखने योग्य है। **एष दुःशासनः द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्** = यह दुःशासन द्रौपदी के बालों को हाथ से पकड़े हुए है। **एषा खलु द्रौपदी** = यह द्रौपदी है।

सरलार्थ– **काञ्चुकीय**–जैसी महाराज की आज्ञा हो। (बाहर जाकर और फिर प्रवेश करके)। महाराज की जय हो। यह वही चित्रपट है।
दुर्योधन–मेरे सामने इसे फैलाओ।

काञ्चुकीय–जैसी महाराज की आज्ञा हो। (चित्रपट फैला देता है।)

दुर्योधन–अहो, यह चित्रपट तो देखने योग्य है। यह दुःशासन द्रौपदी के बालों को हाथ से पकड़े हुए है। यह द्रौपदी है।

◆ *दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।*
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते।। 7।। (म.द.वि. 2005)

अन्वय– दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखा इव शोभते।

शब्दार्थ– **दुःशासन-परामृष्टा** = दुःशासन के द्वारा पकड़ी हुई। **सम्भ्रम-उत्फुल्ल-लोचना** = घबराने के कारण फैले हुए नेत्र वाली। **राहु-वक्त्र-अन्तरगता** = राहु के मुख में स्थित। **चन्द्रलेखा इव** = चन्द्रमा की कला के समान। **शोभते** = प्रतीत हो रही है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब दुःशासन द्रौपदी के बाल पकड़कर सभाभवन में लेकर आया था उस दृश्य को चित्रपट में देखते हुए दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– दुःशासन के द्वारा पकड़ी हुई, घबराने के कारण फैले हुए नेत्रों वाली यह द्रौपदी, राहु के मुख में स्थित चन्द्रमा की कला के समान प्रतीत हो रही है।

भावार्थ– जब दुःशासन द्रौपदी के बालों को पकड़ कर सभाभवन में लाया था तब वह घबराई हुई थी उसके आँखें मानो फट रही थी। खुले बालों में उसका उदास मुख ऐसा प्रतीत होता था जैसे राहु के मुख में चन्द्रमा की कला दिखाई देती है।

विशेष– (1) प्रस्तुत श्लोक में उस चित्र का वर्णन है जिसमें द्रौपदी के बालों को दुःशासन खींच रहा है।
(2) अंतिम पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) सम्पूर्ण श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।
(4) राहु का चन्द्रमा को ग्रसना - पौराणिक तथ्य है।

◆ *एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति। एष युधिष्ठिरः।*

शब्दार्थ– **एष दुरात्मा भीमः** = यह दुष्टात्मा भीम है। **सर्वराज-समक्षं** = सभी राजाओं के सामने। **अवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा** = अपमान की जाती हुई द्रौपदी को देखकर। **प्रवृद्ध-अमर्षः** = बहुत क्रोध करके। **सभा-स्तम्भं तुलयति** = सभा के खम्भे को उखाड़ रहा है। **एष युधिष्ठिरः** = यह युधिष्ठिर है।

सरलार्थ– (चित्रपट को देखकर दुर्योधन कहता है–) यह दुष्टात्मा भीम है जो सभी राजाओं के सामने अपमान की जाती हुई द्रौपदी को देखकर बहुत क्रोध करके खम्भे को उखाड़ रहा है। यह युधिष्ठिर है।

◆ *सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः।*
करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम्।। 8।।

अन्वय– सत्य-धर्म-घृणा-युक्तः, द्यूतविभ्रष्टचेतनः अपाङ्गविक्षेपैः वृकोदरम् शान्तामर्षम् करोति।

शब्दार्थ– **सत्य-धर्म-घृणा-युक्तः** = सत्य, धर्म और दया से भरकर। **द्यूत-विभ्रष्ट-चेतसः** = जुए के कारण विवेक रहित बुद्धिवाला। **अपाङ्ग-विक्षेपैः** = नेत्रों के संकेत से। **वृकोदरम्** = भीम के। **शान्त-अमर्षम्** = क्रोध को शान्त। **करोति** = कर रहा है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुर्योधन चित्रपट में क्रोधित भीम को रोकते हुए युधिष्ठिर के विषय में कहता है–

सरलार्थ– सत्य, धर्म और दया से भरकर, जुए के कारण विवेक रहित बुद्धिवाला (युधिष्ठिर) नेत्रों के संकेत से भीम के क्रोध को शान्त कर रहा है।

भावार्थ– जिस समय द्रौपदी का दुःशासन अपमान करता है तब भीम को बहुत क्रोध आता है, परंतु युधिष्ठिर जानता है कि हम द्रौपदी को जुए में हार गये हैं अतः वह सत्य व धर्म के अनुसार भीम को रोक रहा है। यही दृश्य चित्रपट में अङ्कित है।

विशेष– (1) यहाँ पर चित्र में युधिष्ठिर भीम को रोक रहा है।
(2) युधिष्ठिर के चरित्र में नियम पालन करने का प्रदर्शन है।
(3) यहाँ अनुष्टुप् छंद है।

❐

◆ *एष इदानीमर्जुनः,*
रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ–
तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत्।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम्।। 9।। (म.द.वि. 2006)

अन्वय– रोषाकुलाक्षः, स्फुरिताधरोष्ठ तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा, सर्वराज्ञः उत्सादयिष्यन् इव गाण्डिवज्याम् शनैः समाकर्षति।

शब्दार्थ– **एष-इदानीम् अर्जुनः** = यह अब अर्जुन है। **रोष-आकुल-अक्षः** = क्रोध से भरे हुए नेत्र वाला। **स्फुरित-अधरोष्ठः** = फड़कते हुए ओष्ठों वाला। **तत् रिपुमण्डलं तृणाय मत्वा** = शत्रु गणों को तिनके समान (तुच्छ) समझकर। **सर्वराज्ञः उत्सादयिष्यन् इव** = मानो सभी राजाओं का विनाश कर देगा। **गाण्डिवज्यां शनैः समाकर्षति** = गाडीव धनुष की डोरी को खींच रहा है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुःशासन द्वारा खींचे गये द्रौपदी कें बालों से क्रोधित अर्जुन के दृश्य को चित्रपट में देखता हुआ दुर्योधन कहता है– और अब यह अर्जुन है।

सरलार्थ– क्रोध से भरे हुए नेत्र वाला, फड़कते हुए ओष्ठों वाला, शत्रुगणों को तिनके के समान (तुच्छ) समझकर मानो सभी राजाओं का विनाश कर देगा। (इस कारण) अर्जुन धीरे-धीरे गाण्डीव नामक धनुष की डोरी को खींच रहा है।

भावार्थ– द्रौपदी के अपमान को न सहन करके अर्जुन को बहुत क्रोध आ रहा है जिससे वह धीरे से अपने गाण्डीव धनुष की डोरी को खींच रहा है मानो इसी धनुष से वह सभी शत्रु राजाओं को मार डालेगा।

विशेष– (1) इस चित्र में द्रौपदी के केशाकर्षण से क्रोधित अर्जुन का चित्रण है।
(2) द्वितीय व तृतीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) इस श्लोक में उपजाति छंद है।

❐

◆ *एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति। एतौ नकुलसहदेवौ,*

शब्दार्थ– **एष युधिष्ठिरः** = यह युधिष्ठिर है। **अर्जुनं निवारयति** = अर्जुन को रोक रहा है। **एतौ नकुलसहदेवौ** = ये नकुल और सहदेव हैं।

सरलार्थ– (चित्रपट में देखकर दुर्योधन कहता है–) यह युधिष्ठिर है जो अर्जुन को रोक रहा है। ये दोनों नकुल और सहदेव हैं।

❐

◆ *कृतपरिकरबन्धौ वर्मनिस्त्रिंशहस्तौ*
परुषितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ।
विगतमरणशङ्कौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ।। 10।।

अन्वय– कृत-परिकर-बन्धौ, वर्म-निस्त्रिंश-हस्तौ, परुषित-मुखरागौ, स्पष्ट-दष्ट-अधर-ओष्ठौ, विगत-मरण-शङ्कौ मे भ्रातरं तेजसा अभिप्रयातौ मृगपोतौ हरिम् इव।

शब्दार्थ– **कृत-परिकर-बन्धौ** = अपनी कमर को कसे हुए। **वर्म-निस्त्रिंश-हस्तौ** = हाथों में तलवार व ढाल लिए हुए। **परुषित-मुख रागौ** = क्रोध से लाल मुख वाले। **स्पष्ट-दष्ट-अधर-ओष्ठौ** = स्पष्ट रूप से दोनों ओष्ठों को चबाते हुए। **विगत-मरण-शङ्कौ**

= मरण के भय से न डरने वाले। **मे भ्रातरं** = मेरे भाई की ओर। **तेजसा अभिप्रयातौ** = बड़ी तेजी से उसी प्रकार बढ़ रहे हैं। **मृगपातौ हरिम् इव** = जैसे दो हिरण के बच्चे सिंह की ओर।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
सभाभवन में द्रौपदी के अपमान से क्रोधित नकुल-सहदेव के दृश्य को चित्रपट में देखकर दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– (नकुल और सहदेव) अपनी कमर कसे हुए, हाथों में तलवार व ढाल लिए हुए, क्रोध से लाल मुख वाले, स्पष्ट रूप से दोनों ओष्ठों को चबाते हुए, मरण के भय से न डरने वाले ये दोनों, मेरे भाई (दुःशासन) की ओर बड़ी तेजी से उसी प्रकार बढ़ रहे हैं जैसे किसी सिंह की ओर हिरण के दो बच्चे (बढ़ रहे हो।)

भावार्थ– द्रौपदी के अपमान से नकुल और सहदेव भी कमर कसकर, तलवार व ढाल हाथ में लेकर, मुख लाल करके, ओष्ठों को काटकर क्रोध कर रहे हैं, परन्तु दुर्योधन को अपने भाई दुःशासन के सामने वे उसी प्रकार कमजोर प्रतीत होते हैं जैसे सिंह के सामने दो हिरण कमजोर होते हैं।

विशेष– (1) चित्र में द्रौपदी के अपमान से क्षुमित नकुल व सहदेव का चित्रण है।
(2) अंतिम पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❑

◆ *एषः युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति।*

शब्दार्थ– **एष युधिष्ठिरः** = यह युधिष्ठिर। **कुमारौ उपेत्य** = नकुल व सहदेव के पास जाकर। **निवारयति** = उन्हें रोक रहा है।

सरलार्थ– (चित्रपट को देखकर दुर्योधन कहता है–) यह युधिष्ठिर नकुल व सहदेव के पास जाकर उन्हें रोक रहा है।

❑

◆ *नीचोऽहमेव विपरीतमतिः कथं वा*
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः।। 11।।

अन्वय– अहम् एव नीचः कथं वा विपरीतमतिः। नयानयज्ञौ अद्य रोषं परित्यजतम्। सत्त्वाधिकेषु द्यूताधिकारम् अवमानम् अमृष्यमाणाः वचनीयपराक्रमाः स्युः।

शब्दार्थ– **अहम् एव नीचः** = मैं ही नीच हूँ। **कथं वा विपरीतमतिः** = नहीं तो विपरीत बुद्धि वाला कैसे हो जाता?। **नय-अनय-ज्ञौ** = नीति और अनीति के जानकार आप दोनों। **अद्य रोषं परित्यजतम्** = अब क्रोध छोड़ दो। **द्यूत-अधिकारम् अवमानम्** = जुए के कारण होने वाले अपमान को। **अमृष्यमाणाः** = सहन न करने वाले। **सत्त्वाधिकेषु** = वीर पुरुषों में। **वचनीय-पराक्रमः स्युः** = निन्दा योग्य पराक्रम वाले होते हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
युधिष्ठिर जुए में द्रौपदी को हारने के कारण क्रोधित अपने भाइयों को समझाता हुआ कहता है–

सरलार्थ– मैं ही नीच हूँ, नहीं तो विपरीत बुद्धिवाला कैसे हो जाता? नीति और अनीति के जानकार आप दोनों (नकुल और सहदेव) क्रोध को छोड़ दो। जुए के कारण होने वाले अपमान को सहन न करने वाले, वीर पुरुषों में, निन्दा योग्य पराक्रम वाले होते हैं।

भावार्थ– युधिष्ठिर द्रौपदी के अपमान से क्रोधित अपने छोटे भाइयों–नकुल और सहदेव को रोकता है कि वे क्रोध न करें। वह अपने को नीच कहता है तथा भाइयों को नीति-अनीति के ज्ञाता कहता है। वास्तव में जुए में हारने के कारण अपमान सहन करना पड़ता है। यदि जुए के कारण अपमान सहन नहीं करते तो उन्हें वीर पुरुषों में निन्दा का पात्र होना पड़ता है।

विशेष– (1) युधिष्ठिर द्रौपदी के अपमान से क्रोधित नकुल व सहदेव को रोक रहा है–यह चित्र में चित्रित है।
(2) यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।
(3) संपूर्ण श्लोक में वसंततिलका नामक छंद है।

❑

◆ *एष गान्धारराजः ।*
अक्षान् क्षिपन् स कितवः प्रहसन् सगर्वं।
सङ्कोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यभिखं नयज्ञः ।। 12 ।। (म.द.वि. 2003)

अन्वय— अक्षान् क्षिपन्, सगर्वम् प्रहसन्, स्वकीर्त्या द्विषताम् मुदम् संकोचयन् इव स्वैरासनः, नयज्ञः, कितवः सः रुदन्तीम् द्रुपदराजसुताम् काक्षेण पश्यति अभिखम् लिखति।

शब्दार्थ— **एष गान्धारराजः** = यह गान्धार का राजा शकुनि है। **अक्षान् क्षिपन्** = पाशों को फैंकता हुआ। **सगर्वं प्रहसन्** = घमण्ड के साथ हँसता हुआ। **स्वकीर्त्या द्विषताम् मुदम् संकोचयन् इव** = अपनी चालाकी से मानो शत्रुओं की प्रसन्नता को कम करता हुआ। **स्वैरासनः** = स्वच्छन्दता से बैठा हुआ। **नयज्ञः** = कूटनीति का ज्ञाता। **कितवः सः** = धूर्त वह शकुनि। **रुदन्तीं** = रोती हुई। **द्रुपद-राज-सुताम्** = द्रौपदी को। **काक्षेण पश्यति** = तिरछी आँखों से देख रहा है। **अभिखं लिखति** = आकाश में लिख रहा है।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुर्योधन चित्रपट में शकुनि के चित्र का वर्णन करता हुआ कहता है—

गद्यांश— यह गान्धार का राजा शकुनि है।

सरलार्थ— पाशों को फैंकता हुआ, घमण्ड के साथ हँसता हुआ, अपनी चालाकी से मानो शत्रुओं की प्रसन्नता को कम करता हुआ, स्वच्छन्दता से बैठा हुआ, कूटनीति का ज्ञाता धूर्त यह शकुनि, रोती हुई द्रौपदी को तिरछी आँखों से देख रहा है तथा आकाश में लिख रहा है (ताक रहा है)।

भावार्थ— दुर्योधन भी जानता है कि शकुनि कितना धूर्त है। उसके अनेक विशेषणों को बताते हुए यह भी स्पष्ट करता है कि उसकी द्रौपदी पर भी कुदृष्टि है और बार-बार आकाश को भी देखता है। यह उसकी कूटनीतिज्ञता है।

विशेष— (1) चित्र में शकुनि की धूर्तता प्रदर्शित की गयी है।
(2) दूसरी पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) इस श्लोक में वसंततिलका छंद है।

❐

◆ *एतावाचार्यपितामहौ तां दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ। अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता। अहो युक्तलेखता। सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि कोऽत्र।*
काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः।
दुर्योधनः—बादरायण! आनीयतां स विहगवाहनमात्रविस्मितो दूतः।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)।
दुर्योधनः—वयस्य कर्ण!

शब्दार्थ— **एतौ आचार्य-पितामहौ** = ये आचार्य व पितामह हैं। **तां दृष्ट्वा** = उस द्रौपदी को देखकर। **लज्जायमानौ** = लज्जा का अनुभव करते हुए। **पट-अन्तर्हित-मुखौ** = कपड़ों में मुख छिपाए हुए। **स्थितौ** = बैठे हैं। **अहो अस्य वर्ण-आढ्यता** = इस चित्रपट में रंगों की कितनी सुन्दरता है। **अहो भाव-उपपन्नता** = वाह, कितनी भावों की गहनता है। **अहो, युक्त-लेखता** = वाह, उपयुक्त चित्रकारी है। **सुव्यक्तम् आलिखितम् अयं चित्रपटः** = यह चित्रपट अत्यन्त स्पष्ट चित्रों वाला है। **प्रीतः अस्मि** = इससे मैं प्रसन्न हूँ। **कः अत्र?** = यहाँ कोई है। **जयतु महाराजः** = महाराज की जय हो। **बादरायण! आनीयताम्** = बादरायण! ले आओ। **स विहग-वाहन-मात्र-विस्मितो दूतः** = उस (गरुड़) पक्षी मात्र की सवारी पर गर्व करने वाले दूत को। **यत् आज्ञापयति महाराजः** = महाराज की जैसी आज्ञा हो। **निष्क्रान्तः** = बाहर चला जाता है। **वयस्य कर्ण!** = मित्रकर्ण!।

सरलार्थ– (दुर्योधन चित्रपट को देखकर कहता है–)

ये आचार्य (द्रोण) व (भीष्म) पितामह हैं जो उस द्रौपदी को देखकर लज्जा का अनुभव करते हुए कपड़ों में मुख छिपाए हुए बैठे हैं। अहो, इस चित्रपट में रंगों की कितनी सुन्दरता है? वाह, भावों की कितनी गहनता हैं? वाह, उपयुक्त चित्रकारी है। यह चित्रपट अत्यन्त स्पष्ट चित्रों वाला है। इससे मैं प्रसन्न हूँ। यहाँ कोई है?

काञ्चुकीय–महाराज की जय हो।

दुर्योधन–बादरायण! उस (गरुड़) पक्षी मात्र की सवारी पर गर्व करने वाले दूत को ले आओ।

काञ्चुकीय–महाराज की जैसी आज्ञा हो।

(काञ्चुकीय बाहर चला जाता है।)

दुर्योधन–मित्रकर्ण!

◆ *प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां*
दौत्येन भृत्य इव कृष्णमतिः सः कृष्णः।
श्रोतुं सखे! त्वमपि सज्जय कर्ण! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य।। 13।। (म.द.वि. 2004, 2011)

अन्वय– अद्य कृष्णमतिः सः कृष्णः पाण्डवानाम् वचनात् दौत्येन भृत्यः इव इह प्राप्तः किल। सखे कर्ण! त्वम् अपि युधिष्ठिरस्य नारीमृदूनि वचनानि श्रोतुम् कर्णौ सज्जय।

शब्दार्थ– **अद्य** = आज। **कृष्णमतिः सः कृष्णः** = वह मलिन बुद्धि वाला श्रीकृष्ण। **पाण्डवानाम् वचनात्** = पाण्डवों के कहने से। **दौत्येन** = दूत के रूप में। **भृत्य इव** = सेवक के समान। **इह प्राप्तः** = यहाँ आया हुआ है। **सखे कर्ण!** = मित्रकर्ण। **त्वम् अपि** = तुम भी। **युधिष्ठिरस्य** = युधिष्ठिर के। **नारीमृदूनि वचनानि** = नारी के समान कोमल वचनों को। **श्रोतुं कर्णौ सज्जय** = सुनने के लिए कानों को तैयार कर लो।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दूत के रूप में आए हुए श्रीकृष्ण पर व्यंग्य करते हुए दुर्योधन कर्ण से कहता है–

सरलार्थ– आज वह मलिन बुद्धि वाला श्रीकृष्ण पाण्डवों के कहने से दूत के रूप में सेवक के समान यहाँ आया हुआ है। मित्रकर्ण! तुम भी युधिष्ठिर के नारी के समान कोमल वचनों को सुनने के लिए कानों को तैयार कर लो।

भावार्थ– दुर्योधन अपने मित्र कर्ण से कहता है आज श्रीकृष्ण पाण्डवों का दूत बनकर आ रहा है वह युधिष्ठिर के नारी के समान कायरता भरे कोमल वचन कहेगा। आप भी सुन लेना।

विशेष– (1) दुर्योधन श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर दोनों को तुच्छ समझता है।
(2) दूसरी पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) 'कृष्णमति सः कृष्णः' में यमक अलंकार है। एक कृष्ण का अर्थ है–काला। द्वितीय कृष्ण का अर्थ है–श्रीकृष्ण।
(4) प्रस्तुत श्लोक में वसन्ततिलका नामक छंद है।

◆ *(ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च।)*
वासुदेवः–अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनञ्जय-अकृत्रिम-मित्रतया च-आहव-दर्पम्नुक्त-ग्राहिणं योधनं प्रति मया अपि अनुचित-दौत्य समयोऽनुष्ठितः।

शब्दार्थ– **ततः प्रविशति वासुदेवः काञ्चुकीयश्च** = तब श्रीकृष्ण व कञ्चुकी प्रवेश करते हैं। **अद्य** = आज। **धर्मराज-वचनात्** = धर्मराज युधिष्ठिर के कहने से। **धनञ्जय-अकृत्रिम-मित्रतया** = अर्जुन से स्वाभाविक मित्रता होने से। **आहवदर्पम्** = युद्ध के लिए घमण्ड करने वाले। **अनुक्त-ग्राहिणं** = उचित को न मानने वाले। **योधनं प्रति** = दुर्योधन के पास। **अनुचित-दौत्य-समयः अनुष्ठितः** = व्यर्थ ही दूत के रूप में कार्य किया जा रहा है।

सरलार्थ– (इसके बाद श्रीकृष्ण व कञ्चुकी प्रवेश करते हैं।)

वासुदेव–आज धर्मराज युधिष्ठिर के कहने से, अर्जुन से स्वाभाविक मित्रता होने के कारण, युद्ध के रूप में घमण्ड करने वाले तथा उचित को न मानने वाले दुर्योधन के पास आकर व्यर्थ ही दूत के रूप में कार्य किया जा रहा है।

◆ ***कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ–***
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य।
भीमस्य कोपशिखिना युधि पार्थपत्रि–
चण्डानिलैश्च कुरुवंशवनं विनष्टम्।। 14।।

अन्वय– रिपुवाहिनीभकुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य भीमस्य कृष्णापराभवभुवा कोपशिखिना च पार्थपत्रिचण्डानिलैः च युधि कुरुवंशवनं विनष्टम्।

शब्दार्थ– **रिपु-वाहिनी-इभ-कुम्भस्थली-दलन-तीक्ष्ण-गदाधरस्य** = शत्रु की सेना के हाथियों के कपोलों को तोड़ने में तेज गदा धारण करने वाले। **भीमस्य** = भीम की। **कृष्णा-पराभव-भुवा** = द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न होने वाली। **कोप-शिखिना** = क्रोध रूपी आग से। **च पार्थ-पत्रि-चण्ड-अनिलैः** = और अर्जुन के बाण रूपी तेज हवा के चलने से। **कुरु-वंश-वनं** = कौरवों का कुल रूपी वन। **विनिष्टम्** = नष्ट हो जाएगा।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण जब दूत के रूप में सभाभवन में जा रहे हैं तब वे विचार करते हैं–

सरलार्थ– शत्रु की सेना के हाथियों के कपोलों को तोड़ने में तेज गदा धारण करने वाले भीम की द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न होने वाली क्रोध रूपी आग से और अर्जुन के बाण रूपी तेज हवा के चलने से कौरवों का कुल रूपी वन नष्ट हो जाएगा।

भावार्थ– जिस प्रकार वन में आग लगने से और तेज हवा के चलने से वन नष्ट हो जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण का भी विचार है कि दुर्योधन सन्धि नहीं करेगा। अतः भीम के क्रोध से और अर्जुन के बाणों से कौरवगण नष्ट हो जाएंगे।

विशेष– (1) श्रीकृष्ण भविष्यज्ञाता होने के कारण कौरव कुल के विनाश का संकेत कर रहे हैं।
(2) अंतिम दो पंक्तियों में साङ्गरूपक अलंकार है।
(3) इस श्लोक में वसन्ततिलका नामक छंद है।

◆ ***इदं सुयोधनशिविरम्। इह हि,***
आवासाः पार्थिवानां सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिताः
विस्तीर्णाः शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैरुपचिताः।
हेषन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा बृहन्ति करिण
ऐश्वर्यं स्फीतमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम्।। 15।

अन्वय– पार्थिवानाम् आवासाः सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिताः। बहुविधकरणैः शस्त्रैः उपचिताः, विस्तीर्णाः, शस्त्रशाला। मन्दुरास्थाः तुरगवरघटाः हेषन्ते, करिणः बृहन्ति। एतत् स्फीतम् ऐश्वर्यं स्वजनपरिभवात् आसन्नविलयम्।

शब्दार्थ– **इदं हि सुयोधन-शिविरम्** = यह दुर्योधन का सैन्य शिविर है। **पार्थिवानाम् आवासाः** = राजाओं के महल। **सुरपुर-सदृशाः** = इन्द्रपुरी के समान। **स्वच्छन्दविहिताः** = अपनी इच्छानुसार बनाए गये हैं। **बहुविध-करणै-शस्त्रैः** = अनेक प्रकार से प्रहार करने वाले शस्त्रों से। **उपचिताः** = भरी हुई। **विस्तीर्णाः शस्त्रशालाः** = बहुत बड़ी शस्त्रशाला हैं। **मन्दुरा-स्थाः** = घुड़शाला में विद्यमान। **तुरग-वर-घटाः** = श्रेष्ठ घोड़ों का समूह। **हेषन्ते** = हिनहिना रहा है। **करिणः** = हाथियों के समूह। **बृहन्ति** = चिंघाड़ रहा है। **एतत् स्फीतम् ऐश्वर्यम्** = यह विशाल वैभव। **स्व-जन-परिभवात्** = अपने भाइयों के अपमान के कारण। **आसन्न-विलयम्** = शीघ्र ही विनाश होने वाला है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।

दुर्योधन को दोषी मानकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के वैभव को शीघ्र नष्ट होने वाला मानता हुआ कहता है–
यह दुर्योधन का सैन्य शिविर है।

सरलार्थ– यहाँ राजाओं के महल, इन्द्रनगरी के समान अपनी इच्छानुसार बनाए गये हैं। अनेक प्रकार से प्रहार करने वाले शस्त्रों से भरी हुई बहुत बड़ी शस्त्रशाला है। घुड़शाला में विद्यमान श्रेष्ठ घोड़ों का समूह हिनहिना रहा है। हाथियों का समूह चिंघाड़ रहा है। यह विशाल वैभव अपने भाइयों के अपमान के कारण शीघ्र ही विनाश होने वाला है।

भावार्थ– श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में अपार वैभव देखते हैं वहाँ ऊँचे-ऊँचे महल, शस्त्रागार, घुड़शालाएँ, हाथियों का समूह आदि सभी कुछ है, परन्तु दुर्योधन अपने भाइयों–पाण्डवों का अपमान करके इन सभी को शीघ्र नष्ट करा देगा।

विशेष– (1) प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन के राज्य में हस्तिनापुर का वैभव प्रदर्शित किया गया है।
(2) दुर्योधन में अविवेक की ओर भी संकेत किया गया है।
(3) प्रथम पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में सुवदना नामक छंद है।

❑

◆ ***दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः।***
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति।। 16।।

अन्वय– दुष्टवादी, गुणद्वेषी, शठः, स्वजननिर्दयः सुयोधनः माम् दृष्ट्वा कार्यं नैव करिष्यति।

शब्दार्थ– **दुष्टवादी** = दुष्ट वचन कहने वाला। **गुणद्वेषी** = गुणों से द्वेष करने वाले। **शठः** = धूर्त। **स्व-जन-निर्दयः** = अपने भाइयों के प्रति दया न करने वाला। **सुयोधनः** = दुर्योधन। **हि** = निश्चय से। **मां दृष्ट्वा** = मुझे देखकर भी। **कार्यं न एव करिष्यति** = सन्धि (कार्य) नहीं करेगा।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण को विश्वास है कि दुष्ट स्वभावी दुर्योधन अपने भाइयों से सन्धि नहीं करेगा।

सरलार्थ– दुष्ट वचन कहने वाला, गुणों से द्वेष करने वाला, धूर्त, अपने भाइयों के प्रति दया न करने वाला दुर्योधन, निश्चय से मुझे देखकर भी सन्धि (कार्य) नहीं करेगा।

भावार्थ– श्रीकृष्ण यद्यपि दुर्योधन के पास पाण्डवों व कौरवों की सन्धि के लिए जा रहे हैं, परन्तु दुर्योधन के द्वेषी स्वभाव से वे परिचित हैं अतः उन्हें सन्धि की कोई भी आशा नहीं है।

विशेष– (1) श्रीकृष्ण दुर्योधन की दुष्टता के विषय में कहते हैं।
(2) यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार है।
(3) भाषा सुबोधगम्य होने के कारण प्रसाद गुण है।
(4) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❑

◆ ***भो बादरायण! किं प्रवेष्टव्यम्।***
काञ्चुकीयः–अथ किमथ किम्। प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभः।
वासुदेवः–(प्रविश्य) कथं कथं मा दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः। अलमलं संभ्रमेण। स्वैरमासतां भवन्तः।
दुर्योधनः–कथं कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः। अलमलं संभ्रमेण। स्मरणीयः पूर्वमाश्रावितो दण्डः। नन्वहमाज्ञप्ता।
वासुदेवः–भोः सुयोधन! किमास्ते।
दुर्योधनः–(आसनात् पतित्वा आत्मगतम्) सुव्यक्तं प्राप्त एव केशवः।

शब्दार्थ– **भो बादरायण! किं प्रवेष्टव्यम्** = हे बादरायण! क्या प्रवेश करें। **अथ किम्, अथ किम्** = अवश्य, अवश्य ही। **प्रवेष्टुम् अर्हति पद्मनाभः** = भगवान् आप अवश्य प्रवेश करें। **प्रविश्य** = प्रवेश करके। **कथं कथं मां दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः** = क्यों, क्यों, मुझे देखकर सभी क्षत्रिय घबरा रहे हैं। **अलम् अलं संभ्रमेण** = मत घबराइए, मत घबराइए। **स्वैरमासतां**

भवन्तः = आप स्वतंत्रता से बैठ जाएं। **कथं कथं केशवं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः** = सभी क्षत्रिय श्री कृष्ण को देखकर क्यों घबरा गए। **स्मरणीयः पूर्वम् आश्रावितः दण्डः** = पहले बताए गये दण्ड को याद रखना। **ननु अहम् आज्ञाप्ता** = मैंने दण्ड का आदेश दिया था। **भोः सुयोधन! किमु आस्ते** = हे दुर्योधन! तुम क्यों बैठे हो? **आसनात् पतित्वा आत्मगतम्** = आसन से गिरते हुए अपने मन में। **सुव्यक्तं प्राप्त एव केशवः** = वास्तव में, श्रीकृष्ण आ गये हैं।

सरलार्थ— (श्रीकृष्ण कहते हैं) हे बादरायण! क्या प्रवेश करें?

काञ्चुकीय—अवश्य, अवश्य ही। भगवान् आप अवश्य प्रवेश करें।

वासुदेव—(प्रवेश करके) क्यों, क्यों, मुझे देखकर सभी क्षत्रिय घबरा रहे हैं। आप मत घबराएँ। आप स्वतन्त्रता से सभी बैठ जाएँ।

दुर्योधन—श्रीकृष्ण को देखकर, सभी क्षत्रिय क्यों घबरा गये हैं? आप मत घबराएँ।

पहले बताए गये दण्ड को याद रखना। मैंने ही दण्ड का आदेश दिया था।

वासुदेव—हे दुर्योधन! तुम क्यों बैठे हो?

दुर्योधन—(आसन से गिरते हुए, अपने मन ही मन में)

वास्तव में, श्रीकृष्ण आ गये हैं?

◆ *उत्साहेन मतिं कृत्वाप्यासीनोऽस्मि समाहितः।*
केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम्।। 17।।

अन्वय— अहम् उत्साहेन मतिं कृत्वा अपि समाहितः आसीनः अस्मि तथापि केशवस्य प्रभावेण आसनात् चलितः अस्मि।

शब्दार्थ— **अहम् उत्साहेन मतिं कृत्वा** = मैं उत्साह से निश्चय करके। **अपि** = भी। **समाहितः आसीनः अस्मि** = दृढ़ता से बैठा रहा। **तथापि** = तो भी। **केशवस्य प्रभावेण** = श्रीकृष्ण के प्रभाव से। **आसनात् चलितः अस्मि** = मैं अपने आसन से गिर गया हूँ।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।

दुर्योधन सोच रहा था कि मैं श्रीकृष्ण के आने पर बैठा ही रहूँगा। परन्तु वह घबरा गया और कहता है—

सरलार्थ— मैं (दुर्योधन) उत्साह से निश्चय करके भी दृढ़ता से बैठा रहा। तो भी श्रीकृष्ण के प्रभाव से मैं अपने आसन से गिर गया हूँ।

भावार्थ— श्रीकृष्ण का इतना प्रभाव था कि दुर्योधन यद्यपि उसके सम्मान के लिए खड़ा होना नहीं चाहता था, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रवेश करते ही वह घबराकर गिर गया।

विशेष— (1) दुर्योधन, श्रीकृष्ण के प्रभाव व महानता को स्वीकार करता है।
(2) श्रीकृष्ण को देखकर वह स्वयं स्थिर न रह सका।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *अहो बहुमायोऽयं दूतः। (प्रकाशम्) भो दूत! एतदासनमास्यताम्।*
वासुदेवः—आचार्य! आस्यताम्। गाङ्गेयप्रमुखा राजानः! स्वैरमासतां भवन्तः। वयमप्युपविशामः। (उपविश्य) अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। मा तावत्। द्रौपदीकेशधर्षणमत्रालिखितम्।
अहो नु खलु,

शब्दार्थ— **अहो बहुमायः अयं दूतः** = यह दूत बहुत माया वाला है। **प्रकाशम्** = सभी को सुनाकर। **भो दूत! एतत् आसनम् आस्यताम्** = हे दूत! इस आसन पर बैठो। **आचार्य आस्यताम्** = आचार्य, बैठ जाइए। **गाङ्गेय-प्रमुखाः राजानः** = भीष्म आदि राजाओं!। **स्वैरम् आस्यतां भवन्तः** = आप यथानुसार बैठ जाओ। **वयम् अपि उपविशामः** = हम भी बैठते हैं। **उपविश्य** = बैठकर। **अहो, दर्शनीयः अयं चित्रपटः** = यह चित्रपट देखने योग्य है। **मा तावत्** = इसे रहने दो। **द्रौपदी-केश-धर्षणम्—अत्र—आलिखितम्** = इसमें द्रौपदी के बालों को खींचने का चित्र बना हुआ है। **अहो नु खलु** = आश्चर्य है।

सरलार्थ— (दुर्योधन अपने मन में सोचता है–) यह दूत बहुत माया वाला है। (सभी को सुनाकर) हे दूत! इस आसन पर बैठो। **बासुदेव—**आचार्य! आप बैठ जाइए। भीष्म आदि प्रमुख राजाओं! आप यथानुसार बैठ जाओ। हम भी बैठते हैं। (बैठकर) अहो, यह चित्रपट देखने योग्य है। इसे रहने दो। इसमें द्रौपदी के बालों को खींचने को चित्र बना हुआ है। आश्चर्य है– ❐

◆ *सुयोधनोऽयं स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति बालिशत्वात्!*
को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु।। 18।।

अन्वय— अयम् सुयोधनः बालिशत्वात् स्वजनावमानं पराक्रमं पश्यति। लोके को नाम सभासु नष्टघृणः स्वयं आत्मदोषम् उद्घाटयेत्।

शब्दार्थ— **अयं सुयोधनः** = यह दुर्योधन। **बालिशत्वात्** = मूर्खता के कारण। **स्व-जन-अवमानम्** = अपने कुल के अपमान को। **पराक्रमम् पश्यति** = वीरता समझता है। **को नाम लोके** = संसार में ऐसा कौन है। **नष्टघृणः** = लज्जा रहित होकर। **सभासु** = सभाओं में। **स्वयं आत्मदोषम्** = अपने आप अपने दोष को। **उद्घाटयेत्** = कहेगा।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
द्रौपदी के अपमान को सभा में प्रस्तुत करने वाले दुर्योधन के प्रति श्रीकृष्ण कहता है–

सरलार्थ— यह दुर्योधन मूर्खता के कारण अपने कुल के अपमान को वीरता समझ रहा है। संसार में ऐसा कौन है जो लज्जारहित होकर सभाओं में अपने दोष को कहेगा? अर्थात् कोई भी नहीं।

भावार्थ— अपने कुल की बुराई सभा में नहीं कहनी चाहिए। इससे स्वयं ही लज्जा आती है। परन्तु दुर्योधन इतना लज्जाशील है कि वह स्वयं अपने वंश की वधू द्रौपदी के अपमान की बात कहकर अपनी वीरता दिखा रहा है। श्रीकृष्ण को इस पर आश्चर्य होता है।

विशेष— (1) द्रौपदी के अपमान का चित्र दिखना – दुर्योधन की मूर्खता है।
(2) अंतिम पंक्ति में अर्थान्तरन्यास व वक्रोक्ति दोनों अलंकार है।
(3) इस श्लोक में उपजाति छंद है। ❐

◆ *आः अपनीयतामेष चित्रपटः।*
दुर्योधनः—बादरायण! अपनीयतां किल चित्रपटः।
काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (अपनयति।)
दुर्योधन—भो दूत!

शब्दार्थ— **आ अपनीयताम् एष चित्रपटः** = इस चित्रपट को हटाओ। **बादरायण! अपनीयतां किल चित्रपटः** = बादरायण! इस चित्रपट को हटाओ। **यद् आज्ञापयति महाराजः** = महाराज की जैसी आज्ञा हो। **अपनयति** = हटाता है। **भो दूत!** = हे दूत!।

सरलार्थ— (श्रीकृष्ण कहते हैं–) इस चित्रपट को हटाओ।
दुर्योधनः—बादरायण! इस चित्रपट को हटाओ।
काञ्चुकीयः—महाराज की जैसी आज्ञा हो।
दुर्योधनः—हे दूत!

◆ *धर्मात्मजो वायुसुतश्च भीमो भ्रातार्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनुः।*
यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ सर्वे सभृत्याः कुशलोपपन्नाः।। 19।

अन्वय— धर्म-आत्मजः, वायुसुतः च भीमः, त्रिदश-इन्द्र-सूनुः मे भ्राता अर्जुनः, तौ विनीतौ यमौ अश्विसुतौ—सर्वे सभृत्याः कुशल-उपपन्नाः।

शब्दार्थ— **धर्म-आत्मजः** = धर्म का पुत्र युधिष्ठिर। **वायु-सुतः भीमः** = वायु का पुत्र भीम। **च** = और। **त्रिदश-इन्द्र-सूनुः** = देवों के राजा इन्द्र का पुत्र। **मे भ्राता अर्जुनः** = मेरा भाई अर्जुन। **तौ विनीतौ यमौ** = वे दोनों विनम्र युगल। **अश्विनी-सुतौ** = अश्विनी कुमार के पुत्र। **सर्वे** = सभी। **सभृत्याः** = सेवकों के साथ। **कुशल-उपपन्नाः** = कुशलतापूर्वक हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण के दूत के रूप में आने पर दुर्योधन पाण्डवों की कुशलता पूछता हुआ कहता है—

सरलार्थ— (हे दूत श्रीकृष्ण!) धर्म का पुत्र—युधिष्ठिर, वायु का पुत्र भीम और देवों के राजा इन्द्र का पुत्र मेरा भाई अर्जुन, वे दोनों विनम्र युगल अश्विनी कुमार के पुत्र—(क्या) सभी कुशलतापूर्वक हैं?

भावार्थ— दुर्योधन पाँचों पाण्डवों की कुशलता पूछता है परन्तु उन्हें पाण्डु के पुत्र कहकर नहीं पुकारता बल्कि देवों के वरदान से उत्पन्न मानता हुआ उनको इस प्रकार के सम्बोधन से बुलाता है।

विशेष— (1) दुर्योधन शिष्टाचारपूर्वक पांडवों की कुशलता पूछता हुआ भी उन पर व्यंग्य करता है।
(2) 'महाभारत' से ज्ञात होता है किन्दम नामक ऋषि से अभिशप्त पाण्डु अपनी पत्नी से विरक्त हो गये थे। अतः पाण्डव, पाण्डु के पुत्र नहीं हैं।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❐

◆ ***वासुदेवः—सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य। अथ किमथ किम्। कुशलिनः सर्वे। भवतो राज्ये शरीरे बाह्याभ्यन्तरे च कुशलमनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः—***

शब्दार्थ— **सदृशम् एतत् गान्धारी पुत्रस्य** = दुर्योधन के लिए (कुशलता पूछना) सर्वथा उचित। **अथ किम्, अथ किम्** = ठीक है, ठीक है। **कुशलिनः सर्वे** = सभी कुशल हैं। **भवतः राज्ये शरीरे च बाह्य-अभ्यन्तरे** = आपके राज्य और शरीर की बाहरी और आन्तरिक। **कुशलम् अनामयम्** = कुशलता तथा नीरोगता को। **पृष्ट्वा** = पूछकर। **विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरादयः पाण्डवाः** = युधिष्ठिर आदि पाण्डव यह निवेदन कर रहे हैं।

सरलार्थ— **वासुदेव**—दुर्योधन के लिए (पाण्डवों की कुशलता पूछना) सर्वथा उचित है। ठीक है, ठीक है, सभी कुशल हैं। (वे) आप के राज्य और शरीर की बाहरी और आन्तरिक कुशलता तथा नीरोगता को पूछकर युधिष्ठिर आदि पाण्डव यह निवेदन कर रहे हैं।

❐

◆ ***अनुभूतं महद् दुःखं सम्पूर्णः समय स च।***
अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्यं तद्विभज्यताम्।। 20।। (म.द.वि. 2010)

अन्वय— महद् दुःखम् अनुभूतम्। सः च समयः सम्पूर्णः। अस्माकम् अपि यत् धर्म्यं दायाद्यं तत् विभज्यताम्।

शब्दार्थ— **महद् दुखम् अनुभूतम्** = हम बहुत दुःख भोग चुके हैं। **स च समयः सम्पूर्णः** = वह प्रतिज्ञा भी पूरी हो चुकी है। **यत् अस्माकं अपि** = जो कुछ भी हमारी। **धर्म्यम् दायाद्यम्** = धर्मपूर्वक पैतृक सम्पत्ति है। **तद् विभज्यताम्** = उसका बंटवारा कर दिया जावे।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन के लिए पाण्डवों का संदेश इस प्रकार सुनाता है—

सरलार्थ— हम (पाण्डव) बहुत दुःख भोग चुके हैं। वह (वनवास की) प्रतिज्ञा भी पूरी हो चुकी है। जो कुछ भी हमारी धर्मपूर्वक पैतृक सम्पत्ति है उसका बंटवारा कर दिया जावे।

भावार्थ— यह संदेश है जो पाण्डवों ने अज्ञातवास समाप्त होने पर भेजा कि उनका राज्य में आधा भाग है। अतः उन्हें पैतृक-सम्पत्ति के अधिकार के रूप में आधा राज्य दे देना चाहिए।

विशेष— (1) यहाँ श्रीकृष्ण संक्षेप में पाण्डवों का संदेश दुर्योधन को सुना रहे हैं।
(2) सरल भाषा होने के कारण प्रसाद गुण है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❐

◆ *दुर्योधनः–कथं कथं दायाद्यमिति?*

शब्दार्थ– **कथं** = कैसी। **कथं दायाद्यम् इति** = कैसी पैतृक-सम्पत्ति।

सरलार्थ– **दुर्योधन**–कैसी, पैतृक-सम्पत्ति कैसी?

◆ *वने पितृव्यो मृगयाप्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान्।*
तदाप्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्।। 21।। (म.द.वि. 2005)

अन्वय– वने मृगयाप्रसङ्गतः कृतापराधः पितृव्यः मुनिशापम् आप्तवान्। तदाप्रभृति एव सः दारनिस्पृहः परात्मजानाम् पितृताम् कथम् व्रजेत्।

शब्दार्थ– **वने** = वन में। **पितृव्य** = चाचा पाण्डु ने। **मृगया-प्रसङ्गतः** = शिकार करते समय। **कृत-अपराधः** = अपराधी होने से। **मुनि-शापम् आप्तवान्** = मुनि के शाप को प्राप्त किया था। **तदा-प्रभृति एव** = तभी से लेकर। **स दार निस्पृहः** = वे पत्नी से विमुख (उदासीन) थे। **पर-आत्मजानाम्** = दूसरों के पुत्रों की। **पितृताम् कथं व्रजेत्** = पैतृकता कैसे हो सकती है?।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन पाण्डवों को पैतृक-सम्पत्ति का अधिकारी न मानता हुआ कहता है–

सरलार्थ– वन में चाचा पाण्डु ने शिकार करते समय अपराधी होने से मुनि के शाप को प्राप्त किया था। तभी से लेकर वे पत्नी से विमुख (उदासीन) थे। दूसरों के पुत्रों की पैतृकता कैसे हो सकती है? अर्थात् युधिष्ठिर आदि पाण्डु के पुत्र नहीं हैं। अतः वे पैतृक-सम्पत्ति के अधिकारी नहीं हैं।

भावार्थ– दुर्योधन का कथन है कि किंदम ऋषि के शाप के कारण चाचा पाण्डु अपनी पत्नी से विमुख हो गये थे तथा युधिष्ठिर आदि उनके पुत्र न होने के कारण हस्तिनापुर के राज्य में वे पैतृक-सम्पत्ति के अधिकारी नहीं हैं।

विशेष–
(1) दुर्योधन, श्रीकृष्ण से स्पष्ट कहता है कि राज्य के अधिकारी पाण्डव नहीं हैं वे पाण्डु के पुत्र न होकर देवताओं के पुत्र हैं।
(2) 'महाभारत' नामक रचना से ज्ञात होता है कि पाण्डु किन्दम नामक ऋषि के अभिशाप के कारण अपनी पत्नी कुन्ती से विरक्त हो गये थे। परन्तु दुर्वाशा ऋषि के मन्त्र की सहायता से कुन्ती से पाँच देव पुत्र हुए थे।
(3) इस श्लोक में उपजाति छंद है।

◆ *वासुदेवः– पुराविदं भवन्तं पृच्छामि।*

शब्दार्थ– **पुराविदं** = प्राचीनता को जानने वाले। **भवन्तं पृच्छामि** = आप से पूछता हूँ।

सरलार्थ– **श्रीकृष्ण**–(दुर्योधन से कहते हैं–) प्राचीनता को जानने वाले आप से मैं पूछता हूँ।

◆ *विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम्।*
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते।। 22।।

अन्वय– विषयी विचित्रवीर्यः क्षयेण विपत्तिम् यातः। पुनः अम्बिकायाम् व्यासेन जातः। एषः ते जनकः धृतराष्ट्रः राज्यम् कथम् लभेत्।

शब्दार्थ– **विषयी** = विषयों में लगे हुए। **विचित्रवीर्य** = विचित्र वीर्य का। **क्षयेण विपत्तिम् यातः** = क्षय रोग के कारण मरण हो गया था। **पुनः अम्बिकायाम्** = फिर अम्बिका से। **व्यासेन** = व्यास के द्वारा। **जातः** = उत्पन्न। **एषः ते जनकः** = ये तुम्हारे पिता। **धृतराष्ट्रः** = धृतराष्ट्र। **राज्यं कथं लभेत** = राज्य को कैसे प्राप्त कर सकता है?।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन पाण्डवों को राज्य का उत्तराधिकारी नहीं मानता। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं–

सरलार्थ– विषयों में लगे हुए विचित्रवीर्य का क्षयरोग के कारण मरण हो गया था। फिर अम्बिका से व्यास के द्वारा उत्पन्न ये तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र राज्य को कैसे प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् धृतराष्ट्र ही राज्य के अधिकारी नहीं हैं तो तुम कैसे राज्य को प्राप्त सकते हो?

भावार्थ– श्रीकृष्ण राज्य का अधिकारी कौरवों को नहीं मानते। क्योंकि पुरुवंशी विचित्रवीर्य के दो पत्नियाँ थी–अम्बिका और अम्बालिका। विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् अम्बिका के गर्भ से व्यास के नियोग से धृतराष्ट्र पैदा हुए थे। अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब धृतराष्ट्र ही राज्य के अधिकारी नहीं हैं तो तुम राज्य के अधिकारी कैसे हो सकते हो?

विशेष– (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण अकाट्य तर्क के आधार पर कौरवों को हस्तिनापुर के राज्य का अधिकारी नहीं समझते।
(2) कौरवों के पिता धृतराष्ट्र थे जो विचित्रवीर्य के पुत्र थे परन्तु विचित्रवीर्य के कोई संतान नहीं थी तभी व्यास के नियोग से अम्बिका से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे।
(3) इस श्लोक में उपजाति छंद है।

❐

◆ ***एवं परस्परविरोधविवर्धनेन***
शीघ्रं भवेत् कुरुकुलं नृप! नामशेषम्।
तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोषं
यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति।। 23।। (म.द.वि. 2011)

अन्वयः– हे नृप! एवम् परस्परविरोधविवर्धनेन शीघ्रं कुरुकुलं नामशेषम् भवेत्। भवान् रोषम् अपकृष्य तत् कर्तुम् अर्हति यत् त्वाम् युधिष्ठिरमुखाः प्रणयात् ब्रुवन्ति।

शब्दार्थ– **हे नृपः** = हे राजन्। **एवं परस्पर-विरोध-विवर्धनेन** = इस प्रकार आपस के विरोध को बढ़ाने से। **कुरुकुलं शीघ्रं नामशेषं भवेत्** = कौरवकुल शीघ्र ही नाममात्र शेष रह जाएगा, समाप्त हो जाएगा। **भवान्** = आपको। **रोषम् अपकृष्य** = क्रोध का त्याग करके। **तत् कर्तुम् अर्हति** = वही करना चाहिए। **यत्** = जो। **त्वां** = आपको। **युधिष्ठिर-मुखाः** = युधिष्ठिर आदि। **प्रणयात् ब्रुवन्ति** = प्रेम से कह रहे हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण व्यर्थ का विवाद बढ़ाना नहीं चाहते हैं वे दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं–

सरलार्थ– हे राजन्! (दुर्योधन!) इस प्रकार आपस में विरोध बढ़ाने से कौरव–कुल शीघ्र ही नाम मात्र शेष रह जाएगा अर्थात् उसका विनाश हो जाएगा। अत आपको क्रोध का त्याग करके वही करना चाहिए जो आपको युधिष्ठिर आदि प्रेम से कह रहे हैं।

भावार्थ– श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हैं कि आपसी विरोध करना ठीक नहीं है। इससे कौरवों का ही विनाश होगा। अतः दुर्योधन को युधिष्ठिर की बात मानकर उन्हें आधा राज्य देना चाहिए।

विशेष– (1) प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को न्यायसंगत तर्क देते हैं।
(2) भाषा सरल होने के कारण यहाँ प्रसाद गुण है।
(3) इस श्लोक में वसन्ततिलका नामक छंद है।

❐

◆ ***दुर्योधनः–भो दूत! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम्।***

शब्दार्थ– **भो दूत!** = हे दूत!। **न जानाति भवान्** = आप नहीं जानते हैं। **राज्य-व्यवहारं** = राज्य सम्बन्धी व्यवहार को।

सरलार्थ– दुर्योधन–(श्रीकृष्ण से कहता है–) हे दूत! आप राज्य सम्बन्धी व्यवहार को नहीं जानते हैं।

❐

◆ *राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते*
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते।
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम्।। 24।।

अन्वय— सहृदयैः नृपात्मजैः रिपून् राज्यं जित्वा नाम भुज्यते। लोके तत् न तु याच्यते वा न तु दीनाय दीयते। चेत् नृपतित्वम् आप्तुं कांक्षा ते अचिरं साहसं कुर्वन्तु वा शान्तमतिभिः जुष्टम् आश्रमं शमाय स्वैरं प्रविशन्तु।

शब्दार्थ— **सहृदयैः**= विवेकी। **नृप आत्मजैः** = राजकुमार। **रिपून् जित्वा** = शत्रुओं को जीतकर। **राज्यं नाम भुज्यते** = राज्य का उपभोग करते हैं। **तत् तु लोके** = वह लोक में। **न याच्यते** = न तो माँगा जाता है। **न तु पुनः दीनाय दीयते** = न दीनों को दान में दिया जाता है। **चेत्** = यदि। **नृपतित्वम् आप्तुं कांक्षा** = उन्हें राज्य को प्राप्त करने की अभिलाषा है। **ते अचिरात्** = वे शीघ्र ही। **साहसं कुर्वन्तु** = साहस करें, युद्ध करें। **वा** = अथवा। **शमाय** = शान्ति प्राप्त करने के लिए। **शान्तमतिभिः जुष्टम्** = संन्यासियों के द्वारा सेवनीय। **आश्रमम्** = संन्यास आश्रम में। **स्वैरं प्रविशन्तु** = स्वतंत्रता से प्रवेश करें।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन किसी प्रकार की शान्तिपूर्वक सन्धि नहीं चाहता है और श्रीकृष्ण से कहता है—

सरलार्थ— विवेकी राजकुमारों के द्वारा शत्रुओं को जीतकर ही राज्य का उपभोग किया जाता है। वह राज्य लोक में न तो मांगा जाता है और न दीनों को दान दिया जाता है। यदि (युधिष्ठिर आदि) राज्य को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं तो वे शीघ्र ही साहस करें (युद्ध करें)। अथवा शान्ति प्राप्त करने के लिए संन्यासियों द्वारा सेवनीय संन्यास आश्रम में स्वतन्त्रता से प्रवेश करें।

भावार्थ— दुर्योधन श्रीकृष्ण से स्पष्ट कह देता है कि राज्य न माँगा जाता है, न दान में दिया जाता है। राजकुमार तो राज्य को जीतकर प्राप्त करते हैं और उसको वीरता से भोगते हैं। यदि पाण्डवों में शक्ति है तो वे युद्ध करें और राज्य प्राप्त कर लें। नहीं तो, संन्यासी बनकर वन में चले जाएँ।

विशेष— (1) दुर्योधन को अपने बल पर अहंकार है। अतः वह पाण्डवों को उनका आधा राज्य नहीं देना चाहता।
(2) भाषा सुबोधगम्य होने के कारण यहाँ प्रसाद गुण है।
(3) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छंद है।

❐

◆ *वासुदेवः—भोः सुयोधन! अलं बन्धुजने परुषमभिधातुम्।*

शब्दार्थ— **भो सुयोधन!** = हे दुर्योधन!। **बन्धुजने** = अपने भाइयों से। **अलं परुषम् अभिधातुम्** = कठोर वचन कहने से क्या लाभ?।

सरलार्थ— **वासुदेव**—हे दुर्योधन! अपने भाइयों से कठोर वचन कहने से क्या लाभ?

❐

◆ *पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम्।*
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः।। 25।। **(म.द.वि. 2006)**

अन्वय— यः पुण्यसञ्चयसम्प्राप्ताम् नृपश्रियम् अधिगम्य सुहृदबन्धून् वञ्चयेत्, सः विफलश्रमः भवेत्।

शब्दार्थ— **यः** = जो पुरुष। **पुण्य-सञ्चय-सम्प्राप्ताम्** = अनेक पुण्यों से प्राप्त होने वाली। **नृप-श्रियम्** = राज्य रूपी लक्ष्मी को। **अधिगम्य** = प्राप्त करके। **सुहृदय-बन्धून्** = मित्रों और भाइयों को। **वञ्चयेत्** = धोखा देता है। **सः** = वह। **विफलश्रमः** = निरर्थक परिश्रम वाला। **भवेत्** = हो जाता है।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि उन्हें भाइयों से धोखा नहीं करना चाहिए। उनका यह भी कथन है—

सरलार्थ— जो पुरुष अनेक पुण्यों से प्राप्त होने वाली राज्य रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करके मित्रों और भाइयों को धोखा देता है वह निरर्थक परिश्रम वाला हो जाता है अर्थात् वह कभी सुखी नहीं रहता।

भावार्थ— श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हैं कि राज्य की प्राप्ति तो बहुत पुण्यों का फल है जो राज्य को प्राप्त करके भाइयों व मित्रों को धोखा देता है वह कभी सुख प्राप्त नहीं करता है।

विशेष— (1) यहाँ राजा के कर्त्तव्य पर प्रकाश डाला गया है।
(2) 'नृपश्रियम्' में रूपक अलंकार है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *दुर्योधनः—स्यालं तव गुरोर्भूपं कंसं प्रति न ते दया।*
कथमस्माकमेवं स्यात् तेषु नित्यापकारिषु।। 26।।

अन्वय— तव गुरोः स्यालं भूपं कंसं प्रति ते दया न, एवं नित्यापकारिषु तेषु अस्माकं कथं स्यात्।

शब्दार्थ— **तव गुरोः** = तुम्हारे पिता के। **स्यालं भूपं कंसं प्रति** = साले राजा कंस के प्रति। **ते दया न** = तुम्हें दया नहीं आई थी। **एवं** = इस प्रकार करने वाले। **तेषु** = उन पाण्डवों पर। **अस्माकं कथं स्यात्** = हमारी दया कैसे हो सकती है?

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन पाण्डवों को राज्य नहीं देना चाहता है वह श्रीकृष्ण पर भी आक्षेप करता हुआ कहता है—

सरलार्थ— दुर्योधन—तुम्हारे पिता के साले राजा कंस के प्रति तुम्हें दया नहीं आई थी। सदा विरोध करने वाले उन पाण्डवों पर हमारी दया कैसे हो सकती है अर्थात् हम उन पर दया नहीं करेंगे।

भावार्थ— दुर्योधन कृष्ण से कहता है कि तुमने भी अपने मामा कंस को मार डाला था तुम्हें उस समय दया नहीं आई थी। जो पाण्डव हमारे विरोधी रहे हैं उन पर हम कभी भी दया नहीं करेंगे।

विशेष— (1) दुर्योधन श्रीकृष्ण पर व्यंग्य करता है कि वह हमें दया करने के लिए क्यों कहता है?
(2) अंतिम पंक्ति में वक्रोक्ति अलंकार है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *वासुदेवः—अलं तन्मद्दोषतो ज्ञातुम्।*

शब्दार्थ— **तद्** = उस विषय में। **मत् दोषतः ज्ञातुम् अलम्** = मेरा दोष कदापि नहीं समझो।

सरलार्थ— **वासुदेव**—उस विषय (कंस को मारने) में मेरा दोष कदापि नहीं समझो।

◆ *कृत्वा पुत्रवियोगार्तां बहुशो जननीं मम।*
वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा हतोऽयं मृत्युना स्वयम्।। 27।। (म.द.वि. 2005)

अन्वय— मम जननीं बहुशः पुत्रवियोगार्तां कृत्वा वृद्धं स्वपितरं बद्ध्वा अयम् मृत्युना स्वयं हतः।

शब्दार्थ— **मम जननीम्** = मेरी माता को। **बहुशः** = अनेक बार। **पुत्र-वियोग-आर्ताम्** = पुत्र के वियोग से पीड़ित। **कृत्वा** = करके। **वृद्धं स्व-पितरं बद्ध्वा** = बूढ़े अपने पिता को बाँधकर। **अयं मृत्युना स्वयं हतः** = वह अपने आप अपनी मौत मारा गया।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन से कंस के दुराचार की कथा बताते हुए कहते हैं—

सरलार्थ— (कंस ने) मेरी माता (दिवकी) को अनेक बार पुत्र के वियोग में पीड़ित करके और अपने बूढ़े पिता (उग्रसेन) को कारावास में बन्दी बनाकर वह अपने आप अपनी मौत मारा गया था।

भावार्थ– श्रीकृष्ण ने कंस के दो अपराधों को बताया है–एक तो उसने कृष्ण की माता देवकी के पुत्रों को मार डाला था। दूसरे, उसने पिता उग्रसेन को कारावास में बन्दी बनाकर रखा था। अतः अपने पापों के कारण वह मारा गया था।

विशेष– (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण कंस की मृत्यु को उसका पाप ही बातते हैं।
(2) पापों का फल अनिष्ट होता है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।
(4) कंस ने अपने श्वसुर जरासंध के बहकावे में आकर अपने पिता उग्रसेन को कारागार में बाँधकर रखा था और स्वयं मथुरा का राजा बन गया था।

◆ *दुर्योधनः–सर्वथा वञ्चितस्त्वया कंसः। अलमात्मस्तवेन न शौर्यमेतत्। प्रश्य–*

शब्दार्थ– **सर्वथा वञ्चितः त्वया कंसः** = तुमने ही कंस को धोखा दिया था। **अलम् आत्म-स्तवेन** = अपनी प्रशंसा मत करो। **न शौर्यम् एतत्** = यह वीरता नहीं है। **प्रश्य** = बताइए–

सरलार्थ– **दुर्योधन**–तुम (श्रीकृष्ण) ने ही कंस को धोखा दिया था। तुम अपनी प्रशंसा मत करो। यह वीरता नहीं है। बताइए–

◆ *जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ।*
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्यं तदेतत् क्व गतं तवासीत्।। 28।।

अन्वय– अथ जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरे भयातुरस्य पलायमानस्य तव तदेतत् शौर्यं क्व गतम् आसीत्।

शब्दार्थ– **अथ** = इसके पश्चात्। **जामातृ-नाश-व्यसन-अभितप्ते** = दामाद (कंस) की मृत्यु के शोक से व्याकुल हुए। **रोष-अभिभूते** = क्रोधित होने पर। **मगध-ईश्वरे** = मगध के राजा जरासंध के। **भय-आतुरस्य** = भय से दुखी होकर। **पलायमानस्य** = भागते हुए। **तव तद् एतत् शौर्यम्** = तब तुम्हारी वह वीरता। **क्व गतम् आसीत्** = कहाँ चली गयी थी?।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुर्योधन श्रीकृष्ण की वीरता पर आक्षेप करता हुआ कहता है–

सरलार्थ– इसके पश्चात् (कंस के मारे जाने पर) दामाद (कंस) की मृत्यु के शोक से व्याकुल हुए मगध के राजा जरासंध के क्रोधित होने पर, भय से दुःखी होकर भागते हुए तब तुम्हारी वह वीरता कहाँ चली गयी थी? अर्थात् तुम क्यों डर गये थे?

भावार्थ– दुर्योधन श्रीकृष्ण से पूछता है कि कंस के मारे जाने पर उसके दामाद जरासंध ने जब मथुरा पर आक्रमण किया था तब तुम डरकर द्वारिकापुरी क्यों आ गये थे? तब अपना पराक्रम क्यों नहीं दिखाया था?

विशेष– (1) यहाँ पर दुर्योधन श्रीकृष्ण पर आक्षेप करके उसे कायर सिद्ध करना चाहता है।
(2) अंतिम पंक्ति में वक्रोक्ति अलंकार है।
(3) इस श्लोक में उपजाति छंद है।
(4) जरासंध कंस का श्वसुर था। कंस की मृत्यु के पश्चात् वह मथुरा पर सदा आक्रमण करता रहता था अतः श्रीकृष्ण और उसकी प्रजा द्वारका जाकर रहने लगे थे।

◆ *वासुदेवः–भोः सुयोधन! देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम्। इह तिष्ठतु तावदस्मद्गतः परिहासः। स्वकार्यमनुष्ठीयताम्।*

शब्दार्थ– **भोः सुयोधन!** = हे दुर्योधन!। **देश-काल-अवस्था-अपेक्षि** = देश, समय और परिस्थिति के अनुसार। **शौर्यं** = वीरता। **नय-अनुगामिनाम्** = नीति पर चलने वालों की। **इह तिष्ठतु** = यहीं रहने दें। **तावत् अस्मद्गतः परिहासः** = हमारे बीच के उपहास। **स्वकार्यम् अनुष्ठीयताम्** = अपने कार्य को करो।

सरलार्थ– वासुदेव–हे दुर्योधन! नीति पर चलने वालों की वीरता तो देश, काल और परिस्थिति के अनुसार होती है। अब हमारे बीच के उपहास यहीं रहने दें। (आप) अपना कार्य करो।

◆ *कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः*
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि।। 29।। (म.द.वि. 2010) (म.द.वि. 2004)

अन्वय– भ्रातृषु स्नेहः कर्तव्यः, गुणेतराः विस्मर्तव्या, बन्धुभिः सम्बन्धः उभयोः अपि लोकयोः श्रेयान्।

शब्दार्थ– **भ्रातृषु स्नेहः कर्त्तव्यः** = भाइयों के साथ स्नेह करना चाहिए। **गुण-इतराः** = दोषों को। **विस्मर्तव्याः** = भुला देना चाहिए। **बन्धुभिः सम्बन्धः** = भाइयों से अच्छा सम्बन्ध। **उभयोः अपि लोकयोः श्रेयान्** = दोनों लोकों में कल्याण करने वाला होता है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन से अपने भाइयों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने पर जोर देते हुए कहते हैं–

सरलार्थ– भाइयों के साथ स्नेह करना चाहिए। उनके दोषों को भुला देना चाहिए। भाइयों से अच्छा सम्बन्ध, दोनों लोकों (इस लोक और परलोक) में कल्याण करने वाला होता है।

भावार्थ– श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझा रहे हैं कि वह अपने भाइयों पाण्डवों से स्नेह करे और उनके दोषों पर ध्यान न दे। यही उनके लिए कल्याणदायक बात है।

विशेष– (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण दुर्योधन को न्याय व धर्मपूर्ण तर्क देकर समझा रहे हैं।
(2) प्रस्तुत श्लोक नीति पूर्ण है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *दुर्योधनः–*
देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत्।
पिष्टपेषणमेतावत् पर्याप्तं छिद्यतां कथा।। 30।। (म.द.वि. 2010)

अन्वय– मनुष्याणां देवात्मजैः कथं वा बन्धुता भवेत्? एतावत् पिष्टपेषणं पर्याप्तम्। कथा छिद्यताम्।

शब्दार्थ– **मनुष्याणाम्** = मनुष्यों की। **देव-आत्मजैः** = देवों के पुत्रों के साथ। **कथं वा बन्धुता भवेत्** = भाईचारा कैसे हो सकता है? **एतावत्** = इतना (राज्य का बंटवारा)। **पिष्ट-पेषणम्** = पिसे हुए को पीसना है, बार-बार दुहराना है। **कथा-छिद्यताम्** = इस बात को बन्द करो।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन राज्य के बंटवारे के विषय में कोई बात नहीं करना चाहता। अतः श्रीकृष्ण से कहता है–

सरलार्थ– दुर्योधन कहता है कि मनुष्यों का देवों के पुत्रों के साथ भाईचारा कैसे संभव है? अर्थात्, असंभव है। यह तो (राज्य का बँटवारा) पिसे हुए को पीसना है अर्थात् बार-बार दुहराना है। इस बात को बन्द करो।

भावार्थ– दुर्योधन स्पष्ट मना कर देता है कि पाण्डवों के साथ हमारा भाईचारा नहीं हो सकता। क्योंकि वे देवों के पुत्र हैं और हम मानव पुत्र हैं। वह श्रीकृष्ण से यह भी स्पष्ट कर देता है कि वे बार-बार राज्य के विभाजन की बात न करें।

विशेष– (1) दुर्योधन पाँचों पाण्डवों को देवों का पुत्र कहता है। अतः उन्हें राज्य का अधिकारी नहीं मानता।
(2) अंतिम पंक्ति में वक्रोक्ति अलंकार है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *वासुदेवः–(आत्मगतम्)*

सरलार्थ– वासुदेव–अपने मन ही मन में।

◆ *प्रसाद्यमानः साम्नायं न स्वभावं विमुञ्चति।*
हन्त संक्षोभमयाम्येनं वचोभिः परुषाक्षरैः।। 31।। (म.द.वि. 2009)

अन्वय— अयम् (दुर्योधनः) साम्ना प्रसाद्यमानः स्वभावम् न विमुञ्चति। हन्त, एनम् परुषाक्षरैः वचोभिः संक्षोभयामि।

शब्दार्थ— **अयम्** = यह युधिष्ठिर। **साम्ना** = शान्ति से। **प्रसाद्यमानः** = समझाने पर भी। **स्वभावम्** = अपने स्वभाव को। **न विमुञ्चति** = नहीं छोड़ रहा है। **हन्त** = ठीक है। **एनम्** = इसे। **परुष-अक्षरैः वचोभिः** = कठोर वचनों से ही। **संक्षोभयामि** = व्याकुल करता हूँ।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन के विषय में अपने मन में सोचता हुआ कहता है—

सरलार्थ— यह युधिष्ठिर शान्ति से समझाने पर भी अपने कठोर स्वभाव को नहीं छोड़ रहा है। ठीक है, अब इसे कठोर वचन कहकर ही व्याकुल करता हूँ।

भावार्थ— श्रीकृष्ण ने जब विविध रूपों में दुर्योधन को समझाया कि वह शान्तिपूर्ण आधा राज्य पाण्डवों को दे दे। जब वह नहीं माना तो श्रीकृष्ण ने निश्चय किया कि अब कठोरता से ही बात करता हूँ, तभी यह मानेगा।

विशेष— (1) पुनः-पुनः समझाने पर भी दुर्योधन के कठोर स्वभाव के अनुसार ही श्रीकृष्ण कठोर वचन कहने को बाध्य है।
(2) श्रीकृष्ण नीतिज्ञ हैं। अतः साम से न मानने पर कठोरता से उसे वश में करना चाहते हैं।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❐

◆ *(प्रकाशम्) भोः सुयोधन! किं न जानीषेऽर्जुनस्य बलपराक्रमम्?*
दुर्योधनः—न जाने?
वासुदेवः—श्रूयताम्। किं बहुना।

शब्दार्थ— **भोः सुयोधन!** = अरे दुर्योधन!। **किं न जानीषे** = क्या तुम नहीं जानते हो?। **अर्जुनस्य बलपराक्रमम्** = अर्जुन की शक्ति व वीरता को। **न जाने** = मैं नहीं जानता हूँ। **श्रूयताम्**= सुनो। **किं बहुना** = अधिक कहने से क्या लाभ?।

सरलार्थ— (सभी को सुनाते हुए) अरे दुर्योधन! क्या तुम अर्जुन की शक्ति और उसकी वीरता को नहीं जानते हो?
दुर्योधन—मैं नहीं जानता हूँ।
वासुदेव—तो सुनो। अधिक कहने से क्या लाभ?

❐

◆ *कैरातं वपुरास्थितः पशुपतिर्युद्धेन संतोषितो*
वह्नेः खाण्डवमश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश्छादिता।
देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचाः नीताः क्षयं लीलया
नन्वेकेन तदा विराटनगरे भीष्मादयो निर्जिताः।। 32।।

अन्वय— कैरातं वपुः आस्थितः पशुपतिः युद्धेन संतोषितः, खाण्डवम् अश्नतः वह्नेः सुमहती वृष्टिः शरैः छादिता, देवेन्द्र-आर्तिकराः निवातकवचाः लीलया क्षयं नीताः। ननु एकेन तदा विराटनगरे भीष्म-आदयः निर्जिताः।

शब्दार्थ— **कैरातम्** = भील के। **वपुः आस्थितः** = शरीर को, वेश को, धारण करने वाले। **पशुपतिः** = शिव जी को। **युद्धेन** = युद्ध में। **सन्तोषितः** = प्रसन्न किया था। **खाण्डवम् अश्नतः** = खाण्डव वन को जलाने वाली, खाने वाली। **वह्नेः** = अग्नि को। **सुमहती वृष्टिः** = बुझाने वाली वर्षा भी। **शरैः छादिता** = बाणों से रोक दी गयी थी। **देवेन्द्र-आर्तिकराः** = इन्द्र को भी कष्ट देने वाले। **निवात-कवचाः** = निवात और कवच नामक राक्षसों को। **लीलया** = सरलता से। **क्षयं नीता** = मार डाला था। **ननु एकेन** = उस अकेले ही। **तदा** = तब। **विराट नगरे** = विराट नगर में। **भीष्म-आदयः** = भीष्म पितामह आदि योद्धाओं को। **निर्जिताः** = हरा दिया था।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
दुर्योधन को भड़काने के लिए ही श्रीकृष्ण अर्जुन की वीरता को प्रदर्शित करते हुए कहता है—

सरलार्थ— भील के वेश को धारण करने वाले शिवजी को अर्जुन ने युद्ध में प्रसन्न किया था। खाण्डव वन को जलाने वाली अग्नि को बुझाने वाली वर्षा भी अर्जुन के द्वारा बाणों से रोक दी गयी थी। इन्द्र को कष्ट देने वाले निवात-कवच नामक राक्षसों को सरलता से अर्जुन ने मार डाला था। उस अकेले ही अर्जुन ने भीष्म पितामह आदि योद्धाओं को विराट नगर में हरा दिया था।

भावार्थ— अर्जुन की वीरता दिखाते हुए श्रीकृष्ण ने उसकी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(1) इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कर रहे अर्जुन ने भील के वेश को धारण करने वाले शिव से युद्ध किया था जिससे शिव जी प्रसन्न हो गये थे।

(2) खाण्डव वन को अग्नि खा रही थी इन्द्र ने वर्षा करके उसे शान्त करने की इच्छा की। अग्नि जब अर्जुन की शरण में गये तो अर्जुन ने अपने बाणों से आकाश को ढक दिया, अतः अग्नि ने खाण्डव वन को जलाकर अपनी भूख शान्त की थी।

(3) अर्जुन ने विराट नगर में वृहन्नला के रूप में उत्तर का सारथी बनकर भीष्म पितामह आदि को पराजित कर दिया था।

(4) निवात-कवच राक्षसों का मारना संभव नहीं था ये इन्द्र को दुःखी करते रहते थे परन्तु अर्जुन ने इन्हें मार डाला था।

विशेष— (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन की वीरता का उल्लेख किया है जिससे दुर्योधन का बहादुरी कम हो जावे।
(2) प्रस्तुत श्लोक में उदात्त अलंकार है।
(3) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छंद है।

❑

◆ ***अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि।***

शब्दार्थ— **अपि च** = और भी। **तव अपि** = तुम्हारे भी। **प्रत्यक्षं** = सामने। **अपरं** = अन्य घटना को। **कथयामि** = कर रहा हूँ।

सरलार्थ— (श्रीकृष्ण दुर्योधन से कहता है—) मैं और भी तुम्हारे सामने हुई अन्य घटना को कह रहा हूँ।

❑

◆ ***ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम्।***
विक्रोशन् घोषयात्रायां फल्गुनेनैव मोचितः।। 33।।

अन्वय— घोषयात्रायां चित्रसेनेन नभस्तलं नीयमानः विक्रोशन् त्वम् ननु फाल्गुनेन एव मोचितः।

शब्दार्थ— **घोष-यात्रायाम्** = घोषयात्रा के समय, गौहरण के समय। **चित्रसेनेन** = जब चित्रसेन तुम्हें। **नभस्तलम् नीयमानः** = आकाश से ले जा रहा था। **विक्रोशन् त्वं** = रक्षा के लिए चिल्लाते हुए तुम्हें। **फाल्गुनेन एव** = अर्जुन ने ही। **मोचितः** = छुड़ाया था।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन को वह घटना याद दिलाता है जिसमें उसकी रक्षा अर्जुन ने की थी—

सरलार्थ— घोष यात्रा के समय (गौ हरण के समय) जब चित्रसेन तुम्हें (दुर्योधन को) आकाश मार्ग से ले जा रहा था तब रक्षा के लिए चिल्लाते हुए तुम्हें अर्जुन ने ही छुड़ाया था।

भावार्थ— श्रीकृष्ण दुर्योधन को यह घटना याद दिलाते हैं जब दुर्योधन को चित्रसेन नामक गन्धर्व उठाकर ले गया था। वह अपनी रक्षा के लिए बहुत ही चिल्लाया था। तभी अर्जुन ने उसकी रक्षा की थी।

विशेष– (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण अर्जुन की वीरता को बताकर दुर्योधन को हतोत्साहित कर रहे हैं।
(2) यह घटना महाभारत में प्राप्य है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज!*
अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः।। 34।। (म.द.वि. 2004, 2006)

अन्वय– हे धृतराष्ट्रज! मद् वाक्यात् राज्यार्धं दातुम् अर्हसि। अन्यथा हि पाण्डवाः सागरान्तां गाम् हरिष्यन्ति।

शब्दार्थ– **हे धृतराष्ट्रज!** = हे धृतराष्ट्र के पुत्र! (दुर्योधन!)। **मद् वाक्यात्** = मेरे कहने से। **राज्य-अर्धम् दातुम् अर्हसि** = तुम्हें आधा राज्य पाण्डवों को दे देना चाहिए। **अन्यथा** = नहीं तो। **हि** = निश्चय से। **पाण्डवाः** = पाण्डव। **सागरान्तां गाम्** = समुद्र तक की पृथ्वी को, राज्य को। **हरिष्यन्ति** = छीन लेंगे।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हुए कह रहे हैं–

सरलार्थ– हे धृतराष्ट्र के पुत्र! (दुर्योधन!) मेरे कहने से तुम्हें आधा राज्य पाण्डवों को दे देना चाहिए। नहीं तो निश्चय से पाण्डव समुद्र तक की सम्पूर्ण भूमि (राज्य) को तुम से छीन लेंगे।

भावार्थ– श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हैं कि तुम मेरा कहना मान लो और आधा राज्य पाण्डवों को दे दो, अन्यथा वे तुम से समस्त राज्य छीन लेंगे। अभी तुम्हें लाभ होगा और तुम्हारा नाम भी होगा।

विशेष– (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण दुर्योधन को सावधान करते हैं कि वे न्याय के मार्ग को अपनावे।
(2) सरल भाषा होने के कारण यहाँ प्रसाद गुण है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *दुर्योधनः–कथं कथम्? हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः।*

शब्दार्थ– **कथं** = कैसे?। **कथं हरिष्यन्ति** = कैसे छीन सकेंगे। **पाण्डवाः** = पाण्डव।

सरलार्थ– दुर्योधन–कैसे कहते हो? पाण्डव सारी पृथ्वी को कैसे छीन सकेंगे?

◆ *प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमरूपी*
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः।
परुषवचनदक्ष! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये।। 35।।

अन्वय– हे परुषवचनदक्ष! यदि युद्धे भीमरूपी मारुतः प्रहरति, यदि पार्थरूपेण साक्षात् शक्रः प्रहरति त्वद्वचोभिः पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये तृणम् अपि न दास्ये।

शब्दार्थ– **हे परुष-वचन-दक्ष** = हे कठोर वचन करने में चतुर!। **यदि युद्धे** = यदि युद्ध में। **भीमरूपी मारुतः** = भीम के रूप में स्वयं वायुदेवता। **प्रहरति** = प्रहार करता है। **यदि पार्थरुपेण** = यदि अर्जुन के रूप में। **साक्षात् शक्रः** = प्रत्यक्ष रूप में इन्द्र आकर। **त्वद् वचोभिः** = तुम्हारे कहने से। **पितृभुक्ते** = पिता के द्वारा भोगे गये। **स्वराज्ये** = अपने राज्य में से। **तृणम् अपि न दास्ये** = मैं एक तिनका भी नहीं दूँगा।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।

दुर्योधन श्रीकृष्ण से स्पष्ट कहता है कि वह पाण्डवों को राज्य का थोड़ा-सा भी भाग नहीं देगा। वह श्रीकृष्ण से कहता है–

व्याख्या– हे कठोर वचन कहने में निपुण! (श्रीकृष्ण!) यदि युद्ध में भीम के रूप में वायुदेवता भी मुझ पर प्रहार करता है, यदि अर्जुन के रूप में प्रत्यक्ष रूप में आकर इन्द्र देवता भी मुझ पर प्रहार करता है। तो भी, तुम्हारे कहने से मैं पिता के द्वारा भोगे गये और अपने पराक्रम से सुरक्षित किए गये अपने राज्य में से एक तिनका भी नहीं दूँगा।

भावार्थ– दुर्योधन श्रीकृष्ण की एक भी बात नहीं मानता है वह श्रीकृष्ण से कहता है कि यदि भीम तो क्या, उसका पिता वायु देवता आ जावे। अर्जुन तो क्या, उसका पिता इन्द्र भी आ जावे, तो भी मैं अपने राज्य में से कुछ भी पाण्डवों को नहीं दूँगा।

विशेष– (1) यहाँ पर दुर्योधन पाण्डवों को राज्य न देने पर अटल दिखाई पड़ता है।
(2) दुर्योधन राज्य को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानता है।
(3) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❐

◆ ***वासुदेवः–भोः कुरुकुलकलङ्कभूत! अयशोलुब्ध! वयं किल तृणान्तराभिभाषकाः।***
दुर्योधनः–भो गोपालक! तृणाभिभाष्यो भवान्।

शब्दार्थ– **भोः कुरुकुल-कलङ्कभूत!** = हे कुरुकुल के कलङ्क!। **अयशो-लुब्ध!** = अपयश को चाहने वाले!। **वयं किल** = हम तो निश्चय से। **तृण-अन्तर-अभिभाषकाः** = तुम्हारे साथ तिनका बीच में रख कर बोल रहे हैं। **भो गोपालक!** = हे ग्वाले! **तृण-अभिभाष्यः भवान्** = आप ही ऐसे हैं जो तिनका बीच में रखकर बोलने योग्य हो।

व्याख्या– **वासुदेव**–(दुर्योधन से) हे कुरु कुल के कलङ्क! अपयश को चाहने वाले! हम तो निश्चय से तुम्हारे साथ, तिनका बीच में रखकर बोल रहे हैं। अर्थात् मुझे तुम पर विश्वास नहीं है। तुम तो तुच्छ हो।
दुर्योधन–हे ग्वाले! आप ही ऐसे हैं जो तिनका बीच में रखकर बोलने योग्य हैं। अर्थात् आप भी नीच हो।

भावार्थ– प्राचीन काल में नीच व्यक्ति से बात कहने के लिए बीच में तिनका रखकर बोला जाता है। श्रीकृष्ण दुर्योधन से बात करते समय तिनका बीच में रखने की बात कहता है तो दुर्योधन भी श्रीकृष्ण को इसी योग्य समझता है कि उसके साथ बात करते समय तिनका बीच में रखना चाहिए।

❐

◆ ***अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च।***
मल्लानपि सुनिर्लज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः।। 36।।

अन्वय– अवध्यां प्रमदां हयं गोवृषम् एव च मल्लान् अपि हत्वा सुनिर्लज्जः साधुभिः वक्तुम् इच्छसि।

शब्दार्थ– **अवध्याम्** = न मारने योग्य। **प्रमदां** = स्त्री को, पूतना को। **हयम्** = घोड़े को, केशी राक्षस को। **गोवृषम्** = बैल को, अरिष्ट राक्षस को। **मल्लान् अपि** = पहलवानों को, चाणूर आदि को भी। **हत्वा** = मारकर। **सुनिर्लज्जः** = हे अत्यन्त निर्लज्ज श्रीकृष्ण!। **साधुभिः वक्तुम् इच्छसि** = तुम सज्जनों से बातें करने की इच्छा करते हो।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन श्रीकृष्ण को ललकारता हुआ कहता है–

व्याख्या– (हे श्रीकृष्ण!) न मारने योग्य (पूतना) स्त्री को, घोड़े (केशी राक्षस) को, बैल (अरिष्ट राक्षस) को तथा पहलवानों (चाणूर आदि) को मारकर हे अत्यन्त निर्लज्ज श्रीकृष्ण! तुम सज्जनों से बातें करने की इच्छा करते हो अर्थात् सज्जनों से बात करने योग्य तुम नहीं हो।

भावार्थ– दुर्योधन श्रीकृष्ण को पशुओं व नारी का हत्यारा कहकर उसे सज्जनों से बात न करने योग्य कहता है। यहाँ पर पूतना नामक राक्षसी, केशी नामक राक्षस, अरिष्ट नामक राक्षस तथा चाणूर आदि पहलवानों की ओर संकेत है, जो राक्षस थे, परन्तु नारी, घोड़े, बैल व पहलवानों का रूप धारण करके आए थे।

विशेष– (1) दुर्योधन श्रीकृष्ण पर भी आक्षेप करके उसे निर्बल सिद्ध करना चाहता है।

(2) यहाँ पर पौराणिक तथ्यों का संकेत है।
(3) इस श्लोक में मालिनी छंद प्रयुक्त है।

◆ *वासुदेवः–भोः सुयोधन! ननु क्षिपसि माम्।*
दुर्योधनः–आः, अभाष्यस्त्वम्।

शब्दार्थ– **भोः सुयोधन!** = हे दुर्योधन!। **ननु क्षिपसि माम्** = क्या तुम मुझ पर आपेक्ष कर रहे हो। **आः** = अरे। **अभाष्यः त्वम्** = तुम तो बोलने योग्य ही नहीं हो।

सरलार्थ– **वासुदेव**–हे दुर्योधन! क्या मुझ पर आक्षेप (आरोप) कर रहे हो?
दुर्योधन–अरे, तुम तो बातें करने भी योग्य नहीं हो।

◆ *अहमवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा।*
अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भाषे।। 37।।

अन्वय– अवधृतपाण्डरातपत्रः द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा अहम् अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः भवद्विधैः सह न भाषे, कथयामि।

शब्दार्थ– **अवधृत-पाण्डर-आतपत्रः** = सफेद छाते को धारण किए हुए। **द्विजवर-हस्त-धृत-अम्बुसिक्त-मूर्धा** = श्रेष्ठ ब्राह्मणों के हाथों से धारण किए गये जल से अभिषेक किए गये मस्तक वाला। **अहम्** = मैं कह रहा हूँ। **अवनत-नृप-मण्डलः अनुयात्रैः** = झुके हुए राजाओं के समूहों के पीछे चलने वाले। **भवद्-विधैः सह** = आप जैसों के साथ। **न भाषे** = नहीं बोलूँगा। **कथयामि** = यह कह देता हूँ।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन को बहुत घमण्ड है अतः श्रीकृष्ण को तुच्छ मानता हुआ कहता है–

सरलार्थ– सफेद छाते को धारण किए हुए तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों के हाथों से धारण किए गये जल से अभिषेक किए गये मस्तक वाला मैं यह कह रहा हूँ कि झुके हुए राजाओं के समूह के पीछे चलने वाले आप जैसों के साथ नहीं बोलूँगा।–यह कह देता हूँ।

भावार्थ– दुर्योधन एक ओर, अपने को नियमानुसार बनाया गया राजा कहता है जो श्वेत छाता धारण करता है तथा जिसका राज्याभिषेक हुआ है तो दूसरी ओर, श्रीकृष्ण को अपने आधीन राजाओं का सेवक कहता है। अतः कृष्ण को तुच्छ बताकर उससे बोलना नहीं चाहता है।

विशेष– (1) दुर्योधन अपने को श्रीकृष्ण की अपेक्षा उत्तम कहकर श्रीकृष्ण का अपमान करता है।
(2) यहाँ काव्यलिंग अलंकार है।
(3) इस श्लोक में पुष्पिताग्रा नामक छंद है।

◆ *वासुदेवः–न व्याहरति किल मां सुयोधनः। भोः!*

शब्दार्थ– **न व्याहरति किल मां** = क्या वास्तव में मुझसे नहीं बोलता है। **सुयोधनः** = यह दुर्योधन। **भोः** = अरे!।

सरलार्थ– (**श्रीकृष्ण**–कहते हैं–) तो क्या यह दुर्योधन वास्तव में मुझसे नहीं बोलता है? अरे!।

◆ *शठ! बान्धवनिःस्नेह! काक! केकर! पिङ्गल!।*
त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति।। 38।।

अन्वय– शठ, बान्धवनिःस्नेह, काक, केकर, पिङ्गल, त्वदर्थात् अयम् कुरुवंशः अचिरात् नाशम् एष्यति।

शब्दार्थ– **शठः** = धूर्त!। **बान्धव-निःस्नेह!** = भाइयों से स्नेह न करने वाले। **काक!** = कौए के समान बोलने वाले। **केकर!** = विकारयुक्त आँखों वाले। **पिङ्गल** = बन्दर!। **त्वद् अर्थात्** = तुम्हारे कारण ही। **अयं कुरुवंश** = यह कौरव कुल। **अचिरा[त्]** = शीघ्र ही। **नाश एष्यति** = नष्ट हो जाएगा।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब दुर्योधन श्रीकृष्ण पर आक्षेप करता है तो श्रीकृष्ण भी क्रोध से भरकर दुर्योधन से कहते हैं–

सरलार्थ– हे धूर्त! हे भाइयों से कठोर वचन कहने वाले! हे कौए के समान बोलने वाले! हे विकारयुक्त आँखों वाले! हे बन्दर! (दुर्योधन!) तुम्हारे कारण ही यह कौरव कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

भावार्थ– क्रोधित होकर श्रीकृष्ण भी दुर्योधन को अपशब्दों से सम्बोधित करते हैं तथा मानो यह भविष्यवाणी करते हैं कि तुम्हारे इसी व्यवहार के कारण कौरव कुल का विनाश हो जाएगा।

विशेष– (1) प्रस्तुत श्लोक में श्रीकृष्ण का दुर्योधन के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त है।
(2) किसी को कौआ, बंदर, बहंगा आदि कहना, अपशब्दों का प्रयोग है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❑

◆ ***भो भो राजानः। गच्छामस्तावत्।***
दुर्योधनः–कथं यास्यति किल केशवः। दुर्मर्षण! दुर्मुख! दुर्बुद्धे! दुष्टेश्वर दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बध्यताम्। कथमशक्ताः। दुःशासन! न समर्थः खल्वसि।

शब्दार्थ– **भोः भो राजानः** = हे क्षत्रिय राजाओं!। **गच्छामः तावत्** = हम तो चलते हैं। **कथं यास्यति किल केशवः** = यह केशव कैसे जाएगा। **दूत-समुदारम्-अतिक्रान्तः** = दूत के शिष्टाचार का तिरस्कार करने वाले कैसे जाएगा। **केशवो बध्यताम्** = केशव को बाँध लो। **कथम् अशक्ताः** = तुम क्यों शक्तिहीन हो गये। **दुःशासन! न समर्थः खलु असि** = हे दुःशासन! क्या तुम भी समर्थ नहीं हो?।

सरलार्थ– (श्रीकृष्ण कहते हैं–) हे क्षत्रिय राजाओं! हम तो चलते हैं।
दुर्योधन–यह केशव कैसे जाएगा? हे दुर्मर्षण! हे दुर्मुख! हे दुर्बुद्धे! हे दुष्टेश्वर! दूत के शिष्टाचार (मर्यादा) का तिरस्कार करने वाले केशव को बाँध लो। तुम क्या शक्तिहीन हो गये हो? हे दुःशासन! क्या तुम भी समर्थ नहीं हो?

❑

◆ ***करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः***
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः।
हतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं
स्ववचनकृतदोषो बध्यतामेष शीघ्रम्।। 39।। (म.द.वि. 2003)

अन्वय– करितुरगनिहन्ता, कंसहन्ता, पशुपकुलनिवासात् आनुजीव्यानभिज्ञः, हतभुजबलवीर्यः, पार्थिवानां समक्षं स्ववचनकृतदोषः सः एषः कृष्णः शीघ्रम् बध्यताम्।

शब्दार्थ– **करि-तुरग-निहन्ता** = हाथी और घोड़ों को मारने वाले। **कंस-हन्ता** = कंस की हत्या करने वाले। **पशुप-कुल-निवासात्** = ग्वालों के समूह में रहने के कारण। **आनुजीव्यान् अभिज्ञः** = सेवकों के व्यवहार को न जानने वाले। **हत-भुज बलवीर्यः** = भुजा के बल और पराक्रम से रहित होकर। **पार्थिवानां समक्षं** = राजाओं के सामने ही। **स्व-वचन कृत-दोषः** = अपने (कठोर) वचनों से ही दोषी बने हुए। **सः कृष्णः** = इस कृष्ण को। **शीघ्रम्** = शीघ्र ही। **बध्यताम्** = बाँध लिया जावे।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण को दूत की मर्यादा का तिरस्कार करते हुए देखकर दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– हाथी और घोड़ों को मारने वाले, कंस की हत्या करने वाले, ग्वालों के समूह में रहने के कारण सेवकों के व्यवहार को न जानने वाले, भुजा के बल व पराक्रम से रहित, क्षत्रिय राजाओं के सामने ही अपने (कठोर) वचनों से ही दोषी बने हुए इस (श्रीकृष्ण) को शीघ्र बाँध लिया जावे या पकड़ लिया जावे।

भावार्थ– दुर्योधन श्रीकृष्ण को बाँधने की आज्ञा देता है क्योंकि उसने कठोर शब्द कहकर दूत की मर्यादा का तिरस्कार किया है। संभवतः ग्वालों के साथ रहकर वह शिष्टाचार नहीं जानता। इस प्रकार दुर्योधन श्रीकृष्ण का अपमान भी करता है।

विशेष– (1) दुर्योधन श्रीकृष्ण को बाँधने का आदेश देता है। दूत को बाँधना सर्वथा नीति के विपरीत है।
(2) महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण ने कंस के कुवलयपीड नामक हाथी को मार डाला था।
(3) घोड़े के रूप को धारण करने वाले केशी नामक राक्षस को श्रीकृष्ण ने मार दिया था।
(4) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

◆ ***दुर्योधनः–अयमशक्तः। मातुल! बध्यतामयं केशवः। कथं पराङ्मुखः पतति। भवतु, अहमेव पाशैर्बध्नामि। (उपसर्पति)***
वासुदेवः–कथं बद्धुकामो मां किल सुयोधनः। भवतु, सुयोधनस्य सामर्थ्यं पश्यामि। (विश्वरूपमास्थितः)
दुर्योधनः– भो दूत!

शब्दार्थ– **अयम् अशक्तः** = इस दुःशासन में भी शक्ति नहीं। **मातुलः** = मामा। **बध्यतां अयं केशवः** = इस केशव को बांध लीजिए। **कथं पराङ्मुखः पतति** = क्या आप भी उल्टे गिर पड़े। **भवतु** = अच्छा। **अहम् एव पाशैः बध्नामि** = मैं ही पाशों से बाँधता हूँ। **उपसर्पति** = कृष्ण के पास जाता हूँ। **कथं बद्धुकामः मां किल सुयोधनः** = क्या दुर्योधन मुझे बांधने की इच्छा करता है। **भवतु** = अच्छा। **सुयोधनस्य सामर्थ्यं पश्यामि** = दुर्योधन की शक्ति को देख लेता हूँ। **विश्वरूपम् आस्थितः** = विराट् रूपों को धारण करने पर। **भो दूत!** = अरे दूत!।

सरलार्थ– **दुर्योधन**–इस दुःशासन में भी शक्ति नहीं है। मामाश्री! इसके केशव को बाँध लीजिए। क्या आप भी उल्टे होकर गिर पड़े हैं? अच्छा, मैं ही पाशों से बाँधता हूँ। (श्रीकृष्ण के पास जाता है।)
वासुदेव–क्या दुर्योधन ही मुझे बाँधने की इच्छा करता है? अच्छा, दुर्योधन की शक्ति को देख लेता हूँ। (विराट् रूपों को धारण करके)
दुर्योधन–हे दूत!।

◆ ***सृजसि यदि समन्ताद् देवमायाः स्वमायाः***
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः।
हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो
नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाद्य।। 40।।

अन्वय– यदि त्वम् देवमायाः स्वमायाः समन्तात् सृजसि। यदि वा त्वम् दुर्निवारैः सुरास्त्रैः प्रहरसि। अद्य नरपतिगणमध्ये हयगजवृषभाणाम् पतनात् जातदर्पः त्वम् मया बध्यसे।

शब्दार्थ– **यदि देवमायाः** = यदि तुम देवों की माया का। **स्वमायाः** = या अपनी माया का। **समन्तात् सृजति** = चारों ओर से प्रयोग करते हो। **यदि वा** = अथवा तुम। **दुर्निवारैः** = न रोके जा सकने वाले। **सुर-अस्त्रैः** = देवों के अस्त्रों से। **प्रहरसि** = प्रहार करते हो। **अद्य** = आज। **नरपति-गण-मध्ये** = राजाओं के बीच में। **हय-गज-वृषभाणाम्** = घोड़े, हाथी और बैलों के। **पतनात्** = मारने से। **जातदर्पः** = घमण्ड करने वाले। **त्वम् मया बध्यसे** = तुम्हें मैं अवश्य बाँध लूँगा।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा विरचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है। जब श्रीकृष्ण को कोई नहीं बाँध सका तो स्वयं दुर्योधन उसे बाँधने का प्रयत्न करता है और कहता है–

सरलार्थ– यदि तुम देवों की माया का या अपनी माया का चारों ओर से प्रयोग करते हो। अथवा तुम न रोके जा सकने वाले देवों के अस्त्रों से भी प्रहार करते हो तो आज राजाओं के बीच में घोड़े, हाथी और बैलों के मारने से घमण्ड करने वाले तुम्हें मैं अवश्य बाँध लूँगा।

भावार्थ– दुर्योधन का विचार है कि वह श्रीकृष्ण को अवश्य ही बाँध लेगा। श्रीकृष्ण के पास चाहे अपनी या देवों की माया हो या देवों के दिव्य अस्त्र हों। उसने अभी तक घोड़े, हाथी व बैल आदि पशु ही मारे हैं। उसे इनका गर्व करना निरर्थक है। अब दुर्योधन की शक्ति को भी वह देख लेगा।

विशेष– (1) इस श्लोक में दुर्योधन का मिथ्या अहंकार प्रदर्शित किया गया है।
(2) श्रीकृष्ण दिव्य अस्त्र धारण करने वाले हैं।
(3) श्रीकृष्ण ने घोड़े के रूप धारण करने वाले केशी राक्षस को मार दियाथा।
(4) श्रीकृष्ण ने कंस के कुवलयीपड नाम के हाथी को मार दिया था तथा अरिष्ट नामक बैल का विनाश किया था।
(5) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❑

◆ ***दुर्योधनः–आः तिष्ठेदानीम्। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः। अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य। आः तिष्ठेदानीम्। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः। अहो दीर्घत्वं केशवस्य। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः। सर्वत्र मन्त्रशालायां केशवा भवन्ति। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। भो, भो राजानः। एकैनेकः केशवो बध्यताम्। कथं स्वयमेव पाशैर्बद्धाः पतन्ति राजानः! साधु भो जम्भक! साधु!***

शब्दार्थ– **आः तिष्ठ इदानीम्** = अच्छा, जरा ठहर जा। **कथं न दृष्टः केशवः** = केशव क्यों नहीं दिखाई देता?। **अयं केशवः** = यह केशव है। **अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य** = अरे केशव छोटा हो गया। **आः तिष्ठ इदानीं** = अच्छा, जरा ठहर जा। **कथं न दृष्टः केशवः** = केशव क्यों नहीं दिखाई देता। **अहो, दीर्घत्वं केशवस्य** = अरे, केशव विशाल हो गया। **सर्वत्र मंत्रशालायां केशवाः सन्ति** = सभा भवन में सभी जगह केशव ही केशव हैं। **किं इदानीं करिष्ये** = अब मैं क्या करूँ। **भवतु** = अच्छा। **दृष्टम्** = समझ लिया। **भो भो राजानः** = हे राजाओं!। **एकेन एकः केशवः बध्यताम्** = प्रत्येक एक-एक केशव को बाँध लो। **कथं स्वयमेव पाशैः बद्धाः पतन्ति राजानः** = ये राजा अपने आप ही पाशों से बँधकर क्यों गिर रहे हैं?। **साधु भो जम्भक! साधु!** = ठीक है, माया-मयी, ठीक है।

सरलार्थ– **दुर्योधन**–(कृष्ण की मायावी शक्ति को देखकर) अच्छा, जरा ठहर जा! केशव क्यों नहीं दिखाई देता है? यह केशव है। अरे, केशव छोटा हो गया। अच्छा, अभी ठहर जा। केशव क्यों नहीं दिखाई देता है? यह केशव है। अरे केशव की विशालता? (बड़ा हो गया)। केशव फिर क्यों नहीं दिखाई देता? यह केशव है। सभा भवन में सभी जगह केशव ही केशव हैं। अब मैं क्या करूँ? समझ लिया–हे राजाओं! प्रत्येक एक-एक केशव को बाँध लो। ये राजा अपने आप ही पाशों से बँधकर क्यों गिर रहे हैं? ठीक है, मायामयी! ठीक है।

भावार्थ– यह श्रीकृष्ण की मायामयी शक्ति है कि वह कभी छोटा रूप धारण कर लेता है तो कभी अदृश्य हो जाता है। कभी बड़ा रूप धारण करता है फिर कभी दिखाई नहीं देता। कभी अनेक रूपों को धारण कर लेता है। वे सभी रूप मायावी हैं। अतः उन्हें बाँधना भी संभव नहीं है। श्रीकृष्ण की इस विश्वमयी शक्ति को दुर्योधन नहीं समझ सका। न वहाँ के राजागण ज्ञात कर सके।

❑

◆ ***मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालै–***
विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रम्।
पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिविरोपनीतं
त्वां वाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः।। 41।।

अन्वय– मत्कार्मुकोदरविनिःसृतबाणजालैः विद्धक्षरत्क्षतजरञ्जितसर्वगात्रं शिविरोपनीतं त्वाम् वाष्परुद्धनयनाः पाण्डुतनयाः विनिःश्वसन्तः पश्यन्तु।

शब्दार्थ– **मत्-कार्मुक-उदर-विनिः सृत-बाण-जालैः** = मेरे धनुष में से छोड़े गये बाणों के समूह से। **विद्ध-क्षरत्-क्षतज-रञ्जित-सर्व-गात्रम्** = घायल होने से निकलते हुए खून से रंगे हुए लाल शरीर वाले। **शिविर-उपनीतम्** = पांडवों के सैन्य पड़ाव में ले जाए गये। **त्वां** = तुम्हें। **वाष्प-रुद्ध-नयनाः** = आँसुओं से भरे हुए आँखों वाले। **पाण्डु-तनयाः** = पाण्डव। **विनिः श्वसन्तः** = लम्बी आहें भरते हुए। **पश्यन्तु** = तुम्हें देखें।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन श्रीकृष्ण को बाँधकर उसे अपनी शक्ति का परिचय देना चाहता है। अतः दुर्योधन केशव से कहता है–

सरलार्थ– मेरे धनुष में से छोड़े गये बाणों के समूह से घायल होने से निकलते हुए खून से रंगे हुए लाल शरीर वाले, पांडवों के सैन्य शिविर में ले जाए गये तुम्हें (केशव को) आँसुओं से भरे हुए आँखों वाले पांडव, लंबी आहें भरते हुए देखें।

भावार्थ– दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहता है कि तुम मेरे धनुष के बाणों से घायल होकर खून से रंग जाओगे। तुम्हारी इस दशा को देखकर पांडवों के आँखों में आँसू जावें तथा वे दुःख की साँसें लेते रहें।

विशेष– (1) यहाँ पर दुर्योधन अपने झूठे अहंकार को प्रदर्शित करता है।
(2) समास-बहुला शैली का यहाँ पर प्रयोग है।
(3) 'वाष्परूद्धनयनाः' में लाक्षणिकता है।
(4) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

◆ *(निष्कान्तः)*

वासुदेवः–भवतु, पाण्डवानां कार्यमहमेव साधयामि। भोः सुदर्शन! इतस्तावत्।

(ततः प्रविशति सुदर्शनः।)

सुदर्शनः–एष भोः।

शब्दार्थ– **निष्कान्तः** = निकल जाता है। **भवतु** = अच्छा। **पाण्डवानां कार्यम् अहमेव साधयामि** = पांडवों के कार्य को मैं ही पूरा कर देता हूँ। **भोः सुदर्शन!** = हे सुदर्शन (चक्र)!। **इतस्तावत्** = इधर आओ। **ततः प्रविशति सुदर्शनः** = तब सुदर्शन प्रवेश करता है। **एषभोः** = यह मैं हूँ।

सरलार्थ– (दुर्योधन चला जाता है।)

वासुदेव–अच्छा, पांडवों का कार्य मैं ही कर देता हूँ। हे सुदर्शन चक्र! इधर आओ।

(इसके पश्चात् सुदर्शन चक्र प्रवेश करता है।)

सुदर्शन–यह मैं हूँ।

◆ ***श्रुत्वा गिरं भगवतो विपुलप्रसादा-***
न्निर्धावितोऽस्मि परिवारिततोयदोघः।
कस्मिन् खलु प्रकुपितः कमलायताक्षः
कस्याद्य मूर्धनि मया प्रविजृम्भितव्यम्।। 42।।

अन्वय– भगवतः गिरम् श्रुत्वा परिवारिततोयदोघः विपुल प्रसादात् निर्धावितः अस्मि। कमलायताक्षः खलु कस्मिन् प्रकुपितः। मया अद्य कस्य मूर्धनि प्रविजृम्भितव्यम्।

शब्दार्थ– **भगवतः** = भगवान् नारायण की। **गिरम्-श्रुत्वा** = वाणी को सुनकर। **परिवारित-तोयद-ओघः** = बादलों के समूह को हटा करके। **विपुल-प्रसादात्** = बहुत अधिक हर्ष से। **निर्-धावितः अस्मि** = मैं तेजी से दौड़कर आया हूँ। **कमल-आयत-अक्षः** = कमल के समान विशाल आँखों वाले श्रीकृष्ण। **कस्मिन् खलु प्रकुपितः** = किस पर क्रोधित हुए हैं। **मया अद्य** = मुझे आज। **कस्य मूर्धनि** = किसके मस्तक पर। **प्रविजृम्भितव्यं** = प्रहार करना है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को याद किया वैसे ही सुदर्शन चक्र उनके पास आता हुआ कह रहा है–

सरलार्थ– भगवान् नारायण की वाणी को सुनकर बादलों के समूह को हटाकर मैं (सुदर्शन चक्र) बहुत अधिक हर्ष के साथ तेजी से दौड़कर आया हूँ। कमल के समान विशाल आँखों वाले श्रीकृष्ण किस पर क्रोधित हुए हैं? मुझे आज किसके मस्तक पर प्रहार करना है?

भावार्थ— श्रीकृष्ण के स्मरण करते ही सुदर्शन चक्र आकाश में बादलों के मध्य से हर्ष के साथ भगवान् के पास आया तथा सोचने लगा कि मुझे किसके मस्तक पर प्रहार करना है।

विशेष— (1) सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण का दिव्य तथा अमोघ शस्त्र है। यही विष्णु भगवान् का अस्त्र माना जाता है।
(2) 'कमलायताक्षः' में उपमका अलंकार है।
(3) इस श्लोक में वसन्ततिलका नामक छंद है।

❑

◆ ***क्व नु खलु नारायणः***

सरलार्थ— (सुदर्शन चक्र कहता है—) भगवान् श्रीकृष्ण कहाँ हैं?

❑

◆ ***अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षरणोद्यतः।***
एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः।। 43।।

अन्वय— अव्यक्तादिः, अचिन्त्यात्मा, लोकसंरक्षुरणोद्यतः, एकः, अनेकवपुः, श्रीमान्, द्विषद्बलनिषूदनः।

शब्दार्थ— **अव्यक्त-आदिः** = अव्यक्त प्रकृति के कारण है। **अचिन्त्य आत्मा** = न विचार करने योग्य रूप वाले। **लोक-संरक्षण-उद्यतः** = संसार की सुरक्षा करने में तैयार रहने वाले। **एकः** = एक होकर भी। **अनेकवपुः** = अनेकों शरीरों को धारण करते हैं। **श्रीमान्** = लक्ष्मीवान् है। **द्विषद्-बल-निषूदनः** = शत्रुओं की शक्ति (सेना) का विनाश करने वाले हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
सुदर्शन चक्र भगवान् नारायण के स्मरण करते ही आता है और भगवान् के विषय में कहता है—

सरलार्थ— भगवान् नारायण अव्यक्त प्रकृति के कारण हैं, न विचार करने योग्य रूप वाले, संसार की सुरक्षा करने में तैयार रहने वाले तथा एक होकर भी अनेक शरीरों को धारण करने वाले हैं। लक्ष्मीवान् तथा शत्रुओं की शक्ति (सेना) का विनाश करने वाले हैं।

भावार्थ— संसार में भगवान् असीम है। संसार का कारण प्रकृति है, परन्तु वे प्रकृति के भी कारण हैं। संसार के रक्षण, अद्वितीय, एक होकर भी अनेक हैं। शत्रुओं का सदा विनाश करते हैं।

विशेष— (1) सुदर्शन चक्र के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन है।
(2) श्रीकृष्ण के दिव्य रूप का चित्रण है।
(3) 'एकोऽनेकवयुः' में विरोधाभास अलंकार है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❑

◆ ***(विलोक्य) अये अयं भगवान् हस्तिनापुरद्वारे दूतसमुदाचारेणोपस्थितः। कुतः खल्वापः, कुतः खल्वापः। भगवति आकाशगङ्गे! आपस्तावत्। हन्त स्रवति। (आचम्योपसृत्य) जयतु भगवान् नारायणः (प्रणमति)।***
वासुदेवः—सुदर्शन! अप्रतिहतपराक्रमो भव।
सुदर्शनः—अनुग्रहीतोऽस्मि।
वासुदेवः—दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः।
सुदर्शनः—कथं कथं कर्मकाल इति। आज्ञापयतु भगवानाज्ञापयतु।

शब्दार्थ— **विलोक्य** = देखकर। **अये अयं भगवान्** = अरे, ये भगवान्। **हस्तिनापुर-द्वारे** = हस्तिनापुर नगर के द्वार पर। **दूत-समुदाचारेण-उपस्थितः** = दूत के कार्य से उपस्थित है। **कुतः खलु आपः** = जल कहाँ है?। **भगवति आकाशगङ्गे!** = हे देवी आकाश गंगे!। **आपः तावत्** = जल प्रदान करो। **हन्त स्रवति** = अच्छा, जल गिर रहा है। **आचम्य** = आचमन

करके। उपसृत्य = पास जाकर। **जयतु भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण की जय हो। **प्रणमति** = प्रणाम करता है। **सुदर्शन! अप्रतिहतपराक्रमः भव** = न रोके जाने वाले पराक्रम वाले बनो। **अनुगृहीतः अस्मि** = मैं अनुगृहीत हुआ। **दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः** = भाग्य से आप कार्य के समय पर आ गए हो। **कथं कथं कर्मकाल इति** = कैसे? कार्य का कैसा समय?। **आज्ञापयतु** = आज्ञा प्रदान करें। **भगवान् आज्ञापयतु** = भगवन्! आप आज्ञा प्रदान करें।

सरलार्थ– सुदर्शन–(भगवान् को देखकर) अरे, ये भगवान् तो हस्तिनापुर नगर के द्वार पर दूत के कार्य से उपस्थित हैं। जल कहाँ है? जल कहाँ है? देवी आकाश गंगा! जल प्रदान करो। अच्छा, जल गिर रहा है। (आचमन करके तथा भगवान् के पास जाकर) भगवान् नारायण की जय हो (भगवान् को प्रणाम करता है)।

वासुदेवः–सुदर्शन! न रोके जाने वाले पराक्रम वाले बनो।

सुदर्शन–मैं अनुगृहीत हो गया।

वासुदेव–भाग्य से आप कार्य के समय पर आ गये हो।

सुदर्शन–कैसे? कार्य का कैसा समय? आज्ञा प्रदान करें। भगवन् आप आज्ञा प्रदान करें।

◆ *किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि*
संक्षोभयामि सकलं मकरालयं वा।
नक्षत्रवंशमखिलं भुवि पातयामि
नाशक्यमस्ति मम देव! तव प्रसादात्।। 44।।

अन्वय– किम् मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि? वा सकलं मकरालयं संक्षोभयामि? अखिलं नक्षत्रवंशं भुवि पातयामि? हे देव! तव प्रसादात् मम अशक्यम् न अस्ति।

शब्दार्थ– **किम्** = क्या?। **मरु-मंदर-कुलं परिवर्तयामि** = सुमेरु पर्वत व मंदराचल पर्वतों को उल्टा कर दूँ। **वा** = अथवा। **सकलम्** = संपूर्ण। **मकर-आलयम् संक्षोभयामि** = समुद्र में हलचल पैदा कर दूँ। **अखिलम्** = समस्त। **नक्षत्र-वंशम्** = नक्षत्रों के समूह को। **भुवि पातयामि** = पृथ्वी पर गिरा दूँ। **देव!** = हे भगवन्! **तव प्रसादात्** = आपकी दया से। **मम अशक्यम् न अस्ति** = मेरे लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण के स्मरण करते ही सुदर्शन चक्र शीघ्र भगवान् नारायण के पास आकर कहता है–

सरलार्थ– (हे भगवन्) क्या मैं सुमेरु पर्वत व मंदराचल पर्वतों को उल्टा कर दूँ? अथवा संपूर्ण समुद्र में हलचल पैदा कर दूँ। समस्त नक्षत्रों के समूह को पृथ्वी पर गिरा दूँ। हे भगवन्! आपकी दया से मेरे लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

भावार्थ– सुदर्शन चक्र अपनी शक्ति के विषय में कहता है कि वह विशाल पर्वतों को उल्टा कर सकता है। समुद्र में क्षोभ पैदा कर सकता है। नक्षत्रों को गिरा सकता है अर्थात् सभी असंभव कार्यों को संभव बना सकता है। लेकिन यह सभी भगवान् नारायण के प्रभाव से ही संभव है।

विशेष– (1) सुदर्शन चक्र की अमोघ शक्ति का वर्णन किया गया है।
(2) आकाश से पाताल तक सुदर्शन चक्र की अमोघ शक्ति कार्य करती है।
(3) इस श्लोक में वसन्ततिलका छंद है।

◆ *वासुदेवः–भोः सुदर्शन! इतस्तावत्। भोः सुयोधन!*

सरलार्थ– वासुदेव–हे सुदर्शन चक्र! यहाँ आओ। हे दुर्योधन!

◆ *यदि लवणजलं वा कन्दरं वा गिरीणां*
ग्रहगणचरितं वा वायुमार्गं प्रयासि।
मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं
भवतु चपल! चक्रं कालचक्रं तवाद्य।। 45।।

अन्वय— हे चपल! यदि लवणजलं वा गिरीणां कन्दरं वा ग्रहगणचरितं वा वायुमार्गम् प्रयासि अद्य मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं चक्रं तव कालचक्रं भवतु।

शब्दार्थ— **हे चपल!** = हे विवेकहीन!। **यदि लवणजलम्** = यदि तुम क्षार-समुद्र में। **वा** = अथवा। **गिरीणां कन्दरं** = पर्वतों की गुफाओं में। **वा** = अथवा। **ग्रह-गण-चरितम्** = नक्षत्रों के मार्ग पर आकाश में। **वायुमार्गं** = वायु के मार्ग पर। **प्रयासि** = चले जाते हो। **अद्य** = आज। **मम** = मेरी। **भुज-बल योग-प्राप्त-संजात-वेगम्** = भुजाओं की शक्ति के संयोग से प्राप्त और उत्पन्न वेग वाला। **चक्रम्** = यह सुदर्शन चक्र। **तव कालचक्रं भवतु** = तुम्हारे लिए मरण का चक्र बन जाएगा।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र का महत्त्व दुर्योधन को बताते हुए कहते हैं—

सरलार्थ— हे विवेकहीन! (दुर्योधन!) यदि तुम खारे जल वाले समुद्र में, अथवा पर्वतों की गुफाओं में, अथवा नक्षत्रों के मार्ग पर आकाश में, अथवा वायु के मार्ग पर चले जाते हो तो आज ही यह सुदर्शन चक्र तुम्हारे लिए मरण चक्र बन जाएगा अर्थात् तुम्हें मार डालेगा।

भावार्थ— श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र की अतुल शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह समुद्र व पर्वत की गुफा, आकाश या वायु मार्ग सभी जगह प्रहार करने में समर्थ है। दुर्योधन कहीं भी छिप जाए यह चक्र वहीं पर जाकर मार डालेगा।

विशेष— (1) श्रीकृष्ण दुर्योधन से स्पष्ट कहते हैं कि तुम कहीं पर भी रहो सुदर्शन चक्र तुम्हें नष्ट कर देगा।
(2) 'चक्रं कालचक्रं' में यमक अलंकार है।
(3) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❐

◆ *सुदर्शनः—भोः सुयोधनहतक! (इति पुनर्विचार्य) प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः।*

शब्दार्थ— **भोः सुयोधनहतक!** = हे दुष्ट दुर्योधन!। **पुनः विचार्य** = फिर विचार करके। **प्रसीदतु भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण शांत हो जावे।

सरलार्थ— सुदर्शन—हे दुष्ट दुर्योधन! (इस प्रकार फिर विचार करके) प्रसन्न होवें, भगवान् नारायण शांत हो जावें।

❐

◆ *महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले।*
अस्मिन्नेव गते देव! ननु स्याद् विफलः श्रमः।। 46।।

अन्वय— हे देव! अस्मिन् एव गते महीभारापनयनम् कर्तुं भूतले जातस्य श्रमः, ननु विफलः एव स्यात्।

शब्दार्थ— **हे देव!** = हे भगवन्!। **अस्मिन् एव गते** = इस दुर्योधन के मारे जाने पर। **मही-भार-अपनयनं कर्तुं** = भूमि के भार को दूर करने के लिए। **भूतले जातस्य** = पृथ्वी पर जन्म लेने का। **श्रमः** = आपका परिश्रम। **ननु विफलः एव स्यात्** = निश्चय से असफल हो जाएगा।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
सुदर्शन चक्र भगवान् नारायण को उनके प्रमुख कार्य को स्मरण कराता हुआ कहता है—

सरलार्थ— हे भगवन्! इस दुर्योधन के मारे जाने पर, भूमि के भार को दूर करने के लिए आपका पृथ्वी पर जन्म लेने का परिश्रम, निश्चय से असफल हो जाएगा।

भावार्थ— सुदर्शन चक्र कहता है कि भगवान् का कार्य दुर्योधन का विनाश नहीं, बल्कि पृथ्वी पर से अधर्म को दूर करना है, जैसाकि गीता में कहा है—'अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।' मैं धर्म की उन्नति और अधर्म के विनाश के लिए पृथ्वी पर आता हूँ।

विशेष— (1) यहाँ पर सुदर्शन चक्र भगवान के कर्त्तव्य का स्मरण कराता है कि उन्हें को भू पर अधर्म का लोप करना है।
(2) यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार है।
(3) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❑

◆ ***वासुदेवः—सुदर्शन! रोषात् समुदाचारो नावेक्षितः। गम्यतां स्वनिलयमेव।***
सुदर्शनः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। कथं कथं गोपालक इति। त्रिचरणातिक्रान्तत्रिलोको नारायणः खल्वत्रभवान्। शरणं व्रजन्तु भवन्तः। यावद् गच्छामि। अये एतद् भगवदायुधवरं शार्ङ्गं प्राप्तम्।

शब्दार्थ— **सुदर्शन! रोषात् समुदाचारो न अवेक्षितः** = हे सुदर्शन! क्रोध के कारण उचित व्यवहार, मर्यादा का ध्यान नहीं रहा। **गम्यतां** = जाओ। **स्व-निलयम्-एव** = अपने निवास-स्थान को। **यद् आज्ञापयति भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण की जैसी आज्ञा हो। **कथं कथं गोपालक इति** = कैसे? कैसे (आपको) ग्वाला कहता है। **त्रि-चरण-अतिक्रान्त-त्रिलोकी** = तीन कदमों से तीन लोक को व्याप्त करने वाले। **भगवान् नारायणः** = आप भगवान् नारायण हैं। **शरणं व्रजन्तु भवन्तः** = आप इनकी शरण में जावें। **यावद् गच्छामि** = मैं तो जाता हूँ। **अये एतत् भगवद्-आयुधवरं शार्ङ्गं प्राप्तम्** = अरे, यह तो भगवान् श्रेष्ठ शस्त्र धनुष शार्ङ्ग आ गया है।

सरलार्थ— **वासुदेव**—सुदर्शन! क्रोध के कारण उचित व्यवहार का ध्यान नहीं रहा था। अपने निवास स्थान को चले जाओ।
सुदर्शन—भगवान् नारायण की जैसी आज्ञा हो? कैसे? कैसे (आपको दुर्योधन) ग्वाला रहता है। आप भगवान् नारायण तो तीन कदमों में ही तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले हैं। आप सभी इनकी शरण में जावें। अरे, यह तो भगवान् का श्रेष्ठ शस्त्र शार्ङ्ग धनुष आ गया है।

❑

◆ ***तनुमृदुललिताङ्गं स्त्रीस्वभावोपपन्नं***
हरिकरधृतमध्यं शत्रुसङ्घैककालः।
कनकखचितपृष्ठं भाति कृष्णस्य पार्श्वे।
नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लतेव।। 47।।

अन्वय— तनुमृदुललिताङ्गं स्त्रीस्वभावोपपन्नम्, हरिकरधृतमध्यम् शत्रुसङ्घैककालः कनकखचितपृष्ठम् कृष्णस्य पार्श्वे नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लता इव भाति।

शब्दार्थ— **तनु-मृदु-ललित-अङ्गम्** = दुबले, कोमल व मनोहर शरीर वाला। **स्त्री-स्वभाव-उपपन्नम्** = स्त्री के समान स्वभाव वाला। **हरि-कर-धृत-मध्यम्** = विष्णु भगवान् के द्वारा मध्य भाग से पकड़े जाने वाला। **शत्रु-संघ-एककालः** = शत्रुओं के लिए मानो एकमात्र मृत्यु रूप। **कनक-खचित-पृष्ठम्** = सोने से जड़े हुए पृष्ठ भाग वाला। **कृष्णस्य पार्श्वे** = श्रीकृष्ण के समीप में। **नवसलिलद-पार्श्वे** = नये बादलों के समीप। **चारु-विद्युत्-लता इव** = सुंदर बिजली के समान। **भाति** = शोभा प्रदान करता है।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण के क्रोधित होते ही सुदर्शन चक्र के पीछे-पीछे शार्ङ्ग धनुष भी आ गया। उसके विषय में सुदर्शन कहता है—

सरलार्थ— (यह शार्ङ्ग धनुष) दुबले, कोमल और मनोहर शरीर वाला, स्त्री के समान स्वभाव वाला, विष्णु भगवान् के द्वारा मध्य भाग से पकड़े जाने वाला, शत्रुओं के लिए मानों एकमात्र शत्रु रूप, सोने से जड़े हुए पृष्ठ भाग वाला है। यह धनुष श्रीकृष्ण के पास उसी प्रकार शोभायमान है जैसे नये बादलों के समीप सुंदर बिजली सुशोभित होती है।

भावार्थ— श्रीकृष्ण का शार्ङ्ग धनुष स्वर्णमय चमक रखता है जो कृष्ण वर्ण के श्रीकृष्ण के पास उसी प्रकार शोभायमान होता है जैसे श्याम वर्ण के बादलों में बिजली चमकती है। यह धनुष नारी के समान दुबला (पतला) भी है, कोमल भी है और मनोहर भी है। शत्रु मारे जाते हैं, मानों उनके लिए मृत्यु है। इस प्रकार इस धनुष की विशेषताएँ हैं।

विशेष– (1) यहाँ पर शार्ङ्ग धनुष की विशेषताओं को प्रदर्शित किया गया है।
(2) 'स्त्री स्वभावोपन्नं' तथा नवसलिलदपार्श्वे चारुविघुल्लतेव' में उपमा अलंकार है।
(3) 'शत्रुसंघैककालः' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❐

◆ *भोः भोः! शार्ङ्ग, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः। गम्यतां स्वनिलयमेव। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि। अये इयं कौमोदकी प्राप्ता।*

शब्दार्थ– **भोः भोः! शार्ङ्ग, प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः** = हे शार्ङ्ग धनुष! भगवान् नारायण का क्रोध शांत हो गया है। **गम्यतां स्व-निलयं एव** = अपने निवास-स्थान पर चले जाओ। **हन्त निवृतः** = ठीक है, चला गया है। **यावद् गच्छामि** = तो मैं भी चलता हूँ। **अये इयं कौमोदिकी प्राप्ता** = अरे, यह तो कौमोदिकी गदा भी आ पहुँची है।

सरलार्थ– (सुदर्शन चक्र कहता है–) हे शार्ङ्ग धनुष! भगवान् नारायण का क्रोध शांत हो गया है। तुम अपने निवास स्थान पर चले जाओ। ठीक है, चला गया है। तो मैं भी चलता हूँ। अरे, यह तो कौमोदिकी गदा भी आ पहुँची है।

❐

◆ *मणिकनकविचित्रा चित्रमालोत्तरीया*
सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा।
गिरिवरतटरूपा दुर्निवारातिवीर्या
व्रजति नभसि शीघ्रं मेघवृन्दानुयात्रा।। 48।।

अन्वय– मणिकनकविचित्रा, चित्रमालोत्तरीया, सुररिपुगणगात्रध्वंसने जाततृष्णा, गिरिवरतटरूपा, दुर्निवारातिवीर्या, मेघवृन्दानुयात्रा शीघ्रं नभसि व्रजति।

शब्दार्थ– **मणि-कनक-विचित्रा** = मणियों और सोने से रंग-बिरंगी। **चित्र-माला-उत्तरीयः** = सुंदर मालाओं से लिपटी हुई। **सुर-रिपु-गण-गात्र-ध्वंसने** = देव-शत्रुओं (असुरों) के शरीरों का विनाश करने में। **जात-तृष्णा** = मानों प्यासी रहने वाली। **गिरिवर-तट-रूपा** = विशाल पर्वत के तट के समान। **दुर्निवार-अतिवीर्या** = बेजोड़ पराक्रम वाली। **मेघ-वृन्द-अनुयात्रा** = बादलों के द्वारा अनुगमन की जाती हुई। **शीघ्रम नभसि व्रजति** = शीघ्र ही आकाश से आ रही है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण के क्रोध करते ही शार्ङ्ग धनुष के पीछे-पीछे गदा आ रही है। जिसके विषय में सुदर्शन चक्र कहता है–

सरलार्थ– (यह कौमोदिकी गदा) मणियों और सोने से रंग-बिरंगी, सुंदर मालाओं से लिपटी हुई। देव शत्रुओं (असुरों) के शरीरों का विनाश करने में मानों प्यासी रहने वाली, विशाल पर्वत के तट के सामन व रोके जाने वाले पराक्रम वाली, बादलों के द्वारा अनुगमन की जाती हुई, शीघ्र ही आकाश से चली आ रही है।

भावार्थ– सुदर्शन चक्र देखता है कि शार्ङ्ग धनुष के पीछे-पीछे गदा चली आ रही है जिसमें सोना व मणियाँ जड़ी हुई हैं अतः रंग-बिरंगी है। मालाओं से लिपटी हुई है। असुरों का सदा विनाश करने वाली है। पर्वत तट के समान विशाल है। इसके पराक्रम को रोका नहीं जा सकता है।

विशेष– (1) कौमोदिकी नामक दिव्य गदा की विशेषताओं को प्रदर्शित किया गया है।
(2) द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) 'गिरिवत्तटरूपा' में उपमा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में मालिनी छंद है।

❐

◆ ***हे कौमोदकि! प्रशान्तरोषो भगवान् नारायणः। गम्यताम्। हन्त निवृत्ता। यावद् गच्छामि। अये अयं पाञ्चजन्यः प्राप्तः।***

शब्दार्थ— **हे कौमोदकि! प्रशान्तरोषो** = हे कौमोदकी गदा! क्रोध शांत हो गया। **भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण का। **गम्यताम्** = जाओ। **हन्त, निवृत्ता** = ठीक है, चली गयी है, लौट गयी है। **यावद् गच्छामि** = तो मैं भी चलता हूँ। **अये** = अरे। **पाञ्चजन्यः प्राप्तः** = पाञ्चजन्य शंख आ गया है।

सरलार्थ— (सुदर्शन चक्र कहता है—) हे कौमोदिकी गदा! भगवान् नारायण का क्रोध शांत हो चुका है। आप जाओ। ठीक है, चली गयी है। तो मैं भी चलता हूँ। अरे, यह पाञ्चजन्य शंख आ गया है।

❐

◆ ***पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरो***
नारायणाननसरोजकृतप्रसादः।
यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषतुल्यं
गर्भा निशम्य निपतन्त्यसुराङ्गनानाम्।। 49।।

अन्वय— पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरः, नारायणाननसरोजकृतप्रसादः, यस्य प्रलयसागरघोषतुल्यं स्वनं निशम्य असुराङ्गनानां गर्भाः निपतन्ति।

शब्दार्थ— **पूर्ण-इन्दु-कुन्द-कुमुद-उदर-हार-गौरः** = पूर्ण चन्द्रमा, कुन्द के फूल व सफेद कमल जिसके मध्य में है ऐसे हार के समान गौर वर्ण वाला। **नारायण-आनन-सरोज-कृत-प्रसादः** = भगवान् नारायण के मुख-कमल (से बजाने के कारण) कृपा से युक्त। **यस्य** = जिसकी। **प्रलय-सागर-घोष-तुल्यम्** = प्रलयकालीन समुद्र की आवाज के समान। **स्वनम्** = भयंकर ध्वनि को। **निशम्य** = सुनकर। **असुर-अङ्गनानाम्** = असुरों की स्त्रियों के। **गर्भाः पतन्ति** = गर्भ गिर जाते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण के क्रोध करने पर पाञ्चजन्य शंख भी आ जाता है जिसके विषय में सुदर्शन चक्र कहता है—

सरलार्थ— (यह पाञ्चजन्य शंख) पूर्ण चन्द्रमा, कुन्द के फूल व सफेद कमल जिसके मध्य में हैं ऐसे हार के समान गौर वर्ण वाला तथा भगवान् नारायण के मुख-कमल (से बजाने के कारण) कृपा से युक्त है। जिस शंख की प्रलयकालीन समुद्र की आवाज के समान भयंकर ध्वनि को सुनकर असुरों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं।

भावार्थ— पाञ्चजन्य का रंग गौरा है जैसे चन्द्रमा, कुन्द का पुष्प व सफेद कमल की माला उस पर लिपटी हो। भगवान् नारायण उसे अपने मुख से बजाते हैं तथा उसकी इतनी भयंकर ध्वनि होती है कि मानों प्रलयकालीन समुद्र गर्जना कर रहा हो।

विशेष— (1) यहाँ पर पाञ्चजन्य नामक भगवान के शंख का स्वाभाविक वर्णन है जो सुंदर भी है और दिव्य ध्वनि वाला है।
(2) प्रथम व तृतीय पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) 'आनन-सरोज' में रूपक अलंकार है।
(4) इस श्लोक में वसन्ततिलका नामक छंद है।

❐

◆ ***हे पाञ्चजन्य! प्रशान्तरोषो भगवान्। गम्यताम्। हन्त निवृत्तः। अये नन्दकासिः प्राप्तः।***

शब्दार्थ— **हे पाञ्चजन्य!** = हे पाञ्चजन्य शंख! **प्रशांत रोषः भगवान्** = भगवान् का क्रोध शांत हो चुका है। **गम्यताम्** = लौट जाओ। **हन्त, निवृत्तः** = ठीक है, चला गया है। **गच्छामि** = मैं भी चलता हूँ। **अये, नन्दक-असिः प्राप्तः** = अरे, यह तो नंदक तलवार आ गयी है।

सरलार्थ— (सुदर्शन चक्र कहता है—)हे पाञ्चजन्य! भगवान् का क्रोध शांत हो चुका है। आप लौट जाओ। ठीक है, चला गया है। तो मैं भी चलता हूँ। अरे यह तो नंदक तलवार आ गयी है।

❐

◆ *वनिताविग्रहो युद्धे महासुरभयङ्करः ।*
प्रयाति गगने शीघ्रं महोल्केव विभात्ययम् ।। 50 ।।

शब्दार्थ— **वनिता-विग्रह** = नारी के समान (पतले) शरीर वाली। **युद्धे** = युद्ध में। **महासुर-भयङ्करः** = विशाल राक्षसों को भयभीत करने वाली। **अयम्** = यह। **गगने शीघ्रं प्रयाति** = आकाश से शीघ्र आ रही है। **च** = और। **महा-उल्का इव विभति** = महा उल्का के समान सुशोभित है।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
भगवान् श्रीकृष्ण के क्रोध करते ही नंदक नामक तलवार भी आ गई। सुदर्शन चक्र उस तलवार के विषय में कहता है—

सरलार्थ— (यह नंदक तलवार) नारी के समान (पतले) शरीर वाली, युद्ध में विशाल राक्षसों को भी भयभीत करने वाली आकाश से शीघ्र चली आ रही है, जो महा उल्का के समान सुशोभित है।

भावार्थ— नंदक तलवार पतली है परंतु इतनी पैनी कि युद्ध में उससे भयंकर राक्षस भी डरते हैं। जैसे आकाश में उल्का चमकती है उसी प्रकार वह आकाश में चमकती हुई दिखाई दे रही है।

विशेष— (1) यहाँ पर श्रीकृष्ण की तलवार का मनोरम चित्रण किया गया है।
(2) अंतिम पंक्ति में उपमा अलंकार है।
(3) 'वनिताविग्रहे' में उपमा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ *हे नन्दक! प्रशान्तरोषो भगवान्। गम्यताम्। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि। अये एतानि भगवदायुधवराणि।*

शब्दार्थ— **हे नन्दक! प्रशान्तरोषो भगवान्** = हे नंदक तलवार! अब भगवान् नारायण का क्रोध शांत हो गया है। **गम्यताम्** = तुम चली जाओ। **हन्त, निवृत्तः** = अच्छा है चली गयी। **यावद् गच्छामि** = तब तो मैं भी जाता हूँ। **अये एतानि भगवद् आयुधवराणि** = अरे, ये भगवान् के श्रेष्ठ शस्त्र हैं।

सरलार्थ— (सुदर्शन चक्र कहता है—) हे नंदक! (तलवार) अब भगवान् नारायण का क्रोध शांत हो चुका है। आप चली जाओ। अच्छा है, चली गयी। तब तो मैं भी जाता हूँ। अरे, भगवान् के श्रेष्ठ शस्त्र आ रहे हैं।

◆ *सोऽयं खड्गः खरांशोरपहसिततनुः स्वैः करैर्नन्दकाख्यः*
सेयं कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरः स्थलक्षोददक्षा।
सैषा शार्ङ्गाभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापरेखा
सोऽयं गम्भीरघोषः शशिकरविशदः शङ्खराट् पाञ्चजन्यः ।। 51 ।।

अन्वय— अयं स नन्दकाख्यः खड्गः स्वैः करैः खरांशोः अपहसिततनुः। इयम् सा कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरः स्थलक्षोददक्षा सा एषा शार्ङ्गाभिधाना चापयष्टिः प्रलय-घन-रवज्यारवा सः अयम् शंखराट् पाञ्चजन्यः गंभीरघोषः शशिकरविशदः अस्ति।

शब्दार्थ— **अयं स नंदक-आख्यः खड्गः** = यह नंदक नामक तलवार है। **स्वैः करैः** = जो अपनी कांति से। **खरांशोः** = तीव्र सूर्य के। **उपहसिततनुः** = शरीर की हंसी उड़ाने वाली है। **इयम् सा कौमोदकी** = यह वही कौमोदकी गदा है। **या** = जो। **सुर-रिपु-कठिन-उरः स्थल-क्षोद-दक्षा** = देवों के शत्रु राक्षसों के कठोर वक्षस्थलों को नष्ट करने में चतुर है। **सा एषा शार्ङ्ग-अभिधाना चापयष्टिः** = यह शार्ङ्ग नामक धनुष है। **प्रलय-घन-रव-ज्या-रवा** = जो प्रलयकालीन बादलों की गर्जन के समान डोरी की टंकार वाला है। **सः अयम् शंखराट् पाञ्चजन्यः** = यह शंखराज पाञ्चजन्य है। **गंभीरघोषः** = आवाज गंभीर है। **शशिकरविशदः अस्ति** = चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद है।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
सुदर्शन चक्र भगवान् के सभी दिव्य शस्त्रों के विषय में कहता है—

सरलार्थ— यह **नंदक** नामक तलवार है जो अपनी कांति (चमक) से तीव्र सूर्य के शरीर की भी हँसी उड़ाने वाली है। यह वही **कौमोदिकी** गदा है जो देवों के शत्रु राक्षसों के कठोर वक्षस्थल को नष्ट करने में चतुर है। यह **शार्ङ्ग** नामक धनुष है जो प्रलयकालीन बादलों की गर्जना के समान डोरी की टंकार वाला है। यह **शंखराज पाञ्चजन्य** है जो गंभीर आवाज वाला है तथा चंद्रमा की किरणों के समान सफेद है।

भावार्थ— भगवान् के पाँच दिव्य शस्त्र हैं—सुदर्शन चक्र, नंदक तलवार, कौमोदिकी गदा, शार्ङ्ग धनुष तथा पाञ्चजन्य शंख। सुदर्शन चक्र का कथन है कि नंदक तलवार की चमक सूर्य से भी तेज है। कौमोदिकी गदा असुरों को मारने वाली है। शार्ङ्ग धनुष की टंकार प्रलयकाल के बादलों के समान है तथा पाञ्चजन्य शंख सफेद भी है और गंभीर ध्वनि वाला है।

विशेष— (1) प्रस्तुत श्लोक में भगवान के चार दिव्य अस्त्रों का वर्णन है।
(2) प्रथम पंक्ति में व्यतिरेक अलंकार है।
(3) 'प्रलयधनरवज्यारवा' तथा 'शशिकरविशदः' में उपमा अलंकार है।
(4) इस श्लोक में स्रग्धरा छंद है।

◆ ***हे शार्ङ्ग! कौमोदकि! पाञ्चजन्य!***
दैत्यान्तकृन्नन्दक! शत्रुवह्ने!
प्रशान्तरोषो भगवान् मुरारिः
स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत्।। 52।।

अन्वय— शत्रुवह्ने! हे शार्ङ्ग! कौमोदकि! पाञ्चजन्य। दैत्यान्तकृत नन्दक! अत्र भगवान् मुरारिः प्रशान्तरोषः तावत् स्वस्थानम् एव हि गच्छ।

शब्दार्थ— **हे शार्ङ्ग** = हे शार्ङ्ग नामक धनुष! **कौमोदकि** = हे कौमोदकी नामक गदा। **पाञ्चजन्यः** = हे पाञ्चजन्य नामक शंखराज। **दैत्य-अन्तकृत्** = दानवों का विनाश करने वाली। **शत्रु-वह्ने** = शत्रु के लिए अग्नि। **नंदकः** = नंदक तलवार। **अत्र भगवान् मुरारिः प्रशान्त-रोषः** = यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का क्रोध शांत हो गया है। **तावत्** = तो। **स्वस्थानम् एव गच्छ** = अपने-अपने निवास स्थान पर ही जाओ।

प्रसंग— प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
भगवान् श्रीकृष्ण के क्रोध शांत होने पर सुदर्शन चक्र सभी दिव्य शस्त्रों से कहता है—

सरलार्थ— हे शार्ङ्ग नामक धनुष!, हे कौमोदकी नामक गदा, हे पाञ्चजन्य नामक शंखराज!, शत्रुओं के लिए अग्नि तथा दानवों का विनाश करने वाली हे नंदक नामक तलवार! अब यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का क्रोध शांत हो चुका है। अतः आप सभी अपने-अपने निवास-स्थान पर चले जाओ।

भावार्थ— सुदर्शन चक्र भगवान् के चारों दिव्य शस्त्रों—शार्ङ्ग धनुष, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख तथा नंदक तलवार को समझाता है कि अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण अब शांत हो चुके हैं।

विशेष— (1) यहाँ पर सुदर्शन चक्र श्रीकृष्ण के अन्य दिव्य अस्त्रों को वापिस भेज देता है।
(2) यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार है।
(3) भाषा सरल होने के कारण प्रसाद गुण है।
(4) इस श्लोक में उपजाति छंद है।

◆ ***हन्त निवृत्ताः। यावद् गच्छामि। अये, अत्युद्धूतो वायुः। अतितपत्यादित्यः। चलिताः पर्वताः। क्षुब्धाः सागराः। पतिताः वृक्षाः। भ्रान्ता मेघाः। प्रलीनाः वासुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वराः। किमु खल्विदम्। अये अयं भगवतो वाहनो गरुडः प्राप्तः।***

शब्दार्थ— **हन्त निवृत्ताः** = ठीक है, सभी शस्त्र चले गये हैं। **यावद् गच्छामि** = तो मैं भी जाता हूँ। **ये अति-उद्धूतः वायुः** = ये वायु तीव्र गति से चल पड़े हैं। **अति-तपति-आदित्यः** = सूर्यदेव बहुत अधिक गर्म हो रहे हैं। **चलिताः पर्वताः** = पर्वत डोलने

लगे हैं। **क्षुब्धाः सागराः** = समुद्र आंदोलित हो रहे हैं। **पतिताः वृक्षाः** = वृक्ष गिर रहे हैं। **भ्रांता मेघाः** = बादल उड़ रहे हैं। **प्रलीनाः वासुकिप्रभृतयः भुजङ्गेश्वराः** = वासुकी आदि सर्पराज छिपने लगे हैं। **किम् नु खलु इदम्** = यह क्या हो रहा है?। **अये अयं भगवतः वाहनः गरुडः प्राप्तः** = अरे, यह तो भगवान् विष्णु की सवारी गरुड़ आ गया है।

सरलार्थ– (सुदर्शन चक्र कहता है–) ठीक है, सभी शस्त्र चले गये हैं। तो मैं भी जाता हूँ। ये वायु तीव्र गति से चल पड़े हैं। सूर्यदेव बहुत अधिक गर्म हो रहे हैं। पर्वत डोलने लगे हैं। समुद्र आंदोलित हो रहे हैं। वृक्ष गिर रहे हैं। बादल उड़ रहे हैं। वासुकी आदि सर्पराज छिपने लगे हैं। यह क्या हो रहा है? अरे, यह तो भगवान् विष्णु की सवारी गरुड़ आ गया है (इसी कारण यह सभी कुछ हो रहा है।)।

◆ *सुरासुराणां परिखेदलब्धं*
येनामृतं मातृविमोक्षणार्थम्।
आच्छिन्नमासीद् द्विषतो मुरारे–
स्त्वामुद्वहामीति वरोऽपि दत्तः।। 53।। (म.द.वि. 2003)

अन्वय– येन मातृविमोक्षणार्थम् सुरासुराणाम् परिखेदलब्धम् अमृतम् द्विषतः आच्छिन्नम् आसीत्। त्वाम् उद्वहामि इति मुरारेः वरः अपि दत्तः।

शब्दार्थ– येन = जिसने। **मातृ-विमोक्षण-अर्थं** = माता को (दासता से) छुड़ाने के लिए। **सुर-असुराणां** = देवों और असुरों के द्वारा। **परिखेद-लब्धम्** = कठिनता से प्राप्त होने वाले। **अमृतम्** = अमृत को। **द्विषतः** = शत्रुओं से। **आ-छिन्नम् आसीत्** = छीन लिया था। **त्वां उद्वहामि** = तुम्हें ले जाया करूँगा। **इति** = इस प्रकार। **मुरारेः वरः अपि दत्तः** = विष्णु को वरदान भी दिया था।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
सुदर्शन चक्र भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ का परिचय देते हुए कहता है–

सरलार्थ– जिस गरुड़ ने अपनी माता (विनता) को दासता से छुड़ाने के लिए, देवों और दानवों के द्वारा कठिनता से प्राप्त होने वाले अमृत को शत्रुओं से छीन लिया था तथा मैं तुम्हें ले जाया करूँगा–इस प्रकार विष्णु को वरदान भी दिया था।

भावार्थ– महाभारत के अनुसार गरुड़ अपनी माता विनता को दासता से मुक्त कराने के लिए स्वर्ग में अमृत लेने गये थे। इसी कथा का यहाँ पर संकेत है। गरुड़ ने अमृत को राक्षसों से छीना था तथा भगवान् विष्णु का वाहन बनने की प्रतिज्ञा की थी।

विशेष– (1) भगवान् विष्णु के वाहन गरूड़ का यहाँ पर चित्रण किया गया है।
(2) गरुड़ की माता विनता थी जिसका गरुड़ ने उद्धार किया था।
(3) 'सुरासुराणाम्' में अनुप्रास अलंकार है।
(4) इस श्लोक में उपजाति छंद है।

◆ *हे काश्यपप्रियसुत! गरुड! प्रशान्तरोषो भगवान् देवदेवेशः। गम्यतां स्वनिलयमेव। हन्त निवृत्तः। यावद् गच्छामि।*

शब्दार्थ– **हे काश्यप-प्रिय सुत! = हे काश्यप ऋषि के पुत्र गरुड। प्रशान्तरोषः देवदेवेश!** = देवों के देव भगवान् कृष्ण अब शांत क्रोध वाले हो गये हैं। **गम्यताम् स्व-निलयम् एव** = अपने घर ही जाइए। **हन्त निवृत्तः** = ठीक है चले गये हैं। **यावद् गच्छामि** = तब तो मैं भी चलता हूँ।

सरलार्थ– (सुदर्शन चक्र कहता है–) हे काश्यप ऋषि के पुत्र गरुड़! भगवान् श्रीकृष्ण शांत क्रोध वाले हो गये हैं। आप अपने घर जाइए। ठीक हैं, चले गये हैं। तो मैं भी चलता हूँ।

◆ *एते स्थिता वियति किन्नरयक्षसिद्धाः।*
देवाश्च संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः।
रुष्टेऽच्युते विगतकान्तिगुणाः प्रशान्तं
श्रुत्वा श्रयन्ति सदनानि निवृत्ततापाः।। 54।।

अन्वय– अच्युते रुष्टे वियति एते किन्नरयक्षसिद्धाः च संभ्रमचलन्मुकुटोत्तमाङ्गाः, विगत-कान्ति-गुणाः देवाः स्थिताः प्रशान्तं श्रुत्वा निवृत्ततापाः सदनानि श्रयन्ति।

शब्दार्थ– **अच्युते रुष्टे** = श्रीकृष्ण भगवान् के क्रोध करने पर। **वियति** = आकाश में। **एते** = ये। **किन्नर-यक्ष-सिद्धाः** = किन्नरों, यक्षों और सिद्धों के समूह। **संभ्रम-चलत्-मुकुट-उत्तम-अङ्गाः** = घबराहट के कारण हिलते हुए मुकुट से युक्त शीश वाले। **विगत्त-कान्तिगुणाः** = मलिन कांति वाले। **देवाः स्थिताः** = देवता आ गये हैं। **प्रशान्तं श्रुत्वा** = भगवान् को शांत हुआ जानकर। **निवृत्त-तापाः** = खेद रहित होकर। **सदनानि श्रयन्ति** = अपने निवास-स्थानों पर जा रहे हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
भगवान् श्रीकृष्ण के क्रोध करने पर विविध देवों के विषय में सुदर्शन चक्र कहता है–

सरलार्थ– भगवान् श्रीकृष्ण के क्रोध करने पर आकाश में ये किन्नरों, यक्षों और सिद्धों के समूह घबराहट के कारण हिलते हुए मुकुट युक्त शीश वाले, मलिन कांति वाले, देवगण भी आ गये थे, परंतु भगवान् को शांत हुआ–जानकर खेद रहित होकर अपने-अपने निवास स्थान पर जा रहे हैं।

भावार्थ– सुदर्शन चक्र कहता है कि भगवान के क्रोध का प्रभाव किन्नरों, यक्षों, सिद्धों तथा देवों पर भी है। वे सभी घबराकर वहाँ आ गये थे, परन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान् का क्रोध शांत हो गया है, तो वे अपने-अपने घर जा रहे हैं।

विशेष– (1) इस श्लोक से ज्ञात होता है कि देवगण व उपदेवता तथा उनके सेवक भगवान् के प्रति समर्पित रहते हैं।
(2) किन्नर, यक्ष, सिद्ध व देव–ये मानवेतर दिव्य जातियाँ हैं।
(3) इस श्लोक में वसन्ततिलका छंद है।

❐

◆ *यावदहमपि कान्तां मेरुगुहामेव यास्यामि। (निष्क्रान्तः।)*
वासुदेवः–यावदहमपि पाण्डवशिविरमेव यास्यामि।
(नेपथ्ये)
न खलु न खलु गन्तव्यम्।
वासुदेवः–अये वृद्धराजस्वर इव। भो राजन्। एष स्थितोऽस्मि।
(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रः)
धृतराष्ट्रः–क्व नु खलु भगवान् नारायणः। क्व नु खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः। क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः।

शब्दार्थ– **यावद् अहं अपि** = तब तो मैं भी। **कान्तां मेरुगुहम् एव** = मनोरम सुमेरु पर्वत की गुफा में। **यास्यामि** = चला जाता हूँ। **निष्कान्तः** = चला जाता है। **वासुदेवः** = श्रीकृष्ण। **यावद् अहम् अपि पाण्डवशिविरं एवं यास्यामि** = तब तो मैं भी पांडवों के शिविर की ओर चलता हूँ। **नेपथ्ये** = पर्दे के पीछे से। **न खलु, न खलु गन्तव्यम्** = नहीं, नहीं चले जावें। **अये वृद्धराज-स्वर इव** = अरे, यह तो बूढ़े राजा (धृतराष्ट्र) जैसी आवाज है। **ततः प्रविशति धृतराष्ट्रः** = तब धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं। **क्व नु खलु भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण कहाँ पर हैं। **क्व नु खलु भगवान् पाण्डवश्रेयस्करः** = पांडवों के कल्याणकारी भगवान् कहाँ पर हैं?। **क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः** = देवकी के पुत्र भगवान् कहाँ पर है?।

सरलार्थ– (सुदर्शन चक्र कहता है–) तब तो मैं भी मनोरम सुमेरु पर्वत की गुफा में चला जाता हूँ (सुदर्शन चक्र चला जाता है।)।
वासुदेवः–तब तो मैं भी पांडवों के सैन्य शिविर की ओर चलता हूँ।
(पर्दे के पीछे से आवाज आती है।)

नहीं, नहीं चले जावें।

वासुदेवः–अरे, यह तो वृद्ध राजा (धृतराष्ट्र) जैसी आवाज है।

(तब धृतराष्ट्र प्रवेश करते हैं।)

धृतराष्ट्रः–भगवान् नारायण कहाँ पर है? पाण्डवों के कल्याणकारी भगवान् कहाँ पर हैं? देवकी के पुत्र भगवान् कहाँ पर हैं?

◆ ***मम पुत्रापराधात् तु शार्ङ्गपाणे! तवाधुना।***
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष! पादयोः पतितं शिरः।। 55।।

अन्वय– हे शार्ङ्गपाणे त्रिदशाध्यक्ष! अधुना मम पुत्रापराधात् तु तव पादयोः एतत् मे शिरः पतितम्।

शब्दार्थ– **हे शार्ङ्गपाणि!** = हे शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले। **त्रिदश-अध्यक्ष!** = हे देवों के देव!। **अधुना मम पुत्र-अपराधात्** = अब मेरे पुत्र के अपराध के कारण। **तव पादयोः** = तुम्हारे चरणों में। **एतत् मे शिरः पतितम्** = यह मेरा सिर झुक गया है।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से जाने लगते हैं तो धृतराष्ट्र क्षमा याचना करता हुआ कहता है–

सरलार्थ– हे शार्ङ्ग धनुष को धारण करने वाले! हे देवों के देव! (श्रीकृष्ण) मेरे पुत्र (दुर्योधन) के अपराध के कारण तुम्हारे चरणों में मेरा यह सिर झुक गया है।

भावार्थ– धृतराष्ट्र जानते थे कि श्रीकृष्ण को नाराज करना उचित नहीं है। अतः दुर्योधन के अपराध के लिए धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के प्रति नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं।

विशेष– (1) यहाँ पर धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन के प्रति स्नेह अभिव्यक्त होता है।
(2) धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण की शक्ति को पहचानते हैं।
(3) भाषा सरल होने से प्रसाद गुण है।
(4) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

◆ ***वासुदेवः–हा धिक् पतितोऽत्रभवान्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।***
धृतराष्ट्रः–अनुगृहीतोऽस्मि। भगवन्! इदमर्घ्यं पाद्यं च प्रतिगृह्यताम्।
वासुदेवः–सर्वं गृह्णामि। किं ते भूयः प्रियमुपहरामि।
धृतराष्ट्रः–यदि मे भगवन् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि।
वासुदेवः–गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।
धृतराष्ट्रः–यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। (निष्क्रान्तः।)

शब्दार्थ– **हा धिक् पतितः अत्र भवान्** = दुःख है कि आप मेरे चरणों में झुक गये हैं। **उत्तिष्ठ-उत्तिष्ठ** = उठिए, उठिए। **अनुगृहीतः अस्मि** = मुझ पर आपका अनुग्रह है। **भगवन् इदम् अर्घ्यं पाद्यं च** = भगवन् यह अर्घ्य तथा पैर धोने का जल है। **सर्वं गृह्णामि** = सभी प्रिय कार्य करूँ। **यदि मे भगवान् प्रसन्नः** = यदि भगवन् आप मुझ पर प्रसन्न हैं। **किं ते भूयः प्रियम् इच्छामि** = तो इसके अधिक और प्रिय क्या चाहूँगा। **गच्छतु भवान् पुनः दर्शनाय** = आप जावें, परन्तु पुनः दर्शन अवश्य दें। **यद् आज्ञापयति भगवान् नारायणः** = भगवान् नारायण जैसा आदेश देते हैं। **निष्क्रान्तः** = चला जाता है।

सरलार्थ– **वासुदेव**–दुःख है कि आप मेरे चरणों में झुक गये हैं। उठिए, उठिए।
धृतराष्ट्र–मुझ पर आपका अनुग्रह है। भगवन्! यह अर्घ्य तथा यह पैर धोने का जल है।
वासुदेव–सभी स्वीकार करता हूँ। और फिर मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूँ?
धृतराष्ट्र–यदि भगवन् आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे अधिक और प्रिय क्या चाहूँगा?
वासुदेव–आप जावें, परंतु फिर दर्शन अवश्य दें।
धृतराष्ट्र–भगवान् नारायण (आप) जैसा भी आदेश देते हैं। (स्वीकार्य है।)

(धृतराष्ट्र चला जाता है।)

◆ *(भरतवाक्यम्)*

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः।। 56।।

अन्वय– सागरपर्यन्तां, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् इमाम् एकातपत्राङ्कां महीं नः राजसिंहः प्रशास्तु।

शब्दार्थ– **सागरपर्यन्तां** = समुद्र तक फैली हुई। **हिमवत्-विन्ध्य-कुण्डलाम्** = हिमालय पर्वत व विंध्याचल रूपी कुण्डलों को पहने हुए। **इमाम्** = इस। **एक-आतपत्राङ्काम्** = एक छत्र वाली, एकाधिकार वाली। **महीम्** = पृथ्वी पर। **नः** = हमारे राजा। **राजसिंहः** = राजसिंह। **प्रशास्तु** = शासन करें।

प्रसंग– प्रस्तुत श्लोक संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
नाटक के अंत में कविवर भास शुभकामना के रूप में भरतवाक्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

सरलार्थ– समुद्र तक फैली हुई, हिमालय पर्वत तथा विंध्याचल रूपी कुंडलों को पहने हुए इस एकछत्र (एकाधिकार) वाली पृथ्वी पर हमारे राजा राजसिंह शासन करें।

विशेष– (1) यह श्लोक भरतवाक्य है। नाटक के अंत में 'भरतवाक्यम्' वह श्लोक होता है जिसमें राजा व प्रजा के प्रति शुभ कामना की जाती है।
(2) प्रस्तुत श्लोक में भास कवि ने अपने आश्रय दाता राजसिंह के प्रति यह कामना की है कि वे इस समस्त भूमंडल पर राज्य करें जो भूमंडल समुद्र पर्यन्त है तथा जिसके एक ओर हिमालय पर्वत है तथा दूसरी ओर विंध्य पर्वत है।
(3) 'हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्' में रूपक अलंकार है।
(4) इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है।

❒

◆ *निष्क्रांताः सर्वे*

।। दूतवाक्यं समाप्तम्।।

सरलार्थ– सभी चले जाते हैं।

'दूतवाक्यम्' समाप्त हुआ।

❒❒

सूक्तियों की व्याख्या
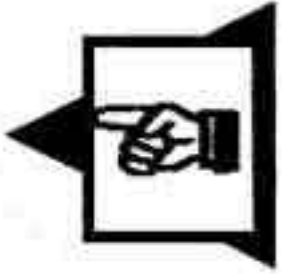
◆ *आः मनुष्याणामस्त्येव संभ्रमः। 1।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
जब काञ्चुकीय दुर्योधन को श्रीकृष्ण के दूत के रूप में आने का संदेश देता है तो वह श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहता है। दुर्योधन के क्रोध करने पर वह घबरा जाता है। तब दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– मनुष्यों में घबराहट हो जाया करती ही है।

भावार्थ– राजाओं के सामने सेवक प्रायः घबरा जाया करते हैं। वे नहीं समझ पाते कि अपने स्वामी के समक्ष किससे कैसे व्यवहार करें? श्रीकृष्ण को 'पुरुषोत्तम' कहने वाला काञ्चुकीय भी यह नहीं समझ पाया था कि दुर्योधन के सामने श्रीकृष्ण के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाए या नहीं? अतः वह घबरा जाता है। दुर्योधन उसकी घबराहट को स्वीकार कर उसे क्षमा कर देता है।

❐

◆ *को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु।। 2।।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
जब श्रीकृष्ण दुर्योधन के सभा भवन में प्रवेश करते हैं तो उसके सामने द्रौपदी के अपमान का चित्रपट देखकर श्रीकृष्ण कहते हैं–

सरलार्थ– संसार में कौन ऐसा है जो लज्जा रहित होकर अपने दोष को सभा में कहेगा?

भावार्थ– संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष को किसी के सामने नहीं कहता है क्योंकि इससे लज्जा आती है। सभा में अपने दोषों के कहने से तो और भी अधिक लज्जित होना पड़ता है। परंतु श्रीकृष्ण को उस समय आश्चर्य होता है जब दुर्योधन अपने ही परिवार की स्त्री द्रौपदी के अपमान को सभा भवन में बड़े गर्व के साथ कह रहा है। श्रीकृष्ण तो इसे लज्जा का विषय समझते हैं क्योंकि अपने ही दोष को सभा में कहने पर अपना ही अपमान होता है।

❐

◆ *राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते। 3।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** से उद्धृत है।
जब श्रीकृष्ण दुर्योधन से पांडवों को उनकी पैतृक-सम्पत्ति का आधा राज्य देने के लिए कहता है तो दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहता है–

सरलार्थ– विवेकी राजकुमारों के द्वारा शत्रुओं को जीतकर ही राज्य का उपभोग किया जाता है।

भावार्थ– राज्य का उपभोग वे ही वीर करते हैं जो शक्तिशाली होते हैं। जिनकी भुजाओं में बल है। शक्ति के आधार पर वे शत्रुओं को जीत लेते हैं और राज्य पर अधिकार करके राजा बनकर अपार सुखों को भोगते हैं। राज्य न तो मांगा जाता है, न किसी को दान में दिया जाता है। दुर्योधन भी श्रीकृष्ण से यही कहता है कि यदि पांडव राज्य चाहते हैं तो वे युद्ध करें। अपनी वीरता दिखाएँ और राज्य प्राप्त करके उसका उपभोग करें। जैसा कि कहा गया है–

वीरभोग्या वसुन्धरा

❐

◆ *अलं बन्धुजने परुषमभिधातुम्। 4।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन पांडवों को आधा राज्य नहीं देना चाहता, बल्कि उनका अपमान करता है। तब श्रीकृष्ण दुर्योधन से कहते हैं–

सरलार्थ– बन्धुजनों से कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिए।

भावार्थ– अपने भाइयों व अन्य बंधुजन सदा अपने ही रहते हैं। उनका संबंध कभी समाप्त नहीं होता है। उनका अपमान अपना ही अपमान होता है। उनके प्रति सदा नम्रता और अपनेपन का ही व्यवहार करना चाहिए। श्रीकृष्ण पांडवों का दूत बनकर दुर्योधन के पास जाता है और कहता है कि पांडव तुम्हारे भाई हैं, उनकी पैतृक-संपत्ति अर्थात् आधा राज्य उन्हें दे देना चाहिए। परंतु दुर्योधन स्वीकार नहीं करता। वह युद्ध के लिए उन्हें ललकारता है और उनका अपमान करता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि दुर्योधन को घमण्ड करके भाइयों से कठोरतापूर्वक व्यवहार नहीं करना चाहिए। ❒

◆ *वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः। 5।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति दुर्व्यवहार देखकर श्रीकृष्ण उससे कहते हैं–

सरलार्थ– जो अपने मित्रों व बंधुओं को धोखा देता है उसका परिश्रम निरर्थक होता है।

भावार्थ– अपने मित्रों और भाइयों के साथ सदा छल-कपट रहित व्यवहार करना चाहिए। उनके प्रति अपनापन व निस्वार्थ भाव रखकर बातें करनी चाहिए। उनको धोखा देना बहुत बड़ा अपराध है। इस अपराध को करके कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। श्रीकृष्ण भी दुर्योधन से यही कहते हैं कि पांडवों का राज्य पर आधा अधिकार है। यह उनकी पैतृक-संपत्ति है। यदि दुर्योधन उनके साथ धोखा करता है और उन्हें आधा राज्य नहीं देता है तो इससे वह भी सुखी नहीं रह सकेगा। दूसरी ओर, दुर्योधन यदि उन्हें युद्ध के लिए ललकारता है तो यह कौरवों का विनाश चाहता है अर्थात् अपने ही भाइयों के द्वारा अपने ही कुल का विनाश कराना चाहता है। श्रीकृष्ण की दृष्टि में इससे भी दुर्योधन को कोई लाभ नहीं होगा। ❒

◆ *अलमात्मस्तवेन। 6।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति सुप्रसिद्ध नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
जब श्रीकृष्ण कहते हैं कि कंस अपने ही अपराधों से स्वयं मारा गया था तब दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

भावार्थ– यदि कोई व्यक्ति अच्छा कार्य करता है तो वह तभी अच्छा है जब उसके कार्य की दूसरे प्रशंसा करें। स्वयं अपनी प्रशंसा करना किसी को भी शोभा नहीं देता है। श्रीकृष्ण कंस की हत्या के विषय में अपना अपराध नहीं मानते हैं बल्कि आत्म प्रशंसा करते हैं। दुर्योधन इस प्रकार की आत्म प्रशंसा को उचित नहीं मानते हैं क्योंकि कंस श्रीकृष्ण का मामा था फिर भी उसका श्रीकृष्ण ने वध किया था और श्रीकृष्ण कहते हैं कि कंस तो स्वयं अपने ही पापों के परिणामस्वरूप मारा गया है। श्रीकृष्ण इस प्रकार आत्म प्रशंसा करते हैं जो उचित नहीं है। ❒

◆ *देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयानुगामिनाम्। 7।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
जब दुर्योधन श्रीकृष्ण पर आक्षेप करता है तो श्रीकृष्ण कहते हैं–

सरलार्थ– नीति पर चलने वालों की वीरता तो देश, काल और परिस्थिति के अनुसार होती है।

भावार्थ– राजनीति के ज्ञाता अपनी वीरता को निरर्थक ही प्रस्तुत नहीं करते हैं। वे पहले देख लेते हैं कि किन परिस्थितियों में उन्हें अपनी वीरता का प्रदर्शन करना चाहिए। किस समय वीरता दिखानी चाहिए तथा किस स्थान पर वीरता उपयुक्त

है। श्रीकृष्ण भी एक नीति में विशारद वीर हैं। उन्होंने कंस का वध तो समय व परिस्थिति को देखकर किया था, परंतु कंस के दामाद जरासंध के सामने वीरता का प्रदर्शन करना उपयुक्त नहीं था इसी कारण वे जरासंध के आक्रमण को देखकर अपनी प्रजा मथुरा-निवासियों को लेकर द्वारका चले गये थे जिससे प्रजा सुरक्षित रह सकी। अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि नीति यही कहती है कि सदा समय, स्थान व परिस्थिति के अनुरूप वीरों को अपनी वीरता प्रदर्शित करनी चाहिए। ❐

◆ *कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः । 8 ।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
श्रीकृष्ण दुर्योधन से बार-बार यही कहते हैं कि उन्हें अपने भाइयों के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए। श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं–

सरलार्थ– भाइयों के साथ स्नेह करना चाहिए तथा उनके दोषों को भुला देना चाहिए।

भावार्थ– अपने बंधुओं के प्रति नम्रता, स्नेह व विनयशीलता का प्रदर्शन करना चाहिए तभी सच्चे अर्थों में स्नेह और ममत्व बना रहता है। अपने और पराए में यही अंतर है कि अपनों के साथ अच्छे संबंध बनाएं। श्रीकृष्ण भी दुर्योधन को यही समझाते हैं कि पांडव उनके भाई हैं, वंशज हैं। उनके प्रति स्नेह रखना ही कौरवों का परम कर्त्तव्य है। यदि उनके किसी प्रकार के अपराध हैं, कोई दोष हैं तो उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। तभी हस्तिनापुर के राजाओं का महत्त्व और शक्ति बनी रहेगी। यदि दुर्योधन भाई पांडवों के प्रति द्वेष रखता है तो इसके दुष्परिणाम हो सकते हैं जिन्हें इतिहास कभी नहीं भुला सकेगा। ❐

◆ *सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि । । 9 ।* (म.द.वि. 2005)

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
पांडवों का विरोध करने वाले दुर्योधन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–

सरलार्थ– भाइयों से अच्छा संबंध दोनों लोकों (इस लोक और परलोक) में कल्याण करने वाला होता है।

भावार्थ– जो व्यक्ति या राजा अपने बंधुओं या भाइयों के साथ अच्छा संबंध रखते हैं वे सदा अच्छे ही कहे जाते हैं। उन्हें इस लोक में भी सम्मान मिलता है तथा यह पुण्य कार्य होने के कारण उसका फल भी अच्छा ही होता है जो उनको परलोक में भी सुख देने वाला होता है। दूसरी ओर, जो अपने बंधुओं से अच्छा संबंध नहीं रखते वे सदा अपमानित होते हैं। श्रीकृष्ण दुर्योधन को यही समझा रहे हैं कि उन्हें पांडवों के साथ सद्व्यवहार करना चाहिए। उनकी पैतृक-संपत्ति के रूप में आधा राज्य उन्हें दे देना चाहिए। इससे पांडव ही उनकी प्रशंसा नहीं करेंगे, बल्कि यह बात न्याय संगत होने के कारण उनकी सभी जगह बड़ाई होगी और इस सुकर्म का पुण्य उन्हें परलोक में भी सुख प्रदान करने वाला होगा। ❐

◆ *देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत् । 10 ।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत नाटककार **'भास'** द्वारा रचित **'दूतवाक्यम्'** नाटक से उद्धृत है।
जब श्रीकृष्ण दुर्योधन से कहते हैं कि पांडव उसके भाई हैं। उनसे अच्छा व्यवहार करें। इस पर दुर्योधन कहता है–

सरलार्थ– मनुष्यों की देवताओं के पुत्रों के साथ बंधुता कैसे हो सकती है?

भावार्थ– सदा मित्रता अपने समान जातीय व बंधु वर्ग से होती है। छोटे और बड़ों में कभी मित्रता या संबंध नहीं होते हैं। धनिकों की धनिकों के साथ व मध्यम वर्ग की मध्यम वर्ग के साथ बंधुता या संबंध रहते हैं। दुर्योधन कहता है कि हम कौरव भूलोक के मानव की संतान हैं तथा पांडव देवों की संतान हैं। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन व नकुल-सहदेव क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र व अश्विनी कुमार आदि देवों की संतान हैं, अतः वे तो देवता हैं। हम मानवों के साथ देवताओं की कैसी बंधुता और कैसा संबंध रह सकता है? अतः हमारे और पांडवों के मध्य बंधुता नहीं हो सकती।

❖ ❖ ❖

शुकनासोपदेशः : प्रश्नोत्तर भाग

? बाणभट्ट की रचनाओं का परिचय देते हुए कादम्बरी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–जीवन-परिचय : संस्कृत के महान् कवियों और लेखकों में बाणभट्ट ही एक ऐसा व्यक्तित्व है जिन्होंने अपने जीवन के विषय में समुचित जानकारी दी है। वे सम्राट् हर्ष वर्धन के आश्रित थे। हर्ष वर्धन का समय सन् 606 से 648 तक का माना जाता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत-भ्रमण करते हुए हर्षवर्धन की पर्याप्त प्रशंसा की है। बाणभट्ट के पूर्वज कन्नौज राज्य में शोणनद के पश्चिमी तट पर प्रीतिकूट नामक नगर में रहते थे। बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु व माता राजदेवी थी। शैशव-अवस्था में ही माता की मृत्यु हो जाने से बाणभट्ट का पालन-पोषण पिता ने ही किया। दुर्भाग्यवश, बाणभट्ट जब चौदह वर्ष के ही थे कि पिता का भी स्वर्गवास हो गया। बाणभट्ट ने कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत किया। पुनः देश-देशान्तर भ्रमण करने चल दिये। धन की मात्रा पर्याप्त थी। अतः इधर-उधर घूमने से उन्हें अनेक प्रकार के मधुर व कटु अनुभव प्राप्त हुए। यहाँ-वहाँ अध्ययन करने से विविध-प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि भी उन्हें हो सकी। बाद में, वे राजा हर्ष के दरबार में राजकवि के रूप में जीवन व्यतीत करते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि 'हर्षचरितम्' नामक रचना की समाप्ति से पूर्व ही हर्षवर्धन की मृत्यु हो गयी और यह गद्यकाव्य अधूरा रह गया। 'कादम्बरी' नामक गद्य-रचना पूर्ण भी नहीं हुई थी कि बाणभट्ट जीवन के अन्तिम पड़ाव पर आ गये और इस गद्य रचना का शेष भाग उनके किसी पुत्र ने लिखा। बाणभट्ट के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है।

रचनाएँ : बाणभट्ट ने कितनी रचनाएँ लिखी हैं? इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वान् बाणभट्ट की पाँच रचनाएँ मानते हैं तो कुछ बाणभट्ट को तीन कृतियों का प्रणेता सिद्ध करते हैं। वस्तुतः बाणभट्ट की दो रचनाएँ ही अत्यन्त प्रामाणिक व लोकप्रिय हैं–

1. कादम्बरी 2. हर्षचरितम्। इन दोनों कृतियों के माध्यम से बाणभट्ट की कीर्ति-पताका चारों ओर फहरती रही है।

कादम्बरी

कादम्बरी गद्य काव्य का अपूर्व उपन्यास है, जिसकी रचना कवि बाणभट्ट ने नए रूप में प्रस्तुत की है। यह गद्य-साहित्य का अनोखा रत्न है। संस्कृत के गद्य-साहित्य की महनीयता प्रदान करने का श्रेय इसी कृति को प्राप्त है।

(क) कथानक : कादम्बरी का कथानक लौकिक होकर भी अलौकिकता लिए हुए है। प्रारम्भ में विदिशा के राजा शूद्रक का वर्णन है जिसके दरबार में एक कलूटी परन्तु परम मनोरमा चाण्डाल-कन्या एक तोते को लेकर आती है। वह तोता मानव की बोली में अपनी विद्वता का परिचय देता है। वह राजा को अपने पूर्व जीवन की कथा इस प्रकार सुनाता है–सर्वप्रथम सुनाता हुआ–विन्ध्य अरण्य से प्रारम्भ करके महर्षि जाबालि ऋषि के आश्रम तक का वृतान्त सुनाता है। उसके पश्चात् की कथा महर्षि जाबालि इस प्रकार कहते हैं–उज्जयिनी के राजा तारापीड का पुत्र चन्द्रापीड था तथा उसके मंत्री का पुत्र वैशम्पायन था। चन्द्रापीड व वैशम्पायन–दोनों दिग्विजय के लिए जाते हैं तथा चन्द्रापीड अच्छोद नामक तालाब पर पहुँच जाता है जहाँ उसे महाश्वेता नाम की तापसी सुन्दरी कन्या मिलती है। वह बताती है कि उसका प्रेमी पुण्डरीक प्रेम करने से पूर्व ही स्वर्गवासी हो गया है और उसे कोई दिव्याकृति उठाकर ले गयी है। उसी की प्राप्ति की आशा में वह तापसी बनी हुई है। उसी की एक सखी कादम्बरी है जो इस घटना के कारण दुःखी है। महाश्वेता चन्द्रापीड को उसके पास ले जाती है। वहाँ चन्द्रापीड व कादम्बरी के प्रथम दर्शन में भी प्रेम हो जाता है। परन्तु तभी पिता के आदेशानुसार चन्द्रापीड को उज्जयिनी जाना पड़ता है। वह अपने मित्र वैशम्पायन को वहाँ छोड़कर चला जाता है। जब बहुत दिनों तक वैशम्पायन नहीं आता तो चन्द्रापीड उसे देखने जाता है। महाश्वेता बताती है कि वैशम्पायन ने मुझसे प्रेम प्रस्ताव रखा तो मैंने उसे शाप देकर तोता बना दिया। चन्द्रापीड यह सुनकर इतना दुःखी हुआ कि उसके प्राण निकल गये। चन्द्रापीड की इस दशा से प्रेमिका कादम्बरी भी प्राणों का जैसे परित्याग करने लगी वैसे ही आकाशवाणी हुई–'शीघ्र ही कादम्बरी और महाश्वेता अपने-अपने प्रेमियों को प्राप्त करेंगी।' महर्षि जाबालि यहाँ तक की कथा सुनाते हैं। यह कादम्बरी का पूर्वार्द्ध भाग है।

पुनः तोता बताता है कि अपनी पूर्वजन्म की कहानी महर्षि जाबालि से सुनकर मेरा मन महाश्वेता के प्रेम से भर गया था। मैं महाश्वेता से मिलने के लिए ही जाबालि आश्रम से उड़ा था। वैसे ही मुझे पकड़कर, यह चाण्डाल-कन्या यहाँ ले आई। तभी चाण्डाल कन्या कहती है कि मैं पुण्डरीक की माता लक्ष्मी हूँ। आप शूद्रक पूर्वजन्म के चन्द्रापीड हैं। शाप की अवधि अब समाप्त हो गयी है। अतः राजा शूद्रक का जीवन चन्द्रापीड में आ जाता है। तोता भी पुण्डरीक बनकर महाश्वेता को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह चन्द्रापीड और महाश्वेता के जन्म-जन्मान्तर की कहानी है।

(ख) पात्र योजना : कथा के विशालता में पात्रों की अधिकता नहीं है, परन्तु जितने भी पात्र हैं अपनी महत्ता लिए हुए हैं। पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रणय संबंध को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया गया है। कादम्बरी और चन्द्रापीड का प्रेम एक नवयुवक व नवयुवती के हृदय की उद्दाम कामवासना है जो असंभव नहीं। राजा शूद्रक व राजा तारापीड भारतीय महान् राजाओं के प्रतीक हैं जो प्रजा के सुखों के लिए समर्पित हैं। जाबालि ऋषि महान् आत्मा हैं जो साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं। शुकनास जैसे महान् विद्वान् का उपदेश मानो सम्पूर्ण धर्म, ज्ञान व शास्त्रों का सारांश है। ये सभी पात्र संसार के जीवन की विविधता के प्रतीक हैं।

(ग) विविध वर्णन : बाणभट्ट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब वे किसी व्यक्ति, स्थान व भाव का चित्रण करते हैं तो उसे विस्तृत रूप देते हैं। जिससे वहाँ का चित्र पाठकों के हृदय पर अंकित हुए बिना नहीं रहता। चाण्डाल कन्या वर्णन, शूद्रक वर्णन, विन्ध्याटवी वर्णन, सरोवर वर्णन, अच्छोद तालाब का वर्णन, जाबालि वर्णन, आश्रम वर्णन, प्रभात वर्णन, संध्या वर्णन, रात्रि वर्णन आदि इतने वर्णन कादम्बरी में हैं कि कोई भी प्राकृतिक वर्णन अछूता नहीं है। इसी कारण बाणभट्ट के विषय में कहा जाता है—**बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्** (सभी कुछ साहित्य बाण की झूठन हैं)। ये वर्णन अत्यन्त गम्भीर हैं तथा समास युक्त पदावली में होने के कारण कठिन भी हैं। परन्तु कहीं-कहीं भाषा सरस भी है और-सरल भी। जैसे महाश्वेता पुण्डरीक के प्रेम से इतनी कामवासना से भर जाती है कि वह कहती है—**क्व गच्छामि, किं करोमि, किं शृणोमि, किं पश्यामि।'** आदि उसका कथन छोटे-छोटे वाक्यों में प्रसाद गुण से युक्त है।

(घ) महत्त्व : कादम्बरी मूलतः शृंगार रस प्रधान कृति है। काव्य की दृष्टि से इसे 'कथा' नामक गद्य ग्रन्थ कहते हैं। कथा वह कृति होती है जो सर्वथा काल्पनिक, रसात्मक तथा कौतुहल पूर्ण होती है। कादम्बरी में ये सभी गुण हैं। कादम्बरी का पूर्व भाग ही बाणभट्ट ने लिखा था, शेष भाग उसके पुत्र ने पूरा किया था। काश, यदि इस ग्रन्थ को पूरा करने के लिए बाणभट्ट जीवित रहे होते, तो न जाने यह रचना कितनी प्रभावक होती। कादम्बरी के विषय में कहा गया है—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मोह हरति।

(इसमें सुन्दर शब्द वर्णों की पदावली है, रस व भाव से भरी हैं तथा यह सुन्दरी के संसार को मोहित करती है।)

❒

? बाणभट्ट की गद्य शैली की विवेचना कीजिए।

उत्तर—बाणभट्ट की गद्य-शैली : बाणभट्ट गद्य के सम्राट् माने जाते हैं। बाणभट्ट से पूर्व साहित्य के क्षेत्र में गद्यकार का इतना महत्त्व नहीं था जितना पद्यकार या कवि को मान्यता दी जाती थी। बाणभट्ट ने गद्य के इतने विविध और गहन रूपों को प्रस्तुत किया कि विद्वानों ने दाँतों तले उँगली दबा ली और कहने लगे—**'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** अर्थात् गद्य ही कवियों की कसौटी है। बाण भाषा और शैली के विशेषज्ञ थे। उन्होंने भावों के अनुसार भाषा और शैली को नया-नया रूप प्रदान किया था। उनकी गद्य शैली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. अलंकार योजना : बाणभट्ट की अलंकार योजना सटीक, सार्थक व भावों की उत्कर्षता लिए हुए है। वे शब्दालंकारों का भी प्रयोग करते हैं और अर्थालंकारों का भी। वे अलंकार-शास्त्र के ज्ञाता ही नहीं, बल्कि सच्चे प्रयोक्ता भी थे। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग इन रूपों में किया है—

(क) विषय की रूप रेखा के लिए स्वभावोक्ति जैसे अलंकार प्रयुक्त हैं।

(ख) रूपरेखा में रंग भरने के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग है।

(ग) पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग है।

उनके पास उपमानों का अक्षय कोष है। वे विषय का चित्र उभारने में कमी नहीं छोड़ते। इतने उपमान प्रस्तुत करते हैं कि शब्दों का कोष भी समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए रसनोपमा अलंकार का एक प्रसिद्ध उदाहरण इस प्रकार है—

'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नव यौवनेन पदम्।'

बाणभट्ट अलंकार के विशेषज्ञ थे। शायद ही कोई अलंकार हो जो उनकी वाणी को अलंकृत करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता हो।

2. वर्णन की विविधता : बाणभट्ट की रचनाएँ वर्णनों की चित्रशाला हैं। उनका प्रत्येक वर्णन उसका चित्र है। पाठक उसे पढ़कर मानो उसका चित्र देख लेता है। कदाचित् उनके वर्णन सुदीर्घ हैं, वहाँ कथानक टूट जाता है, परन्तु बाणभट्ट इसकी चिन्ता नहीं करते। जहाँ उन्हें वर्णन करना होता है, वहाँ वे कथानक को रोककर वर्णन में जुट जाते हैं उसे सार्थक, वास्तविक व मनोरम बनाए बिना उसको प्रस्तुत करते जाते हैं चाहे वह कितना ही दीर्घ हो। उनके वर्णन यद्यपि विविध रूप में प्राप्त हैं, परन्तु चार प्रकार के वर्णन अनेकशः प्राप्य हैं–

(क) **रूप वर्णन :** बाणभट्ट ने अपनी कल्पना शक्ति से मानव रूपों का यथार्थ चित्रण किया है। विशेष रूप से नारी के सौंदर्य का चित्रण करने में कोई उनके समान नहीं है। कलूटी चाण्डाल कन्या हो या महाश्वेता हो अथवा कादम्बरी जैसी नारी हो जो देवाङ्गना को भी नीचा दिखा देने वाली अपूर्व सुन्दरी हो। वे छोटे-छोटे भावात्मक, मार्मिक व सशक्त वाक्यों में उसकी सुन्दरता को प्रस्तुत करते हैं तो पाठक लुभाए बिना नहीं रहते। उनकी प्रत्येक कल्पना नई-नई होती है, कहीं भी भावों को पुनः प्रस्तुत नहीं किया है। मानो वे कुछ छोड़ना ही नहीं चाहते। महाश्वेता उस मुनि कुमार के हृदय को कामासक्त कर देती है जो विराग और संन्यास का महान् तपस्वी था। कादम्बरी को देखकर चन्द्रापीड अपना दिल दे बैठता है। प्रथम दर्शन में ही दोनों प्रेम के दिवाने हो जाते हैं।

(ख) **घटनाओं का वर्णन :** बाणभट्ट अपने काव्य की प्रत्येक घटना को इतनी सजीव व सार्थक चित्रित करते हैं जैसे पाठक उसे दूरदर्शन पर देख रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है मानो घटनाएँ स्वयं अपनी कहानी कह रही हों।

(ग) **आन्तरिक भावों का चित्रण :** बाह्य रूप व सौंदर्य का चित्रण तो प्रायः सभी कवि करते हैं, बाणभट्ट उनके अन्तरंग को भी उजागर करते हैं। कहीं पर भीषणाकार शबरपति के बीभत्स का चित्रण है तो कहीं पर, जाबालि, पुण्डरीक, कपिञ्जल, दिवाकर मित्र जैसे ऋषियों, धर्मात्माओं और योगियों का वैरागी जीवन प्रस्तुत किया गया है। कामवासना से ग्रस्त महाश्वेता व कादम्बरी की विकृति का यथार्थ चित्रण भी प्राप्त है। वे समझ जाते हैं कि किस स्थिति में पात्रों की मानसिक-स्थिति क्या हो सकती है? बाण भावों के ज्ञाता थे, सर्वज्ञ नहीं थे परन्तु अपने पात्रों के अन्तर्यामी अवश्य थे।

(घ) **प्रकृति वर्णन :** बाणभट्ट ने यत्र-तत्र भ्रमण किया था। प्रकृति के सुन्दर व मनोरम रूप को भी देखा था। प्रकृति के भयंकर और बीहड़ प्रदेश को भी समझा था। बाणभट्ट द्वारा प्रस्तुत वन प्रदेश, आश्रम, तालाब, संध्या, प्रातः आदि का वर्णन आज भी बेजोड़ हैं। विन्ध्याटवी वर्णन, पम्पा सरोवर वर्णन, जाबालि के आश्रम का वर्णन, दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन, अच्छोद तालाव का वर्णन आदि आज भी अद्भुत प्रकृति-चित्रण हैं। उनमें सजीवता है, चित्रात्मकता है और मार्मिकता है। उदाहरण के लिए रात्रि वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

क्षयमुपगतायां संध्यायां तद्विनाश दुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी.....गगनतम् अमृतदीधितिः अध्यतिष्ठत्।।

बाण कल्पना के अद्भुत प्रतिभावान् थे। कोई समय हो, कोई अवसर हो, कोई घटना हो, कोई व्यक्ति हो बाण की लेखनी का विषय बनकर अपना चित्र अवश्य प्रस्तुत करता है।

3. गद्य शैली : बाण का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनकी भाषा स्वयं भावों का अनुसरण करती है। शैली भावों के अनुरूप अपना रूप बदलती जाती है। उनकी शैली विविध मुखी थी। मूलतः उनकी गद्य-शैली दो रूपों में पाई जाती है–(क) समास प्रधान शैली। (ख) व्यास शैली।

(क) समास प्रधान शैली : बाणभट्ट ने इसका प्रयोग प्रायः वहाँ पर किया है जहाँ वे वर्णन करते हैं, चित्र, घटना या व्यक्ति के रूप का चित्रात्मक स्वरूप प्रस्तुत हैं। प्रकृति के उपकरणों की वास्तविकता रखते हैं। वहाँ कभी-कभी समास बहुत बड़े व व्यापक और दीर्घ हो गये हैं। परन्तु उनमें विषयानुरूप माधुर्य है या कठिनता है। वस्तुतः उस समय गद्य-काव्य के विषय में कहा जाता था–

'ओजः समासभयूस्त्वम् एतत् गद्यस्य जीवितम्'

(ओज गुण और समास की अधिकता–ये गद्य के जीवन हैं।)

समासों का प्रयोग करके बाण ने गद्य को जीवन प्रदान किया था।

(ख) व्यास शैली : जब समास का अभाव रहता है वह व्यास शैली कहलाती है। बाणभट्ट जहाँ भावुकता, प्रेम, उपदेश, मधुरता, शृंगार, सौंदर्य आदि का चित्रण करते हैं वहाँ पर वे व्यास शैली का प्रयोग करते हैं। शुकनास उपदेश देता हुआ चन्द्रापीड को कहता है–

(यह लक्ष्मी)–**न परिचयं रक्षति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतम् आकर्णयति, न कुलक्रमं अनुवर्तते।** आदि छोटे-छोटे वाक्यों में लक्ष्मी का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। इसी प्रकार पुण्डरीक नामक प्रेमी को मृत अवस्था में देखकर महाश्वेता रोती है और कहती है–

'किं मे गृहेण, किम् अम्बया, किं वा तातेन, किं बन्धुभिः किं परिजनेन। हा, कमुपयामि शरणम्। अयि दैव! दर्शय दयाम्।'
इस प्रकार के गद्य में सरलता भी है और सरसता भी। फिर भी, उनकी शैली भावानुसारिणी है। बाण की शैली में माधुर्य है, प्रसाद है और ओज गुण भी है।

4. महत्त्व : बाण के काव्यों की सबसे बड़ी महत्ता यह है कि वे उनके गद्य-काव्यों में तत्कालीन, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण है। तत्कालीन रूढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं व रीति-रिवाजों पर उन्होंने प्रकाश डालकर युगीन चित्रण किया है। इतना ही नहीं, गद्य के क्षेत्र में उन्होंने जो कार्य किया है, परवर्ती गद्यकारों ने उसी का अनुसरण व अनुकरण किया है। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने बाणभट्ट की भाषा शैली के विषय में कहा है—

'बाण में बाल्मीकि का माधुर्य है, व्यास के महाभारत का प्रसाद गुण है, कालिदास की कोमल कल्पना है, दण्डी का पद-लालित्य है और सुबन्धु का ओज गुण है। इस प्रकार बाण ने काव्यामृत रूपी पंचगव्य का पान कराकर एक नवीन समन्वय की धारा प्रस्तुत की है।'

❐

? **'शुकनासोपदेश' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।** (म.द.वि. 2001, 2002, 2003, 2006, 2007, 2009, 2011)

उत्तर—उज्जयिनी नगरी में तारापीड नाम का राजा था जो सर्वगुणसम्पन्न प्रजा रक्षक तथा लोकप्रिय था, उसके पुत्र का नाम चन्द्रापीड था। जब चन्द्रापीड युवावस्था को प्राप्त हुआ तो तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय किया। राजा की आज्ञानुसार इस उत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयी। इसी अवसर पर राजकुमार चन्द्रापीड राज्य के परम विद्वान्, बुद्धिमान् तथा अनुभवी वयोवृद्ध मंत्री शुकनास के पास उनका आशीर्वाद लेने गया।

यद्यपि शुकनास जानते थे कि चन्द्रापीड शास्त्रज्ञ, विनीत, निपुण व सर्वथा सुयोग्य है उसे किसी प्रकार के उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, उन्होंने बताया कि नवयौवन की चंचलता, लक्ष्मी का मद, ऐश्वर्य का अहंकार, प्रेम का प्रभाव और राज्य का भोग—ये प्रायः राजाओं को पथ-भ्रष्ट कर देते हैं। अतः इनसे सदा सावधान रहना चाहिए। साथ ही, शुकनास ने कुछ परमावश्यक और नितान्त जीवनोपयोगी उपदेश भी दिए, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

1. नवयौवन के विकार—मानव जीवन में यौवन के आगमन पर मानसिक और शारीरिक विकास इतनी तीव्रता से होता है कि व्यक्ति में अविनय आने लगती है और बुद्धि भी कुपथ पर चलने लगती है। विषय भागों में आसक्ति बढ़ने लगती है तथा जैसे-जैसे विषयों का उपभोग किया जाता है, वैसे-वैसे उनसे प्राप्त होने वाला आनन्द और अधिक मधुर होने लगता है। इस अवस्था में इन्द्रियाँ कामासक्त होकर शास्त्र के मार्ग को भी भूलने लगती हैं। युवावस्था में युवकों की दृष्टि भी वासना से भर जाती है—**सरागैव भवति यूनां दृष्टिः।**

संसार के उपभोग, इन्द्रियों और मन को अपने आधीन करके उनका विनाश कर देते हैं। विषयों में आसक्त पुरुष उसी प्रकार अपना नाश कर लेता है जैसे अज्ञात दिशा में जाने वाला व्यक्ति कुमार्ग में चला जाता है। नवयौवन के समय मानव का स्वभाव बदल जाता है उसमें स्वच्छन्दता, राग, रजोगुण व कामवासना मिलकर उसे सद्मार्ग से हटा देती है। परन्तु जो इस अवस्था में सावधान रहते हैं वे अपने जीवन को सुमार्ग पर ले जाकर आत्मकल्याण करने में समर्थ होते हैं। अतः यौवन में होने वाले विकारों से अपनी रक्षा करना आवश्यक है।

2. उपदेश की पात्रता—युवावस्था में प्रत्येक व्यक्ति उपदेश ग्रहण नहीं करना चाहता है क्योंकि उनका मन काम-क्रोध लोभ-मोह से इतना भर जाता है कि उसमें उपदेश की किरणें प्रवेश नहीं कर पाती है। परन्तु शुकनास कहते है—हे कुमार! तुममें वे दोष नहीं हैं— **'भवादृशा एवं भवन्ति भाजनानि उपदेशानाम्'**

(आप जैसे ही उपेदश के पात्र होते हैं।)

युवावस्था के मद से भरे युवक, गुरु के उपेदश को नहीं सुनते हैं यदि उनके कानों में वे उपदेश कदाचित् पड़ जाते हैं तो उन्हें उसी प्रकार पीड़ित करते हैं जैसे कानों में स्वच्छ जल भी पीड़ा प्रदान करता है। परन्तु सज्जनों के लिए वे ही उपदेश अमृत के समान मधुर लगते हैं। गुरु का उपदेश तो मानव को सद्मार्ग, सुदृष्टि व सद्बुद्धि प्रदान करता है। युवावस्था का प्रारम्भ ही उपदेश के लिए सुन्दर अवसर होता है, अन्यथा यौवन में मद में कामासक्त होकर व्यक्ति के हृदय में उपदेश उसी प्रकार नहीं ठहरते हैं जैसे छलनी में पानी नहीं रूकता। गुरु का उपदेश मानव को पवित्रता, बड़प्पन, जागरण, दिव्यप्रकाश आदि प्रदान करता है। राजाओं का उपदेश देने वाले बहुत कम गुरु या धर्मात्मा होते हैं। उपदेश सुनने वाले भी राजा विरले होते हैं। फिर भी, तुम गुण सम्पन्न हो और उपदेश के पात्र हो।

3. लक्ष्मी का मद–धनवानों या विशेषरूप से राजाओं को, लक्ष्मी का मद इतनी तीव्रता के साथ प्रभावित करता है कि वे मानो विष के विकार से सभी कुछ भूल गये हों। यह लक्ष्मी सदा भ्रमण करने वाली अस्थिर, धोखा देने वाली, कठोर और चञ्चल है। यदि किसी को मिल जाती है तो इसका पालन करना कठिन है–**'लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते।'**

(प्राप्त करने पर भी इसका कठिनता से पालन किया जाता है।)

इसकी कितनी ही सुरक्षा की जाए तो भी यह लक्ष्मी भाग जाती है। इसका किसी से भी प्रेम नहीं रहता है। संसार में कुलीन, सुंदर, शीलवान्, चतुर, ज्ञानी, धर्मात्मा, त्यागी, सदाचारी, सत्यवादी आदि कोई भी ऐसा व्यक्ति संसार में नहीं है जिससे इस नारी (लक्ष्मी) का प्रेम-परिचय न रहा हो। यह जहाँ चाहे चली जाती है। शक्तिशाली राजा, महान् योद्धा, परमवीर इसकी तलवारें लेकर रक्षा करते हैं तो भी नहीं ठहरती। यह अनेक पापों का घर, तमोगुण की गुफा व दुष्टा राक्षसनी के समान है। जो दुष्टों की प्रेमिका बनकर भी रहती है व उत्तम पुरुषों पर भी आसक्त हो जाती है–**'पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया।'**

जो इस लक्ष्मी से प्यार करते हैं वे अविनयी, मोही, तृष्णावान् व चरित्रहीन हो जाते हैं। यह लक्ष्मी ऐसी नारी है जिसका आलिंगन संसार का प्रत्येक व्यक्ति करता है, फिर भी यह सभी को धोखा देकर चल देती है। यही कारण है कि जो राजा या धन-प्रेमी इस दुराचारिणी का प्रेमी बनना चाहता है वह व्याकुल होकर दुराचारी बन जाता है। अतः इस लक्ष्मी का ममत्व सर्वथा त्याज्य है।

4. ऐश्वर्य की मादकता–जब व्यक्ति को किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है या राजा को राज्य की प्राप्ति होती है तो वह इस ऐश्वर्य के अहंकार में इतना डूब जाता है कि राज्य को प्राप्त करते हुए चातुर्य, सहृदयता, क्षमा, संसार की असारता, सत्यवादिता, मधुर भाषण, यश आदि सभी गुण उसका साथ छोड़ जाते हैं। कभी-कभी राजागण ऐश्वर्य के चक्कर में इतने पड़ जाते हैं कि विविध-विषयों की लालसा के कारण सदा मन से व्याकुल होकर अपना विनाश कर लेते हैं। उनकी चेष्टाएँ, व्यवहार, चलने व बोलने का तरीका ही बदल जाता है। न तो कभी सत्य बोलते हैं और न अपने बंधुजनों को पहचानते हैं। जो उनके पास रहता है उनको भी दुखी करते हैं। किसी तेजस्वी के तेज को सहन नहीं करते। अपने ऐश्वर्य के मद में सभी प्रकार की शिष्टता और सदाचार की प्रवृति को भूलकर सुरा, नारी और जुए में मस्त रहते हैं। गुरुओं का अपमान करना, अपनी पत्नी का त्याग करना या पर स्त्री का सेवन करना, नृत्य-गीत-संगीत-वेश्याओं में आसक्ति रखना ये ही उनके प्रमुख क्रियाकलाप रहते हैं। जो अंत में उनके पतन का कारण बनते हैं।

5. राज्यतंत्र की विडम्बना–राज्यतंत्र में राज्य का उत्तराधिकारी राजा का पुत्र ही होता था चाहे वह योग्य हो या अयोग्य हो। अतः राजकुमार राज्य को प्राप्त करके इतने लोलुपी, विषयी, कामी, दुराचारी, स्वच्छंद तथा भोगी हो जाते थे कि गुरुजनों का तिरस्कार करते थे उपदेष्टाओं की बातों को निरर्थक समझते थे। वे तो भोग-विलास में आसक्त रहकर अपने महत्त्व को ही भूल जाते थे। इस अवस्था में धूर्त, चालाक, छली, कपटी, ठगी व बगुले भक्त आकर इतनी झूठी प्रशंसा करते थे और बहुत-सा धन लूट लेते थे तथा अपना उल्लू सीधा करते थे। कभी-कभी तो कुछ धूर्त व्यक्ति राजा की इतनी प्रशंसा करते थे कि राजा भी उनके बहकावे में आकर देवता के समान आचरण करने लगते थे। वे झूठे अहंकार में भर कर न तो देवताओं को प्रणाम करते थे, न ब्राह्मणों का सम्मान करते थे, न सम्मान योग्यजनों का आदर करते थे और न हितकारी वचन कहने वालों को कुछ समझते थे। बल्कि जो धूर्त उनके पास सदा हाथ जोड़कर खड़े रहते थे और राजाओं की झूठी प्रशंसा करते रहते थे उन्हें ही वे अपना समझते थे, उनको धन देते थे उन्हीं का सम्मान करते थे। इतना ही नहीं, कुछ राजा लोग इतने कठोर, कटु व राक्षस-प्रवृति के हो जाते हैं कि वे दुष्टों से प्रेरित होकर अपने भाइयों को भी मरवा देते हैं।

शुकनास इस प्रकार के राज्यतंत्र के लिए कहते हैं–

'एवंप्राय-कुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्रदारुणे राज्यतंत्रे।'

6. कुमार को प्रेरणा–वयोवृद्ध अनुभवी मंत्री शुकनास के सभी उपदेश का सार एकमात्र कुमार को प्रेरणा देता था। अतः वे कहते हैं–

'कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः।'

(कुमार! तुम ऐसा प्रयत्न करना, जिससे लोग तुम्हारी हँसी न उड़ाएँ)

विद्वान् तुम्हारी निंदा न करें, धूर्त तुम्हें न बहकावे, नारियों का विलास तुम्हें न लुभावे, लक्ष्मी तुम्हें न नचावे, कामवासना तुम्हें पागल न बनायें, राज्य के सुख तुम्हें न डुबो दे।

हे कुमार चन्द्रापीड! तुम स्वभाव से धीर, वीर व शास्त्रज्ञ हो। पिता के अच्छे संस्कारों से संस्कारित हो। इसी कारण सद्मार्ग का सेवन करो। मद, अहंकार, मोह, धन, काम आदि के वशीभूत होकर अपने कर्त्तव्य को न भूल जाओ। यह राज्य परम्परागत तुम्हें प्राप्त हो रहा है। आपके पूर्वजों ने जिस शालीनता से पृथ्वी पतित्व का दायित्व निर्वाह किया है उसी प्रकार तुम भी सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर उस पर प्रतापी व यशस्वी राजा के रूप में सम्मान प्राप्त करो।

6. महत्त्व–यह उपदेश भले ही शुकनास मंत्री ने चन्द्रापीड को दिया हो, परन्तु ये दोनों पात्र काल्पनिक हैं। मूलतः, यह उपदेश समस्त लोक व राजा के लिए है जो आज के संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। आज के प्रजातंत्र में भी कुर्सी के लोभी नेता न जाने किस-किस प्रकार का अत्याचार प्रजा के साथ करते हैं और धन एकत्रित करने में देश की इज्जत दाँव पर लगा देते हैं। आज भी यौवन का मद अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार व दुराचारों से भरा हुआ है। नारियों की इज्जत लूटना, उनसे बलात्कार करना, परस्त्री सेवन, बालिका से कुकर्म, यौवनाचार आज भी फैले हुए हैं। लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए भाई-भाई की हत्या करना, माता-पिता को पीड़ित करना आदि अमर्यादित घटनाएँ चारों तरफ घटित हो रही हैं।

बाणभट्ट ने शकुनास के माध्यम से जो चन्द्रापीड को कहलवाया है। वस्तुतः, वह आज के युवकों व युवतियों के लिए सद्-असद् और विवेक प्रदान करता है। यह उपदेश आज के संदर्भ में दिशा बोध है, विशेष प्रकार की जागृति है, शुद्धाचरण का पथ-प्रदर्शन है। यही कारण है कि 'कादम्बरी' का यह उपदेश संस्कृत गद्य साहित्य का ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंश माना जाता है। ❐

चन्द्रापीड़ का चरित्र-चित्रण

? चन्द्रापीड का चरित्र-चित्रण 'शुकनासोपदेश' पाठ के आधार पर कीजिए।

अथवा

'शुकनासोदेशः' में निहित चन्द्रापीड के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–बाणभट्ट द्वारा विरचित 'कादम्बरी', संस्कृत गद्य-साहित्य का अनुपम रत्न माना जाता है तथा 'कादम्बरी' में वर्णित 'शुकनासोपदेशः' में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व मार्मिक उपदेश प्रदान किया गया है। यह उपदेश, शुकनास नामक वयोवद्ध मन्त्री तथा विविधशास्त्रज्ञ विद्वान् गुरुवर ने तारापीड के पुत्र चन्द्रापीड को दिया है। इस उपदेश में चन्द्रापीड के चरित्र पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला गया है जो इस प्रकार है–

1. कथानायक–चन्द्रापीड 'कादम्बरी' की कथा का नायक है। प्राचीन राजतंत्र की परम्परा के अनुसार उज्जयिनी के राजा तारापीड अपने सुपुत्र चन्द्रापीड का राज्याभिषेक करने जा रहे हैं। तभी चन्द्रापीड अपने राज्य के महामंत्री तथा परमगुरु शुकनास के पास आशीर्वाद लेने जाता है। तभी परमज्ञानी शुकनास गुरु होने के कारण अपने परम शिष्य चन्द्रापीड को आशीर्वाद के रूप में परम उपयोगी उपदेश देते हैं। यद्यपि सम्पूर्ण 'शुकनासोपदेश' कथानायक चन्द्रापीड को दिया गया है, परन्तु यह उपदेश उन अपरिपक्व राजकुमारों, राजाओं व राज्य के उत्तराधिकारियों के लिए है, जो अपने राज्य को निष्कंटक व लोकप्रिय बनाना चाहते हैं।

इस उपदेश का ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण कादम्बरी की कथा का केन्द्रबिन्दु चन्द्रापीड रहा है। यदि कादम्बरी उसकी प्रेयसी व कथा नायिका है तो चन्द्राचीड, कादम्बरी का प्रेमी तथा कथानायक है।

2. नव-यौवन सम्पन्न–चन्द्रापीड ने अभी नवयौवन की दहलीज में कदम रखा है। इस नव यौवन के आगमन पर ही राजा तारापीड उसका यौवराज्याभिषेक करने जा रहे हैं। मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहता है–

'निसर्गतः एव अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।'[2]

अर्थात् नवयौवन से उत्पन्न होने वाला अंधकार अत्यंत गहन होता है जिसमें मानव प्रायः भटक जाता है और वह इतना अविवेकी हो जाता है कि अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता। शुकनास चन्द्रापीड को बार-बार समझाता है कि युवावस्था में प्रेम के वशीभूत होकर शास्त्रपरायण विद्वान की बुद्धि भी मैली हो जाती है।

यौवनारम्भे च प्रायः कालुष्यमुपयाति बुद्धिः

(हे राजकुमार! यौवन के प्रारम्भ में ही बुद्धिमत्ता समाप्त होने लगती है।)

इस प्रकार मन्त्रीवर शुकनास चन्द्रापीड को पुनः-पुनः यही उपदेश देते हैं कि अन्य राजकुमारों के समान वह नवयौवन में अपने विवेक से कार्य करें।

3. उपदेश का आकांक्षी–चन्द्रापीड को अपने परम गुरु तथा राज्य के वयोवद्ध मंत्री के प्रति सच्ची आस्था थी वह राज्याभिषेक से पूर्व अपने गुरुवर से उपदेश प्राप्त करने का आकांक्षी था। शुकनास चन्द्रापीड की इस श्रद्धा और विश्वास को देखकर कहते हैं–

'अयमेव च ते कालः उपदेशस्य।'

तुम्हें उपदेश देने का यह उचित समय है क्योंकि अभी तुम विषय-वासनाओं के रस में नहीं डूबे हो, ऐश्वर्य के नशे का प्रभाव तुम पर नहीं हुआ है। तुम्हारा अन्तःकरण अभी पवित्र है, बुद्धि निर्मल है, शास्त्रों का विशुद्ध प्रभाव अभी विद्यमान है। शुकनास को चन्द्रापीड के आचरण पर अत्यन्त संतोष है क्योंकि उसके पिताश्री तारापीड के उच्च संस्कार उसमें विद्यमान है–

'पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपित संस्कारः..........

.... भवद्गुणसंतोषो माम्।'

वे महान् संस्कार उसके भविष्य को समुज्ज्वल बनाने वाले हैं। उपदेश के आकांक्षी चन्द्रापीड को निर्देश देते हुए उपदेशान्त में शुकनास कहते हैं कि वह राज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय प्रारंभ करें तथा पिता द्वारा शासित भूमण्डल पर भ्रमण करते हुए अपने प्रताप को लोक में प्रदर्शित करें।

4. धीर तथा वीर–चन्द्रापीड स्वभाव से धैर्यशाली तथा परम वीर हैं। शुकनास चन्द्रापीड की धीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

'कामं भवान् प्रकृत्या एव धीरः।'

अर्थात् इसमें संदेह नहीं कि तुम स्वभाव से ही धैर्य धारण करने वाले हो। इसी कारण मैं तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ। अन्यथा, ऐश्वर्य के घमण्ड में चूर होकर राजकुमार किसी के भी उपदेश को नहीं सुनते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मेरे वचनों को धैर्य के साथ सुनकर जीवन में उन पर आचरण करोगे।

जहाँ चन्द्रापीड में धैर्य धारण करने की क्षमता है, वहाँ वह परम वीर भी है। यद्यपि उसकी वीरता का प्रदर्शन प्रस्तुत प्रसंग में नहीं है। फिर भी, शुकनास उसकी वीरता पर विश्वास करते हुए कहते हैं–

'अवनमय द्विषतां शिरांशि।'

हे चन्द्राचीड! तुम अपनी वीरता से शत्रुओं के मस्तको को झुका दो। इतना ही नहीं, बल्कि–

'सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्।'

सात द्वीप पर्यन्त भूमि को जीतकर अपने आधीन कर लो। अपने प्रताप को चारों ओर फैलाने का यही उचित समय है। इस प्रकार के शुकनास के वचनों से ज्ञात होता है कि चन्द्रापीड परम तेजस्वी वीर था।

5. सुयोग्य शासक बनने का इच्छुक–चन्द्रापीड जानता था कि उसके पिताश्री तारापीड परम-प्रतापी राजा हैं जिनका सम्पूर्ण भूमण्डल पर निष्कंटक राज्य है। इसका मूल कारण है–कुशाग्र बुद्धि शुकनास का पथ-प्रदर्शन। चन्द्रापीड भी सुयोग्य शासक बनने की इच्छा से ही राज्याभिषेक से पूर्व मान्य शुकनास को आर्शीवाद चाहता है। महामंत्री शुकनास जानते हैं कि राज्याभिषेक होते ही राजा की धीरता, दूरदर्शिता, कर्तव्याकर्तव्य का विवेक, सत्यपरायणता, शास्त्रबुद्धि, विनयशीलता आदि गुण समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण शुकनास ने राज्यलक्ष्मी के अवगुणों को प्रस्तुत करके चन्द्रापीड को भविष्य में राज्य के मद से सावधान होने का उपदेश दिया है तथा यहाँ तक कहा है–

'घोरा राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवति।'

राज्य का सुख, सन्निपात नामक रोग से उत्पन्न नींद के समान होता है। जो इतनी गहन होती है कि उसे त्यागकर जागना बहुत कठिन होता है। इसी कारण राज्य के सुख में डूबकर राजा सभी प्रकार के सुमार्गो को भूल जाता है। शुकनास, इस राजतंत्र के दोषों से सावधान रहने का उपदेश देते हुए कहते हैं–

'राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणी च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः।'

अर्थात् हे राजकुमार चन्द्रावीड! अनेक प्रकार की समस्याओं और वासनाओं से भरे हुए राज्यतंत्र में तुम सावधानी से कदम रखना तथा इस प्रकार प्रयास करना कि तुम्हारें आचरण से लोक तुम्हारी हँसी न उड़ावें। सज्जन व गुरुजन तुम्हें धिक्कार न कहें। तुम्हारे किसी भी कार्य पर कोई अंगुली न उठा सके। ये ही सुयोग्य शासक के गुण हैं।

6. विद्वान् एवं विनयशील–विविध-विद्याओं के ज्ञाता शुकनास जानते हैं कि चन्द्रापीड शास्त्रमर्मज्ञ व परम विद्वान् है। इसी कारण उपदेश के प्रारम्भ में ही वे चन्द्रापीड से कहते हैं–

'विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते न अल्पम् अपि उपदेष्टव्यम् अस्ति।'

अर्थात् यद्यपि तुमने जानने योग्य सभी विद्याओं का पढ़ा है तथा सभी शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया है। अतः शास्त्रसम्बन्धी थोड़ा-सा भी उपदेश देना निरर्थक है, फिर भी तुम जैसे सुयोग्य विद्वान् ही उत्तम उपदेश के पात्र होते हैं–

'भवादृशा एव भवन्ति भाजनानि उपदेशानाम्।'

मैं जानता हूँ कि तुम जैसे राजकुमार ही गुरुजनों के उपदेश के पात्र होते हैं। यही तुम्हारी विद्वत्ता और समझदारी है। शुकनास जानते थे कि चन्द्रापीड को अपने ज्ञान का घमण्ड नहीं है बल्कि वह अत्यन्त विनम्र है। इसी कारण कवि कहता है–

'दर्शनार्थ उपागतम्, आरुढविनयमपि, विनीततरं इच्छन्।'

अर्थात जब चन्द्रापीड शुकनास के पास आया तो शुकनास ने देखा कि वह बहुत विनम्र है। अतः उसकी विनयशीलता से प्रभावित होकर ही शुकनास ने उसे और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा की।

इस प्रकार 'शुकनासोपदेश' नामक पाठ में चन्द्रापीड राजकुमार के चरित्र की विविध विशेषताओं को उजागर किया गया है तथा वह सिद्ध किया गया है कि वह सुयोग्य राजा बनने के लिए सर्वगुण सम्पन्न राजकुमार है।

लक्ष्मी का चरित्र-चित्रण

? 'शुकनासोपदेश' पाठ के आधार पर लक्ष्मी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर–'शुकनासोपदेश' बाणभट्ट द्वारा विरचित 'कादम्बरी' का महत्त्वपूर्ण अंश है जिसमें वयोवद्ध महामंत्री शुकनास राजकुमार चन्द्रापीड को उसके राज्याभिषेक के समय उपदेश देते हैं। उपदेश के प्रारंभ में शुकनास सर्वप्रथम लक्ष्मी के विषय में कहते हैं–

'आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीं एव प्रथमम्।'

(हे कल्याण को चाहने वाले राजकुमार चन्द्रापीड! पहले लक्ष्मी को ही आप देखें।) यह कहकर शुकनास ने लक्ष्मी का जो चित्रण किया है, उसके आधार पर लक्ष्मी के चरित्र की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. लक्ष्मी की उत्पत्ति व आचरण।
2. स्वभाव से चञ्चला।
3. सभी से परिचित।
4. परस्पर विरूद्ध आचरण करने वाली।
5. दुष्टा नारी।

1. लक्ष्मी की उत्पत्ति व आचरण–लक्ष्मी की उत्पत्ति क्षीरसागर से हुई है। पुराणों के अनुसार भी यह तथ्य ज्ञात होता है कि जब देवों व असुरों ने समुद्रमंथन किया तो उसमें से जो रत्न निकले थे। उनमें लक्ष्मी भी थी। शुकनास कहते हैं–

'इयं हि क्षीरसागरात् ....उद्गता'।

(यह लक्ष्मी क्षीरसागर से उत्पन्न हुई थी।)

क्षीरसागर से लक्ष्मी के साथ जो रत्न उत्पन्न हुए थे, साथ रहने के कारण लक्ष्मी ने उनकी विशेषताओं को धारण कर लिया था। जैसे–पारिजात वृक्ष के पल्लवों से राग या आसक्ति को तथा चन्द्रमा के अंश से टेढ़ेपन या कुटिलता को धारण किया था। इतना ही नहीं, उच्चैःश्रवा नामक घोड़े से चञ्चलता या अस्थिरता को तथा कालकूट नामक विष से संमोहन शक्ति को और कौस्तुभमणि से निष्ठुरता या कठोरता को प्राप्त किया था। इसी कारण लक्ष्मी आज भी कुटिलता, अस्थिरता, अहंकार, कठोरता, निर्दयता आदि विशेषताओं को प्राप्त करने से इनके अनुरूप अनुचित आचरण करती है।

2. स्वभाव से चञ्चला–लक्ष्मी स्वभाव से चञ्चल होती है। यद्यपि लक्ष्मी को प्राप्त करना बहुत कठिन है। यदि किसी को प्राप्त हो जाती है तो उसकी सुरक्षा करना बहुत कठिन होता है। अतः शुकनास कहते हैं–

'लब्धा खलु दुःखेन परिपाल्यते।'

यदि इसे मजबूत रस्सी से बाँध भी दिया जाता है तो भी यह छूटकर चली जाती है। किसी व्यक्ति से या कुल से इसका कितना ही परिचय क्यों न हो तो भी इच्छानुसार उसे छोड़कर चली जाती है। कोई चाहे उच्चकुल का हो, अतीव रूपवान हो, सदाचारी हो, अत्यन्त प्रवीण हो, शास्त्रज्ञ हो, धर्मात्मा हो, दान देने वाला दाता हो, सत्यवादी हो या शुभ लक्षणों वाला हो – यह लक्ष्मी किसी के पास भी निरन्तर नहीं रहती है–

'न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालाक्यते..................न लक्षणं प्रमाणी करोति।'

लक्ष्मी में तो इस प्रकार के संस्कार है कि वह किसी के पास स्थिर होकर नहीं ठहरती। कभी किसी के पास जाती है तो कभी किसी अन्य के पास चली जाती है। शुकनास इसके विषय में कहते हैं–

'गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एक नश्यति।'

(आकाश में बादलों की बनती हुई और बिगड़ती हुई आकृति के समान लक्ष्मी देखते-देखते ही चली जाती है।)

इस मूल कारण है कि वह स्वाभाविक रूप से चञ्चला है।

3. सभी से परिचित–लक्ष्मी का मानवलोक में सभी के साथ परिचय है। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा हो, कोई शिष्ट हो या धूर्त हो, कोई सरल हो या कुटिल हो, बलवान हो या निर्बल हो। सभी का लक्ष्मी के साथ परिचय रहता है। सभी उसे प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं। परन्तु यह किसी की भी प्रेमिका या स्नेहशीलता बनकर नहीं रहती। यदि कोई विद्याओं का ज्ञाता है या शास्त्रज्ञ है तो उससे मानो इसलिए ईर्ष्या करती है क्योंकि सरस्वती (नारी) उसके पास रहती है। गुणवान्, उदारशील, दानी, मानी, यशस्वी,

सम्पन्न, कुलीन, तेजस्वी, विनयशील, मनस्वी आदि सभी प्रकार के शिष्ट व्यक्तियों से लक्ष्मी का परिचय रहता है। दूसरी ओर, धूर्तों, दुष्टों, कृतघ्नों, प्रवञ्चकों, पापात्माओं आदि अशिष्ट जनों से भी उसका परिचय रहता है। तभी तो वह लक्ष्मी–

'लतेव विटपकान् अध्यारोहति।'

कभी तो दुष्टों का उसी प्रकार आश्रय लेती है जैसे लता वृक्षों का आश्रय लेकर पनपती है। कभी यह लक्ष्मी–

'शूरं कण्टकं इव परिहरति.........विनीतं पातकिनं इव न उपसर्पति।'

वीर व्यक्ति के पास जाकर भी काँटे के समान उसका शीघ्र परित्याग कर देती है। विनयशील व्यक्ति के पास यह महापापी के समान नहीं जाती है।

इस प्रकार लक्ष्मी का मानव-समाज के प्रत्येक वर्ग से परिचय रहता है।

4. परस्पर विरुद्ध आचरण करने वाली–लक्ष्मी में जहाँ अनेक अवगुण हैं वहीं विविध गुणों का भण्डार भी है। लक्ष्मी जलराशि (समुद्र) से उत्पन्न होकर भी जिसके पास जाती है, उसमें तृष्णा (प्यास या लालसा) को बढ़ा देती है अर्थात् उसमें धनप्राप्ति की इच्छाएँ दिनोदिन वृद्धिगत होती जाती है। उसमें यह विरोधी गुण है। इसी प्रकार लक्ष्मी मानव को ऐश्वर्य प्रदान करती हुई भी उसमें अमंगल (अशुभ) स्वभाव का विस्तार करती है। यह उसका विरोधी आचरण है। अमृत के साथ उत्पन्न होकर भी कुपरिणाम वाली है। जबकि अमृत के साथ रहकर उसमें शुभ परिणाम होना चाहिए। पुरुषोत्तम या विष्णु भगवान के पास रहने वाली होकर भी दुष्टजनों से प्रेम करती है जबकि उत्तम पुरुषों के पास रहकर दुष्टों के साथ छोड़ देना चाहिए। निर्मल हृदय वाले व्यक्ति के पास रहकर उसके मन को मैला कर देती हैं। (यह विरोधी गुण है।)

इस प्रकार लक्ष्मी के विरोधी आचरण पर शुकनाश ने पर्याप्त प्रकाश डाला है और स्पष्ट कह दिया है–

'परस्परविरुद्धं च इन्द्रजालं इव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्।'

(लक्ष्मी संसार में परस्पर विरोधी अपने चरित को जादू के समान प्रदर्शित करती है।)

इस प्रकार लक्ष्मी का आचरण विरोधाभास लिए हुए है।

5. दुष्टा नारी–लक्ष्मी स्वभावतः चञ्चल है। वह इतनी सुन्दर रूप-रंगों वाली है कि सभी का मन मोह लेती है। सज्जन-दुर्जन, गुणवान्-दुष्ट, पुण्यात्मा-पापी सभी के पास जाती है परन्तु कहीं पर भी मन लगाकर नहीं रहती। न तो वह बलवान् राजा से भयभीत होती है और न निर्बल से घृणा करती है। समयानुसार सभी को अपना बना लेती है और जब चाहे उनका परित्याग कर देती है। भारतीय परम्परा में पतिव्रता नारी जीवन में एक ही पुरुष के पास जाती है और उसे अपना सौभाग्य मानकर उसी की बनकर रह जाती है। जन्म-जन्मान्तरों तक उसी की कामना करती है। वह पुरुष चाहे कुरूप हो या सुन्दर, मानी हो या निरभिमानी, पुरुषार्थी हो या आलसी, सभ्य हो या असभ्य – वही उसका प्राणनाथ है तथा उसका दूसरा जीवन है। जबकि इसके विपरीत लक्ष्मी में ये गुण नहीं है। अतः शुकनास लक्ष्मी के विषय में कहते हैं–

'न हि एवंविधं अपरिचितं इह जगति किञ्चिद् अस्ति यथा इयं अनार्या।'

(संसार में इस प्रकार की अपरिचित कोई भी नारी नहीं है जैसी यह दुष्टा लक्ष्मी है।)

इस प्रकार शुकनास के उपदेश में लक्ष्मी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है और उसके यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या भाग

शुकनासोपदेशः (कादतम्बरीतः)

◆ *एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद्दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरण-सम्भारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकञ्च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् कर्तुं शुकनासः सविस्तरमुवाच–* (म.द.वि. 2010, 2011)

शब्दार्थ– **एवम्** = इस प्रकार। **केषुचिद् दिवसेषु** = कुछ दिनों के। **समतिक्रामत्सु** = बीत जाने पर। **चन्द्रापीडस्य** = चन्द्रापीड के। **यौवराज्याभिषेकं** = यौवराज्याभिषेक को। **चिकीर्षः** = करने के इच्छुक। **राजा** = राजा (तारापीड) ने। **प्रतीहारान्** = द्वारपालों को। **उपकरण-संभार-संग्रहार्थं** = सभी सामान को इकट्ठा करने के लिए। **आदिदेश** = आदेश दिया। **समुपस्थित-यौवराज्याभिषेकं** = युवराज के अभिषेक का समय आने पर। **कदाचिद्** = किसी समय। **दर्शनार्थं आगतम्** = दर्शन के लिए आए हुए। **आरूढ-विनयम् अपि** = विनयशील होते हुए भी। **विनयतरम् इच्छन्** = और अधिक विनीत बनाने की इच्छा करते हुए। **शुकनासः** = शुकनास। **तं** = उस चन्द्रापीड से। **सविस्तरम् उवाच** = विस्तारपूर्वक कहने लगे।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। चन्द्रापीड के युवक हो जाने पर उसके पिता तारापीड उसके यौवराज्यभिषेक की तैयारी करने लगे। तभी बाणभट्ट कहते हैं–

सरलार्थ– इस प्रकार कुछ दिनों के बीत जाने पर चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक को करने के इच्छुक राजा (तारापीड) ने द्वारपालों को सभी (अभिषेक के) सामान को इकट्ठा करने के लिए आदेश दिया। युवराज के अभिषेक का समय आने पर, किसी समय दर्शन के लिए आए हुए, विनयशील होते हुए भी और अधिक विनीत बनाने की इच्छा करते हुए शुकनास (मन्त्री), उस चन्द्रापीड से विस्तारपूर्वक कहने लगे।

भावार्थ– राज्य परम्परा के अनुसार राजा तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड के युवक हो जाने पर उसका युवराज बनाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने सेवकों के लिए इस आयोजन की सामग्री एकत्रित करने के लिए कहा। तभी चन्द्रापीड अपने गुरुवर तथा राज्य के महत्त्वपूर्ण मंत्री शुकनास का आशीर्वाद लेने गया। शुकनास जानते थे कि चन्द्रापीड विनम्र है फिर भी और अधिक विनीत बनाने के लिए शुकनास ने उसे विस्तारपूर्वक उपदेश देना प्रारंभ किया।

विशेष– (1) प्राचीन राज्यतंत्र के अनुसार तारापीड भी युवक पुत्र चन्द्रापीड का राज्याभिषेक करने जा रहे हैं।

(2) चन्द्रापीड के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है कि वह राज्याभिषेक के पूर्व सर्वप्रथम गुरु-सम मान्य शुकनास से आशीर्वाद लेने जाता है।

(3) 'आरूढविनयम्' से चन्द्रापीड की विनयशीलता ज्ञात होती है।

(4) भाषा सरल होने पर भी प्रवाहात्मक है।

(5) बाण की व्यास शैली का सुन्दर प्रयोग है।

◆ *तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलञ्च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनञ्जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रशम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः।* (म.द.वि. 2004, 2007, 2010, 2011)

शब्दार्थ— **तात चन्द्रापीड** = प्रिय पुत्र! चन्द्रापीड। **विदित-वेदितव्य** = जानने योग्य को तुमने ज्ञात कर लिया है। **अधीत-सर्व-शास्त्रस्य** = सभी शास्त्रों को पढ़ लिया है। **ते** = तुम्हें। **अल्पं अपि** = थोड़ा-सा। **उपदेष्टव्यम् न अस्ति** = उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। **केवलं च** = किन्तु। **यौवन-प्रभवम्** = युवावस्था से उत्पन्न होने वाला। **तमः** = अन्धकार, अज्ञान। **निसर्गतः एव** = स्वभाव से ही। **अतिगहनम्** = बहुत गहरा, बहुत अधिक होता है। **अभानु-भेद्य** = जिसे सूर्य भी नहीं मिटा सकता है। **अरत्न-आलोक-उच्छेद्यम्** = रत्नों की प्रभा से भी दूर नहीं किया जा सकता है। **अप्रदीप-प्रभा-अपनेयम्** = दीपक के प्रकाश से भी नहीं हटाया जा सकता है। **लक्ष्मीमदः** = लक्ष्मी (धन) का अहंकार। **दारुणः** = कठोर है। **अपरिणाम-उपशमः** = अंतिम अवस्था (बुढ़ापे) में भी शांत नहीं होता है। **ऐश्वर्य-तिमिर-अन्धत्वम्** = ऐश्वर्य (अधिकारों) रूपी अंधकार से पैदा होने वाला अन्धापन। **अपरम्** = अन्य प्रकार का। **कष्टम्** = कष्ट देने वाला होता है। **अनञ्जनवर्ति-साध्यम्** = अञ्जन (सुरमे) की सलाई का प्रयोग करने पर ठीक नहीं होता है। **दर्प-दाह-ज्वर-उष्मा** = अहंकार रूपी तीव्र बुखार का तापमान इतना अधिक होता है। **अशिशिर-उपचार-हार्य** = शीतल दवाइयों से भी शांत नहीं किया जा सकता है। **विषय-विष-आस्वाद-मोहः** = वासना के भोग रूपी जहर के रसास्वाद से होने वाली अचेतनता। **विषमः** = इतनी विषम (कटु) है। **सततम् अमूल-मंत्र-शम्यः** = जो निरंतर जड़ी बूटियों के सेवन व मंत्र के प्रभाव से भी शांत नहीं होती है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। यौवराज्याभिषेक के समय आशीर्वाद लेने के लिए गये हुए चन्द्रापीड को स्नेह के साथ शुकनास कहते हैं—

सरलार्थ— हे प्रियपुत्र चन्द्रपीड! तुमने जानने योग्य विषय को ज्ञात कर लिया है। सभी शास्त्रों को पढ़ लिया है। तुम्हें थोड़ा-सा भी उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। इतना अवश्य है कि युवावस्था से उत्पन्न होने वाला अंधकार या अज्ञान, स्वभाव से ही बहुत गहन (अधिक) होता है जिसे सूर्य भी नहीं मिटा सकता है, जो रत्नों की प्रभा से भी दूर नहीं किया जा सकता है, जो दीपक के प्रकाश से भी नहीं हटाया जा सकता है। लक्ष्मी (धन) का अहंकार बहुत कठोर होता है जो अंतिम अवस्था (बुढ़ापे) में भी शांत नहीं होता है। ऐश्वर्य (अधिकार) रूपी अंधकार से पैदा होने वाला अंधापन अन्य प्रकार का ही है जो कष्ट देने वाला भी तथा अञ्जन (सुरमे) की सलाई का प्रयोग करने पर भी ठीक नहीं होता है। अहंकार रूपी तेज बुखार का तापमान इतना अधिक होता है कि शीतलता प्रदान करने वाली दवाइयों से भी शांत नहीं होता है। वासना के भोग रूपी जहर के रसास्वाद से होने वाली अचेतनता इतनी विषम (कटु) होती है जो निरंतर जड़ी-बुटियों के सेवन तथा मंत्र के प्रभाव से भी शांत नहीं होती है।

भावार्थ— शुकनास कहते हैं कि यद्यपि चन्द्रापीड पर्याप्त ज्ञानवान् है परंतु व्यवहारिक जीवन में राज्य प्राप्त करने के पश्चात् यौवन का नशा मानव को अंधा बना देता है। यौवन का नशा इतना अधिक अंधकार से भरा होता है कि उसे किसी भी प्रकार से दूर नहीं किया जा सकता। अंधकार हो तो दीपक, रत्न का प्रकाश या सूर्य की प्रभा दूर कर सकती है परंतु यौवन के नशे को शांत नहीं किया जा सकता। धन का मद उसका विवेक समाप्त कर देता है। वह मद वृद्धावस्था तक भी समाप्त नहीं होता। ऐश्वर्य अच्छे-बुरे की पहचान नहीं करने देता, विषयों की आसक्ति मधुरता में कटु परिणाम वाली होती है। अहंकार के कारण उसे सद्बुद्धि नहीं आती। विषय-वासनाओं का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि उसे किसी भी साधन से दूर नहीं किया जा सकता।

विशेष— (1) 'विदित-वेदितव्य' से ज्ञात होता है कि चन्द्रापीड शास्त्र पारङ्गत थे।
(2) यौवन प्रभवम् तमः, ऐश्वर्य-तिमिरः, दर्पदाह, विषय-विष में रूपक अलंकार का सौंदर्य है।
(3) लघु वाक्य होने से व्यास शैली प्रयोग की गयी है।
(4) भाषा भावों ने अनुरूप है।

❐

◆ *नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे। गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम् किमुत समवायः।* (म.द.वि. 2002, 2009)

शब्दार्थ– **राग-मल-अवलेपः** = प्रेम करने से राग के मैल का लेप। **नित्यम्** = सदा। **बलवान्** = अधिक चढ़ जाता है। **अस्नान-शौच-वध्यः** = न तो स्नान करने से, न पवित्रता से दूर किया जा सकता है। **राज्य-सुख-सम्पात-निद्रा** = राज्य के सुख रूपी सन्निपात रोग से प्राप्त नींद। **अजस्रम** = निरंतर। **घोरा भवति** = बहुत ही गहरी होती है। **अक्षपा-अवसान-प्रबोधा** = जो रात के बीत (दिन निकल) जाने पर भी जगने नहीं देती है। **इति विस्तरेण अभिधीयसे** = इस कारण मैं तुम्हें विस्तार से कह रहा हूँ। **गर्भ-ईश्वरत्म्** = जन्म से राज्य का अधिकार। **अभिनव-यौवनत्वम्** = चढ़ती हुई जवानी। **अप्रतिमरुपत्वम्** = अत्यधिक सुंदरता। **अमानुषीशक्तित्वम्** = दिव्य शक्तियों की प्राप्ति। **च** = और। **इति महती इयं** = ये बहुत अधिक। **खलु अनर्थ-परम्परा सर्वा** = निश्चय से अनर्थों को निरंतर प्रदान करने वाली हैं। **एक-एकम् एषाम् अविनयानाम् आयतनम्** = एक-एक ये सभी अविनयों (पाप-अचारणों) के घर हैं। **किम् उत समवायः** = जहाँ पर ये सभी इकट्ठी हों वहाँ तो क्या कहा जाए?।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। यौवराज्याभिषेक के अवसर आशीर्वाद के लिए आए हुए चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए शुकनास नामक मंत्रीवर कहते हैं–

सरलार्थ– प्रेम करने से राग के मैल का लेंप इतना अधिक चढ़ जाता है, जो न तो नित्य स्नान करने से और न पवित्रता से दूर किया जा सकता है। राज्य के सुख रूपी सन्निपात रोग से होने वाली नींद निरंतर गहरी होती है जो रात बीत जाने पर (दिन निकल जाने पर) भी जगने नहीं देती।

इसी कारण मैं तुम से विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ। जन्म से प्राप्त राज्य का अधिकार, चढ़ती हुई जवानी (नया यौवन), अत्यधिक सुंदरता और दिव्य शक्तियों की प्राप्ति–निश्चय से ये सभी बहुत अधिक अनर्थों को निरंतर प्रदान करने वाली होती हैं। वे एक-एक ही अविनयों (पाप के आचरणों) के घर हैं। जहाँ पर ये सभी आ गयी वहाँ पर तो कहना ही क्या? अर्थात् वहाँ तो पापों की चरम सीमा है।

भावार्थ– प्रेम का गहरा रंग शरीर और मन पर इतना गहरा चढ़ता है जो उतारने पर भी नहीं उतरता। राज्य का सुख इतना प्रबल होता है कि उसे भोगकर छोड़ना कठिन है। जन्म से प्राप्त अधिकार, नई जवानी का नशा, सुंदरता और दिव्य शक्तियाँ–ये प्रत्येक राजा को कुमार्ग गामी बना देती हैं जिसमें ये सभी गुण हों उनका विनयशील रहना संभव ही नहीं है। इसी कारण शुकनास चन्द्रापीड को समझा रहे हैं कि तुम राज्याभिषेक के पश्चात् इनसे सावधान रहना चाहिए।

विशेष– (1) स्त्री प्रेम, राज्य सुख, राज्यवैभव, नवयौवन, सौंदर्य, दिव्य शक्ति–इनके दुष्प्रभावों से राजा को सावधान किया गया है।

(2) 'रागमल', 'राज्यसुख-सन्निपातः', 'अविनयानां आयतनम्'–में रूपक अलंकार है।

(3) प्रथम दो वाक्यों में काव्यलिंग अलंकार है।

(4) भाषा में प्रवाह व प्रभावोत्पादकता है।

(5) मनोरम व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।

❒

◆ *यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुष प्रकृतिः।* (म.द.वि. 2004)

शब्दार्थ– **यौवन-आरंभे** = यौवन के प्रारंभ में। **प्रायः बुद्धि** = प्रायः करके बुद्धि। **शास्त्र-जल-प्रक्षालन-निर्मला अपि** = शास्त्र रूपी जल से धोकर निर्मल करने पर भी। **कालुष्यम् उपयाति** = काली (अपवित्र) हो जाती है। **यूनां दृष्टिः** = युवकों की दृष्टि। **अनुज्झित-धवलता अपि** = सफेदीपन (स्वच्छता) से युक्त होने प्रर भी। **सरागा एव भवति** = रागसहित (कामवासना वाली)

या लालिमायुक्त ही होती है। **यौवन-समये** = यौवन के समय। **पुरुष प्रकृतिः** = मनुष्य का स्वभाव। **समुद्भूत-रजोगुण-भ्रान्ति** = रजोगुण (अवगुणों) के भ्रम पैदा होने से। **आत्म-इच्छया एव** = स्वच्छंदता से ही। **अतिदूरं अपहरति** = उसे उसी प्रकार बहुत दूर (कुमार्ग) पर ले जाता है। **वाति इव** = जैसे आँधी। **समुद्भूत-रजोभ्रान्ति** = धूल से भरी रहने पर भी। **शुष्कपत्रं** = सूखे पत्ते को। **आत्म-इच्छया** = इच्छानुसार। **अतिदूरं अपहरति** = बहुत दूर ले जाती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शकनासोपदेश'** से उद्धृत है। यौवराज्याभिषेक के शुभ अवसर पर चन्द्रापीड को उपेदश देते हुए गुरुवर शुकनास कहते हैं–

सरलार्थ– यौवन के आरंभ में प्रायः करके बुद्धि, शास्त्र रूपी जल से धोकर निर्मल करने पर भी काली (अपवित्र) हो जाती है। सफेदीपन (स्वच्छता) से युक्त होने पर भी युवकों की दृष्टि राग-सहित या लालिमा वाली (कामवासना वाली) या लालिमा युक्त ही होती है। यौवन के समय मनुष्य का स्वभाव, रजोगुण (अवगुणों) के भ्रम पैदा होने से स्वच्छंदता के कारण ही उसे उसी प्रकार बहुत दूर (कुमार्ग) पर ले जाता है, जैसे–आँधी धूल से भरी रहने पर भी सूखे पत्ते को इच्छानुसार उड़ाकर बहुत दूर ले जाती है।

भावार्थ– यौवन का नशा बुद्धि पर पड़ कर उसे अपवित्र कर दता है। उस समय शास्त्र के ज्ञान का प्रभाव निरर्थक होता है। युवकों की दृष्टि से इतनी कामवासना पैदा हो जाती है कि उसकी निर्मलता व्यर्थ सिद्ध होती है। युवावस्था में युवकों की दृष्टि स्वच्छ (निर्मल) होने पर भी प्रेम (वासना) से भरी रहती है। जिस प्रकार धूल भरी आँधी सूखे पत्ते को इच्छानुसार इधर-उधर उड़ाकर ले जाती है उसी प्रकार यौवन के समय मनुष्य का स्वभाव अवगुणों से इतना भर जाता है कि उसे कुमार्ग पर जाने को विवश कर देता है। अतः शुकनास चन्द्रापीड को सावधान करता है कि वह यौवन में अपनी बुद्धि, दृष्टि व स्वभाव को चंचल नहीं होने देना चाहिए।

विशेष– (1) बुद्धि की मलिनता, प्रेम भरी दृष्टि, युवावस्था का दुष्प्रभाव इन तीनों से सावधान किया गया है।
(2) 'शास्त्र-जल' में रूपक अलंकार है।
(3) प्रथम दो वाक्यों में विरोधाभास अलंकार है।
(4) 'कालुष्यम्' सराग, रजोगुण–में श्लेष अलंकार है।
(5) अंतिम वाक्य में उपमा अलंकार है।
(6) व्यास शैली प्रयुक्त है।

❒

◆ ***इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।*** **(म.द.वि. 2004, 2005)**

शब्दार्थ– **उपभोग-मृगतृष्णिका** = विषय भोग रूपी लालसा (मृगतृष्णा)। **सततं अतिदुरन्ता** = बहुत कठिनता से समाप्त होती है। **इन्द्रिय-हरिण-हारिणी** = यह इन्द्रिय रूपी हिरण को आकर्षित करती है। **नव-यौवन-कषायित-आत्मनः** = नव यौवन में कषाय से भरी हुई आत्मा वाले। **मनसः** = मन को। **विषय-स्वरूपाणि-आस्वादमानानि** = विषय वासनाओं का स्वाद। **मधुरतराणि आपतन्ति** = और अधिक मधुर लगता है। **सलिलानि इव** = जैसे कसैले स्वाद वाले व्यक्ति को जल और अधिक मीठा लगता है। **विषयेषु** = विषय-वासनाओं में। **आसङ्गः** = आसक्ति। **पुरुषतम्** = पुरुष को। **नाशयति** = उसी प्रकार नष्ट कर देती है। **दिङ्मोह इव** = जैसे दिशा से भटका हुआ व्यक्ति। **उन्मार्ग-प्रवर्तकः** = उल्टे रास्ते पर चलने वाला हो जाता है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। शुकनास नामक विद्वान् मंत्री, शुकनास विषय भागों द्वारा होने वाले कुप्रभाव को बताता हुआ कहता है–

सरलार्थ– विषय भोग रूपी लालसा, बहुत कठिनता से समाप्त होती है वह इन्द्रियों को उसी प्रकार आकर्षित करती है जैसे हिरण को मृगतृष्णा। नवयौवन में कषाय से भरी हुई आत्मा वाले व्यक्ति के मन को विषय-वासनाओं का स्वाद और अधिक मधुर लगता है जैसे कसैले स्वाद वाले व्यक्ति को जल और अधिक मीठा लगता है। विषय-वासनाओं में आसक्ति, पुरुष को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे दिशा से भटका हुआ व्यक्ति उल्टे मार्ग पर जाने वाला होकर नष्ट हो जाता है।

भावार्थ– विषय वासनाएँ इतनी प्रबल प्रभाव वाली होती हैं कि वे इन्द्रियों को अपने आधीन कर लेती हैं। नव यौवन में विषयों का जितना भी आनन्द लिया जाता है वे उतने ही मधुर लगते जाते हैं, परन्तु विषयों में आसक्ति या लगाव मानव का विनाश कर देते हैं। इसी कारण शुकनास चन्द्रापीड को यही समझाते हैं कि इस अवस्था में विषयों की आसक्ति में लवलीन नहीं रहना चाहिए।

विशेष– (1) नव यौवन में स्वभावतः होने वाले दोषों को प्रस्तुत किया गया है।
(2) हृदय-हरिण, उपभोग-मृगतृष्णिका में रूपक अलंकार है।
(3) अन्तिम दो वाक्यों में उपमा अलंकार का सौंदर्य है।
(4) व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।
(5) भाषा सरल व भावों के अनुरूप है।

◆ ***भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति।*** (म.द.वि. 2005, 2006)

शब्दार्थ– **भवादृशाः एव** = आप जैसे ही। **उपदेशानां भाजनानानि भवन्ति** = उपदेशों के पात्र (योग्य) होते हैं। **अपगतमले** = निर्मल। **मनसि** = मन में। **उपदेशगुणाः** = उपदेश के गुण। **सुखेन विशन्ति** = सरलता से उसी प्रकार प्रवेश करते हैं। **स्फटिकमणौ इव** = जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि में। **रजनिकर-गभस्तयः विशन्ति** = चन्द्रमा की किरणें प्रवेश कर जाती हैं। **गुरुवचनं** = गुरु का उपदेश। **अमलं अपि** = निर्दोष होता हुआ भी। **अभव्यस्य** = दुर्जन के द्वारा। **श्रवण-स्थितं** = कानों से सुनने पर भी। **महद् शूलं उपजनयति** = भयंकर पीड़ा पैदा करता है। **अमलं सलिलं इव** = जैसे निर्मल जल। **श्रवण स्थितं** = कानों में जाकर। **इतरस्य तु** = सज्जन के लिए (गुरु का उपदेश)। **करिणः** = हाथी के लिए। **शंख-आभरण** = शंखों के आभूषण के समान। **आनन-शोभा** = मुख की सुंदरता की। **समुदयम्** = वृद्धि को। **अधिकतरं उपजनयति** = और अधिक करता है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश की पात्रता के विषय में समझाते हुए कह रहे हैं–

सरलार्थ– (हे चन्द्रापीड!) आप जैसे ही गुरु के उपदेश के पात्र (योग्य) होते हैं। निर्मल मन में उपदेश के गुण सरलता से उसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें स्वाभाविक रूप में प्रवेश कर जाती हैं। गुरु का उपदेश निर्दोष होता हुआ भी दुर्जन के द्वारा कानों से सुनने पर भी उसी प्रकार भयंकर पीड़ा पैदा करता है जैसे निर्मल होने पर भी जल, कानों में जाकर बहुत कष्ट प्रदान करने वाला होता है। सज्जन के लिए (गुरु का उपदेश), हाथी के शंखों के आभूषण के समान मुख की सुंदरता की और अधिक वृद्धि करता है।

भावार्थ– शुकनास चन्द्रापीड को यही समझाते हैं तो तुम जैसे ज्ञानवान् व्यक्ति ही गुरु के उपदेश को सुनने योग्य होते हैं। उनके मन में गुरु का उपदेश अपना स्थान सरलता से बना लेता है। अन्यथा दुर्जन व्यक्ति को यदि गुरु उपदेश भी देता है तो वह उपदेश सुनकर ही दुख का अनुभव करता है, उन पर आचरण करना तो बहुत दूर की बात है। सज्जन व्यक्ति ही गुरु के उपदेश को सुनकर उस पर आचरण करते हैं। वह उनके जीवन को शोभा को बढ़ाने वाला होता है और उनके लिए सम्मान योग्य होता है। अतः हे चन्द्रापीड! तुम भी सम्मान योग्य बनो।

विशेष– (1) शुकनास मंत्री, चन्द्रपीड को उपदेश का सुपात्र समझता है।
(2) 'अपगत...उपजनयति' में तीन बार उपमा अलंकार के सौंदर्य को प्रस्तुत किया गया है।
(3) गुरु के वचन या उपदेश अभव्य-दुर्जन के लिए नहीं होते हैं।
(4) भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है।

◆ ***हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव। गुरुपदेशः प्रशमहेतुर्वयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य।***

शब्दार्थ— **प्रदोषसमय-निशाकर अंधकारम् इव** = जैसे रात्रि का चन्द्रमा अंधकार को। **हरति** = दूर कर देता है। **दोषजातं मलिनं हरति** = वैसे ही (गुरु का उपदेश) दोषों से उत्पन्न मलिनता (तुच्छता) को हटा देता है। **प्रशम-हेतुः** = शांति का कारण। **गुरु-उपदेशः** = गुरु का उपदेश। **अमलीकुर्वन्** = (दोषों को) निर्दोष बनाता हुआ। **गुणरूपेण** = गुणों में। **तदेव परिणमयति** = उसी प्रकार बदल देता है। **वयः परिणाम इव** = जैसे बुढ़ापा। **शिरसिज-जालम्** = बालों का समूह। **पलितरूपेण** = सफेदीपन में परिवर्तित कर देता है। **अनास्वादित-विषय-रसस्य** = विषयों के आनन्द का स्वाद न लेने वाले। **ते** = तुम्हारे लिए। **अयं एव उपदेशस्य कालः** = यही उपदेश का उपयुक्त समय है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। मंत्रीवर शुकनास गुरु के उपदेश को जीवन में परम उपयोगी सिद्ध करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड!) जैसे रात्रि का चन्द्रमा अंधकार को दूर कर देता है, वैसे ही (गुरु का उपदेश) दोषों से उत्पन्न मलिनता (तुच्छता) को हटा देता है। शांति का कारण गुरु का उपदेश, (दोषों को भी) निर्दोष बनाता हुआ उन्हें गुणों में उसी प्रकार बदल देता है जैसे बुढ़ापा, काले बालों के समूह को सफेदीफन में परिवर्तित कर देता है अर्थात् बुढ़ापे में काले बाल सफेद हो जाते हैं। विषयों के आनन्द का स्वाद न लेने वाले तुम्हारे लिए उपदेश का यही उपयुक्त समय है।

भावार्थ— शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को समझा रहे हैं कि मानव की तुच्छता या दोषों की जड़ को काटने वाला एकमात्र गुरु का उपदेश है। वह उसके दोषों को समाप्त करके उन्हें सगुण बना देता है। उपदेश ग्रहण करने का समय भी, चन्द्रापीड के लिए यह उपयुक्त है क्योंकि उसने अभी विषय-भोगों का आनन्द नहीं लिया है। विषयों में पड़ने के पश्चात् तो उनसे छुटकारा पाना ही कठिन है। अतः अभी से यदि वह उपदेश को समझ लेगा तो उसके लिए श्रेयकर होगा।

विशेष—
(1) गुरु के उपदेश के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।
(2) विषय-वासना के आस्वाद से पूर्व ही गुरु का उपदेश ग्रहण किया जाता है बाद में संभव नहीं है।
(3) प्रथम दो वाक्यों में पूर्णोपमा अलंकार है।
(4) 'गुरुपदेश...परिणमयति' में विरोधाभास अलंकार है।
(5) भाषा भावों के अनुरूप है।

◆ ***कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा विनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरी भवति बडवानलो वारिणा? गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः।***

(म.द.वि. 2007)

शब्दार्थ— **कुसुमशर-शर-प्रहार-जर्जरिते हृदि** = कामदेव के बाण के प्रहार से घायल हुए हृदय में। **उपदिष्टम् गलति** = उपदेश उसी प्रकार निकल जाता है। **जलम् इव** = जैसे जर्जर (छिद्र वाले) पात्र में से जल निकल जाता है। **दुष्प्रकृतेः** = दुष्ट स्वभाव वाले के लिए। **अन्वयः** = उच्च वंश। **वा** = अथवा। **श्रुतं** = शास्त्र ज्ञान। **विनयस्य कारणं न भवति** = विनय का कारण नहीं होता है। **चन्दन प्रभवः अनलः** = चन्दन से उत्पन्न आग। **किं न दहति** = क्या नहीं जलाती है?। **प्रशमहेतुना** = आग को बुझाने वाले। **वारिणा** = जल से। **किं वा** = क्या। **बडवानलः** = वाडवाग्नि। **प्रचण्डतरी न भवति** = और अधिक तेज नहीं होती?। **गुरुपदेशः च** = गुरु का उपदेश तो। **पुरुषाणां** = पुरुषों के लिए। **अजलं स्नानम्** = बिना जल का स्नान है। **अखिल-मल-प्रक्षालन-क्षमं** = जो सम्पूर्ण दोषों को धोने में समर्थ है। **अनुपजात-पलितादि-वैरूप्यम्** = जिसमें सफेद बालों से कुरूपता पैदा नहीं हुई है। **अजरत्वं** = बिना बुढ़ापे का। **वृद्धत्वमं** = बड़प्पन या वृद्धत्व है। **अनारोपित-मेदोदि-दोषं** = जिसमें मेदा (चर्बी) आदि दोष नहीं बढ़े हुए हैं। **गुरुकरणम्** = महत्ता, बड़ाई, भारीपन को प्रदान करने वाला है। **असुवर्ण-विरचनाम्** = जो सोने का नहीं बना हुआ है। **अग्राम्यं करणाभरणम्** = ऐसा मनोहर, कानों का आभूषण है। **अतीत-ज्योतिः** = जो संसार की ज्योति से रहित है। **आलोकः** = ऐसा प्रकाश है। **न-उद्वेगकरः** = जो किसी प्रकार से कष्टदायक नहीं है। **प्रजागरः** = ऐसा जागरण है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। गुरु के उपदेश की विचित्रता का वर्णन करते हुए मंत्री शुकनास चन्द्रापीड से कहते हैं—

सरलार्थ— (पुत्र चन्द्रापीड!) कामदेव के बाण के प्रहार से घायल हुए हृदय से गुरु का उपदेश उसी प्रकार निकल जाता है जैसे जर्जर (छिद्र वाले) पात्र से जल निकल जाता है। दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए, उच्च वंश अथवा शास्त्रज्ञान विनय का कारण नहीं होता है। चंदन से उत्पन्न आग क्या नहीं जलाती है? अर्थात् अवश्य जलाती है। आग को बुझाने वाले जल से क्या वाडवाग्नि (समुद्र की आग) और अधिक तेज नहीं होती है अर्थात् होती है। गुरु का उपदेश तो पुरुषों के लिए बिना जल का स्नान है जो संपूर्ण दोषों को धोने में समर्थ है। बिना बुढ़ापे के होने वाला बड़प्पन या वृद्धत्व है जिसमें सफेद बालों से कुरूपता पैदा नहीं हुई है। इस प्रकार की महत्ता, बडाई या भारीपन को पैदा करने वाला है जिसमें मेदा (चर्बी) आदि दोष नहीं बढ़े हुए हैं। (गुरु का उपदेश तो) मनोहर (अग्रामीण) कानों का आभूषण है जो सोने का भी नहीं बना हुआ है, (गुरु का उपदेश) ऐसा प्रकाश है जो संसार की ज्योति से रहित है, ऐसा जागरण (जागृति) है जो किसी प्रकार का कष्टदायक नहीं है।

भावार्थ— शुकनास चन्द्रापीड से कहते हैं कि गुरु का उपदेश उन व्यक्तियों के लिए निरर्थक है जो काम-वासना से भरे हुए हैं। कोई व्यक्ति चाहे शास्त्र का ज्ञाता हो या ऊँचे वंश में उत्पन्न हो, यदि स्वभावतः दुर्जन है तो वह विनीत नहीं हो सकता। जैसे आग का स्वभाव जलाना है यदि वह चंदन की लकड़ी की आग है तो भी अवश्य जलाएगी। शुकनास तो चन्द्रापीड को समझाते हुए यहाँ तक कहते हैं कि गुरु का उपदेश बड़ा विचित्र है वह तो बिना जल का स्नान है, बिना चर्बी का मोटापा (बड़प्पन) है, बिना सोने का कानों का आभूषण है, बिना ज्योति का प्रकाश है और कष्ट न देने वाला जागरण है। अर्थात् गुरु के उपदेश से अंतरंग की पवित्रता, समाज में बड़प्पन, बोलने में चतुराई, हृदय की निर्मलता तथा विवेक आदि गुण आते हैं।

विशेष— (1) इस गद्य-खण्ड में गुरु के उपदेश की महत्ता प्रस्तुत की गयी है।
(2) 'कुसुमशर-शर' में यमक अलंकार है।
(3) 'कुसुम...उपदिष्टम्' में उपमा अलंकार की योजना है।
(4) 'चन्दन-प्रभवः....वारिणा' वक्रोक्ति अलंकार की छटा है।
(5) गुरुपदेश....प्रजागरः' में विरोधाभास अलंकार है।
(6) व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।

◆ ***विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पाश्च पृथु-स्थगित श्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशवादिनो गुरुन्। अहंकारदाहज्वरमूर्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि। राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।*** (म.द.वि 2003, 2011)

शब्दार्थ— **विशेषेण राज्ञाम्** = ये बातें विशेष रूप से राजाओं के लिए हैं। **विरला हितेषां उपदेष्टारः** = उनको उपदेश देने वाले बहुत कम हैं। **जनः** = प्रायः लोग। **भयात्** = भय के कारण। **प्रतिशब्दक इव** = प्रतिध्वनि के समान। **राजवचनं अनुगच्छति** = राजा की बात में हाँ में हाँ मिलाते हैं, उन्हीं की बात स्वीकार करते हैं। **उद्दामदर्पाः च** = और बहुत घमण्डी होकर। **पृथु-स्थगित-श्रवण-विवराः** = मानो उनके कानों के छिद्र बन्द हो गये हों। **उपदिश्यमानं अपि** = उपदेश दिये जाने पर भी। **ते न शृण्वन्ति** = वे बिल्कुल नहीं सुनते। **शृण्वन्तः अपि** = सुनते हुए भी। **गज-निमीलितेन** = आँखें बंद किए गये हाथी के समान। **अवधीरयन्तः** = अपमानित करते हुए। **हित-उपदेश-दायिनः गुरुन्** = हित का उपदेश देने वाले गुरुओं को। **खेदयन्ति** = कष्ट पहुँचाते हैं। **हि** = निश्चय से। **राजप्रकृतिः** = राजाओं का स्वभाव। **अहंकार-दाह-ज्वर-मूर्छा-अन्धकारिता** = अहंकार रूपी तेज तापमान के कारण होने वाली अचेतनता से अज्ञात। **विह्वला** = अस्थिर रहता है। **धनानि** = धन-सम्पत्ति। **अलीक-अभिमान-उन्माद-कारीणि** = असत्य, अहंकार और मादकता से भरी रहती है। **राजलक्ष्मीः** = राज्य की लक्ष्मी। **राज्य-विष-विकार-तन्द्रा-प्रदा** = राज्य रूपी ज़हर के विकार से पैदा होने वाले आलस्य को देने वाली होती है अर्थात् राज्य को प्राप्त करके व्यक्ति आलसी बन जाता है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। राजाओं को उपदेश देना बहुत कठिन है–इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए अनुभवी विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड से कहता है–

सरलार्थ– विशेष रूप से ये बातें (उपदेश) राजाओं के लिए ही हैं। क्योंकि उनको उपदेश देने वाले बहुत कम होते हैं। प्रायः सामान्य लोग भय के कारण प्रति ध्वनि के समान राजा की बात को ही स्वीकार करते हैं अर्थात् उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं तथा बहुत से राजा घमण्डी होकर उपदेश दिए जाने पर भी वे बिल्कुल नहीं सुनते हैं। मानो उनके कानों के छिद्र बन्द हो गये हों। सुनते हुए भी, आँखें बन्द किए हुए हाथी के समान, हितकारी उपदेश देने वाले गुरुओं को अपमानित करते हुए उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। निश्चय से राजाओं का स्वभाव, अहंकार रूपी तेज तापमान के कारण होने वाली अचेतनता से अज्ञात व अस्थिर रहता है। उनकी धन सम्पत्ति, असत्य, अहंकार और मादकता से भरी रहती है। उनकी लक्ष्मी राज्य रूपी जहर के विकार से पैदा होने वाले आलस्य को देने वाली होती है। अर्थात् राज्य को प्राप्त करके राजा, आलसी (श्रमरहित) हो जाता है।

भावार्थ– वास्तव में साधारण जन की अपेक्षा राजाओं को उपदेश देना बहुत कठिन है। क्योंकि प्रायः राजा, गुरु की अच्छी या बुरी सभी बातों को स्वीकार करते हैं। यदि राजा के हित की कोई बात कहता भी हो राजा उसकी बात नहीं सुनता है, यदि सुनता भी है तो हितकारी गुरु का अपमान करके उसे कष्ट पहुँचाता है। राजा का यह स्वभाव है कि उन्हें बहुत अहंकार होता है जिससे वे अस्थिर व अज्ञानी बने रहते हैं। धन सम्पत्ति, राजा को झूठा अभिमान व मादकता प्रदान करती है। राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करके स्वयं राजा आलसी बन जाता है।

विशेष– (1) गुरुपदेश की पात्रता पर प्रकाश डाला गया है।
(2) 'प्रतिशब्दक इव...भयात्' में उपमा अलंकार है।
(3) 'शृण्वन्तः...गुरुन्' में पूर्णोपमा अलंकार है।
(4) 'अहंकाराह, राज्यविष' में रूपक अलंकार की छटा है।
(5) छोटे-छोटे वाक्य होने से व्यास शैली प्रयोग की गयी है।
(6) भाषा भावों के अनुरूप है।

◆ ***आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभट्खड्गमण्डलोत्पलवन- विभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैः श्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिरायाः मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता। न ह्येवंविधमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या।***

शब्दार्थ– **तावत्** = जरा। **कल्याण-अभिनिवेशी** = कल्याण की इच्छा रखने वाले (आप)। **प्रथमं** = सबसे पहले। **लक्ष्मीं एव आलोकयतु** = लक्ष्मी को ही देख लें। **इयं हि लक्ष्मी** = निश्चय से यह लक्ष्मी। **सुभट्-खड्ग-मण्डल-उत्पल-वन-विभ्रम-भ्रमरी** = योद्धाओं के तलवारों रूपी कमलों के वन में भ्रमण करने वाली भ्रमरी के समान है, यह योद्धाओं की छाया में रहती है। **लक्ष्मीः** = इस लक्ष्मी ने। **क्षीर-सागरात्** = क्षीर समुद्र से। **पारिजात् पल्लवेभ्यः रागम्** = पारिजात वृक्ष के पत्तों से राग (आसक्ति) को। **इन्दु शकलात्** = चन्द्रमा की कला से। **एकान्तवक्रताम्** = एकमात्र तिरछेपन को। **उच्चैः श्रवसः** = उच्चैश्रवा नामक घोड़े से। **चंचलताम्** = चंचलता को। **कालकूटात्** = कालकूट नामक विष से। **सम्मोहनशक्तिं** = वश के करने की शक्ति को। **मदिरायाः** = मदिरा से। **मदम्** = मादकता, अहंकार को। **कौस्तुभमणेः** = कौस्तुभमणि से। **नैष्ठुर्यम्** = कुटिलता को। **इति** = इस प्रकार से। **एतानि** = इन। **सहवास-परिचय-वशात्** = साथ रहने से होने वाले परिचय के कारण। **विरह-विनोद-चिह्नानि गृहीत्वा एव** = उनसे अलग होने पर, इन मनोरंजन के चिह्नों को लेकर ही मानो। **उद्गता** = वहाँ से बाहर आई है। **जगति** = संसार में। **एवंविधं किञ्चित्** = इस प्रकार से कोई भी। **अपरिचितं इह नहि अस्ति** = अपरिचित नहीं है। **यथा इयं अनार्या** = जैसी यह दुष्टा लक्ष्मी है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी या धन संपत्ति से होने वाले अवगुणों पर प्रकाश डालते हुए कहता है–

सरलार्थ— (बेटे चन्द्रापीड) जरा, कल्याण की इच्छा रखने वाले (आप) सबसे पहले लक्ष्मी को ही देख लीजिए। निश्चय से यह लक्ष्मी, तलवारों रूपी कमलों के वन में भ्रमण करने वाली भ्रमरी के समान है। अर्थात् यह योद्धाओं की छाया में रहती है। यह लक्ष्मी क्षीर-समुद्र के पारिजात वृक्ष के पत्तों से राग (आसक्ति) को, चन्द्रमा की कला से एकमात्र तिरछेपन को, उच्चैः श्रवा नाम के घोड़े से चंचलता को, कालकूट नाम के विष से वश में करने की शक्ति को, मदिरा से मादकता को, कौस्तुभ मणि से कुटिलता (कठोरता) को लेकर ही मानो बाहर आई थी। क्योंकि इन सभी के साथ रहने से परिचय के कारण उनसे अलग होने पर, इन मनोरंजन के चिह्नों को (धारण किए हुए है।)। संसार में इस प्रकार की कोई भी नारी अपरिचित नहीं है जैसीकि यह दुष्टा लक्ष्मी है। अर्थात् इस नारी का सभी से परिचय है।

भावार्थ— शुकनास चन्द्रापीड से कहता है कि सर्वप्रथम लक्ष्मी को ही देख लें। यह प्रायः योद्धाओं के पास रहती है। समुद्र मंथन के समय जो रत्न निकले थे उनमें से इस लक्ष्मी ने पारिजात के पत्तों, चन्द्रमा की कला, उच्चैश्रवा घोड़ा, कालकूट, मदिरा, कौस्तुभमणि रत्नों से क्रमशः आसक्ति, तिरछेपन, चंचलता, वशीकरण शक्ति, मादकता व कठोरता को मानो प्राप्त किया था। इसी कारण लक्ष्मी में ये सभी बुराइयाँ विद्यमान हैं। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि इस लक्ष्मी का संसार में सभी प्रकार के व्यक्तियों से परिचय है। इस प्रकार की दुष्टा नारी और कौन हो सकती है जैसी यह लक्ष्मी है।

विशेष— (1) स्वभावतः दुष्प्रकृति वाली लक्ष्मी के अवगुणों को प्रदर्शित किया गया है।
(2) 'विभ्रमभ्रमरी लक्ष्मी', 'खड्गमण्डलोत्पलवन' में रूपक अलंकार है।
(3) पुराणों के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र से हुई।
(4) समुद्र-मन्थन के समय लक्ष्मी के साथ-साथ पारिजात वृक्ष, चन्द्रमा, उच्चैश्रवा, कालकूट विष, कौस्तुभमणि आदि भी उत्पन्न हुए थे। लक्ष्मी इनके साथ रहने से इनके अनुरूप आचरण करती है।
(5) 'सहवास...उद्गता' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(6) भाषा भावों के अनुरूप सुंदर व प्रभावक है।

◆ ***लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति। उद्दामदर्पभट- सहस्रोल्लासितासिलता-पञ्जरविधृताप्यपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते।***

शब्दार्थ— **लब्धा अपि** = प्राप्त कर लेने पर भी। **खलु** = निश्चय से। **दुःखेन परिपाल्यते** = कठिनता से यह पालन (रक्षा) की जाती है। **दृढ़-गुण-संदान-निष्पन्दी-कृता अपि** = मजबूत रस्सियों से बाँधकर निश्चल करने पर भी अथवा उच्च गुणों के बंधन से स्थिर करने पर भी। **नश्यति** = यह चली जाती है। **उद्दाम-दर्प-भट-सहस्र-उल्लासिता-असिलता-पञ्जर-विधृता अपि** = अत्यन्त घमंड वाले हजारों योद्धाओं के द्वारा उठाई गई तलवारों रूपी पिंजरों में बन्द की जाने पर भी। **अपक्रामति** = बचकर चली जाती है। **मद-जल-दुर्दिन-अंधकार-गज-घटित-घटा-परिपालिता अपि** = मद जल की बहुत वर्षा से दिन में भी अंधकार करने वाले हाथियों के समूह रूपी बादलों की घटाओं से सुरक्षित की जाने पर भी। **प्रपलायते** = भाग जाती है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
लक्ष्मी की चंचलता पर प्रकाश डालते हुए शुकनास नामक विद्वान् चंद्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— (चन्द्रापीड! इस लक्ष्मी को) प्राप्त कर लेने पर भी निश्चय से यह कठिनता से पालन (रक्षा) की जाती है। मजबूत रस्सियों से बाँधकर निश्चल करने पर भी अथवा उच्च गुणों के बन्धन से स्थिर करने पर भी यह लक्ष्मी चली जाती है। अत्यन्त घमण्ड करने वाले हजारों योद्धाओं के द्वारा उठाई गई तलवारों रूपी पिंजरों में बंद की जाने पर भी, (यह लक्ष्मी) बचकर चली जाती है। मद जल की बहुत वर्षा से दिन में भी, अंधकार करने वाले हाथियों के समूह रूपी बादलों की घटाओं से सुरक्षित की जाने पर भी भाग जाती है।

भावार्थ— मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी की अस्थिरता के अनेक उदाहरण देते हुए कहते हैं कि इस लक्ष्मी को चाहे मजबूत रस्सियों से बाँध लिया जाए या उच्च गुणों से इसे रखा जाए तो भी यह नहीं रुकती है। हजारों योद्धा भी इसकी रक्षा करें तो भी चली जाती है। मदजल की वर्षा करने वाले हाथियों के द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती है। भाव यह है कि

लक्ष्मी की चंचलता के समक्ष सभी शक्तियाँ निरर्थक सिद्ध होती हैं।

विशेष– (1) लक्ष्मी की चंचलता को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है।
(2) 'दृढ़गुण' के दो अर्थ होने के कारण श्लेष अलंकार है।
(3) उद्दाम-दर्प....प्रपलायते' में विरोधाभास व रूपक अलंकार की छटा है।
(4) 'दुर्दिन' उस दिन को कहते हैं जब सघन वर्षा के कारण दिन में भी अंधकार व्याप्त हो जाता है।
(5) भाषा भावों के अनुरूप अंधकार व्याप्त हो जाता है।

❐

◆ ***न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रमम्नुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति।***

शब्दार्थ– **न परिचयं रक्षति** = न तो यह परिचय (के सम्मान) की रक्षा करती है। **न अभिजनं ईक्षते** = न कुलीन व्यक्ति पर ध्यान देती है। **न रूपं आलोकयते** = न सुंदर रूप को देखती है। **न कुलक्रमं अनुवर्तते** = न वंश परम्परा के अनुसार चलती है। **न शीलं पश्यति** = न सदाचार को देखती है। **न वैदग्ध्यं गणयति** = न निपुणता को कुछ समझती है। **न श्रुतम् आकर्णयति** = न शास्त्र की बातों को सुनती है। **न धर्मं अनुरुध्यते** = न धर्म का अनुरोध (प्रार्थना) स्वीकार करती है। **न त्यागं आद्रियते** = न त्याग का आदर करती है। **न विशेषज्ञतां** = न किसी के विशिष्ट ज्ञान पर। **विचारयति** = विचार करती है। **न आचारं पालयति** = न शिष्टाचार का पालन करती है। **न सत्यं अनुबुध्यते** = न सत्य को मान्यता देती है। **न लक्षणं प्रमाणीकरोति** = न शुभलक्षण को प्रमाण मानती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। सच्चे उपदेशक शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी की चंचलता और स्वार्थ-भावना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

सरलार्थ– (हे चन्द्रापीड!) यह लक्ष्मी न तो किसी के परिचय (के मान) की रक्षा करती है, न कुलीन व्यक्ति पर ध्यान देती है। न किसी के सुंदर रूप को देखती है, न किसी की वंश परम्परा के अनुसार चलती है, न किसी के सदाचार को देखती है, न निपुणता को कुछ समझती है, न शास्त्र की बातों को सुनती है, न धर्म का अनुरोध (प्रार्थना) स्वीकार करती है, न त्याग से पिघलती है, न आदर करती है न किसी के विशिष्ट ज्ञान पर विचार करती है, न शिष्टाचार का पालन करती है, न सत्य को मान्यता देती है और न किसी के शुभ लक्षण को प्रमाण मानती है।

भावार्थ– विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी की चंचलता के विषय में बताते हैं कि यह लक्ष्मी किसी भी पुरुष के पास स्थिर होकर नहीं रहती, चाहे कोई चिरपरिचित हो, कुलीन हो, अत्यन्त सुंदर हो, कुल परम्परा से किसी के पास रही हो, सदाचारी, चतुर, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, त्यागी या भले ही विशेषज्ञ हो, किसी के पास नहीं रहती। इसका न कोई शिष्टाचार है, न सच्चाई है। यदि कोई शुभ लक्षणों वाला भी है तो भी आवश्यक नहीं कि लक्ष्मी उसके पास रहेगी। इसकी चंचलता की कथा विचित्र है।

विशेष– (1) लक्ष्मी (धन) की स्वाभाविक विचित्रता का चित्रण किया गया है।
(2) सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षा अलंकार का सौंदर्य है।
(3) लक्ष्मी गुणवानों के साथ चिरकाल तक नहीं रहती है।
(4) छोटे-छोटे वाक्य होने से व्यास शैली प्रयुक्त है।
(5) भाषा सरल होने से प्रसाद गुण-सम्पन्न है।

❐

◆ ***गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरण व्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्।*** (म.द.वि. 2008)

शब्दार्थ– **गन्धर्वनगर-लेखा-इव** = गन्धर्वनगर की रेखा के समान, आकाश के बादलों की कल्पना के समान। **पश्यतः एव** = देखते ही देखते। **नश्यति** = नष्ट हो जाती है। **अद्य-अपि** = आज भी। **आरुढ़-मन्दर-परिवर्त-आवर्त-भ्रान्ति-जनित-संस्कारा इव** = मन्दराचल (रूपी मथनी) के चलने से (समुद्र की) भँवर के कारण (लक्ष्मी भी) मानो घूमने के संस्कार वाली। **परिभ्रमति** = चारों ओर घूमती रहती है। **कमलिनी-संचरण-व्यतिकर-लग्न-नाल-कण्टका इव** = कमलिनी पर चलने से (पैरों में) लगे हुए कमलदण्ड के कांटों के कारण ही मानो। **न क्वचिद् अपि निर्भरं पदं आबध्नाति** = कहीं पर भी दृढ़ता से पैरों को नहीं रख पाती है। **परमेश्वर-गृहेषु** = धनवानों के घरों में। **अति प्रयत्न-विधृता अपि** = बहुत प्रयास से सुरक्षित रखी जाने पर भी। **विविध-गन्ध-गज-गण्ड-मधुपान-मत्ता इव** = अनेक मद वाले हाथियों के कपोलों से मदजल को पीकर ही मानो। **परिस्खलति** = फिसल कर चली जाती है। **पारुष्यं इव उपशिक्षितुं** = कठोरता को सीखने के लिए ही मानो। **नारायण-मूर्ति आश्रिता** = (इसने) भगवान् नारायण के शरीर का आश्रय ले रखा है। **अप्रत्यय-बहुला** = अत्यन्त विश्वास-रहित। **दिवस-अन्त-कमलं इव** = दिन के अन्त में कमल के समान। **समुपचित-मूल-दण्ड-कोश-मण्डलम् अपि** = समृद्ध जड़, नालदण्ड व कोमलमण्डल, बढ़े हुए मूलधन, दण्ड व्यवस्था व खजाना आदि वाले। **भूभुजम् मुञ्चति** = राजा का भी साथ छोड़ देती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। विविध-शास्त्रों के ज्ञाता गुरुवर शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी की चंचलता बताते हुए कहता है–

सरलार्थ– (हे चन्द्रापीड! यह चंचला लक्ष्मी) गन्धर्वनगर (आकाश के बादलों में कल्पना) के समान ही देखते ही देखते नष्ट हो जाती है। मंदराचल (रूपी मथनी के) चलने से (समुद्र की) भँवरों के कारण (लक्ष्मी भी) मानों घूमने के संस्कार को प्राप्त करने वाली होकर आज भी चारों ओर घूमती रहती है। कमलिनी पर चलने से (पैरों में) लगे हुए कमलदण्ड के काँटों के कारण ही मानो कहीं पर भी दृढ़ता से चरणों को नहीं रख पाती है। अर्थात् सभी जगह अस्थिर रहती है। धनवानों के घरों में बहुत प्रयास से सुरक्षित रखी जाने पर भी, अनेक मद वाले हाथियों के कपोलों से मदजल को पीकर ही मानो फिसलकर चली जाती है। कठोरता सीखने के लिए ही मानो तलवारों की तेज धाराओं में रहती है। अनेक रूपों को सीखने के लिए ही मानो (इसने) भगवान् नारायण के शरीर का आश्रय ले रखा है। यह अत्यन्त विश्वास-रहित है। यह (लक्ष्मी) समृद्ध जड़, नालदण्ड व कोष वाले कमल को दिन के अंत में उसी प्रकार छोड़ देती है जैसे बढ़े हुए मूलधन, दण्डव्यवस्था व खजाने वाले राजा का साथ नहीं देती है।

भावार्थ– यह लक्ष्मी अत्यन्त चंचला है। आकाश में जैसे बादलों में अनेक प्रकार के काल्पनिक रूप दिखाई देते हैं और नष्ट हो जाते हैं वैसे ही यह लक्ष्मी देखते-देखते विनाश हो जाती है। समुद्र मंथन के समय जब मन्दराचल मथनी के रूप में घूम रहा था, मानो इस लक्ष्मी ने भी वहीं से घूमने (अस्थिर रहने) के संस्कार को प्राप्त किया था। लक्ष्मी कमल पर निवास करती है, परंतु वहाँ से मानो कमलदण्ड के काँटे लग जाने के भय से भाग जाती है। राजा व धनवान् इसे बहुत सुरक्षित रखते हैं, फिर भी वहाँ से भाग जाती है। भगवान् नारायण के साथ इसीलिए रहती है जिससे मानो वहाँ रहकर यह कठोरता को सीखती है। जिस प्रकार संध्या के समय यह कमल को छोड़कर चली जाती है उसी प्रकार राजाओं को भी छोड़कर चली जाती है। इस लक्ष्मी पर किसी प्रकार का विश्वास नहीं करना चाहिए।

विशेष–
(1) लक्ष्मी की स्वाभाविक चंचलता का चित्रण किया गया है।
(2) समुद्र मन्थन में जो जल घूम रहा था मानो इसी कारण लक्ष्मी भ्रमण करती है।
(3) 'गन्धर्व...नश्यति' में उपमा अलंकार है।
(4) संपूर्ण गद्यांश में उत्प्रेक्षा अलंकार का सौंदर्य है।
(5) 'समुचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि' के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार है।
(6) अनुप्रासमयी भाषा है।

❐

◆ *लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी। दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति।* *(म.द.वि. 2009)*

शब्दार्थ– **लता इव** = लता के समान। **विटपकान्** = वृक्षों पर, धूर्तों के रक्षकों पर। **आरोहति** = चढ़ जाती है, पास चली जाती है। **गङ्गा इव** = गंगा के समान। **वसु-जननी अपि** = आठ वसुओं की माता होकर भी, धन को पैदा करने वाली होकर भी। **तरङ्ग-बुद्बुद्-चंचलता** = तरङ्गों और बुलबुलों के समान चंचल है। **दिवसकर-गति इव** = सूर्य की गति के समान। **प्रकटित-विविध-संक्रान्ति** = अनेक संक्रांतियों को प्रकट करने वाली, अनेक पुरुषों के पास जाने वाली। **पातालगुहा इव** = पाताल की गुफा के समान। **तमो बहुला** = अधिक अंधकार वाली, तमोगुण वाली। **हिडिम्बा इव** = हिडिम्बा राक्षसनी के समान। **भीम-साहस-एक-हार्य-हृदया** = भीम के साहस से हरण किए गये हृदय वाली, भयंकर साहस से आकर्षित हृदय वाली। **प्रावृट् इव** = जिस प्रकार वर्षा। **अचिर-द्युतिकारिणी** = शीघ्र (कम समय में) बिजली चमकाने वाली होती है, शीघ्र अपनी चमक दिखाती है। **दुष्ट-पिशाची इव** = दुष्टा राक्षसनी के समान। **दर्शित-अनेक-पुरुष-छाया** = अनेक पुरुषों को अपनी छाया दिखाने वाली, विविध मानवों को अपनी कान्ति दिखाने वाली। **स्वल्प-सत्त्वम्-उन्मत्ती-करोति** = कम बल वाले को पागल कर देती है, कम बुद्धि वाले को उन्मत्त कर देती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। विद्वान् शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को लक्ष्मी की चंचलता पर प्रकाश डालता हुआ कहता है–

सरलार्थ– (पुत्र चन्द्रापीड! यह चंचला लक्ष्मी) धूर्तों के पास उसी प्रकार चली जाती है जैसे लता (बेल) वृक्षों के ऊपर चढ़ जाती है। जैसे गङ्गा नदी, वसुओं (देवों) की माता है तथा लहरों और बुलबुलों से चंचल है उसी प्रकार लक्ष्मी भी, धन को पैदा करने वाली है तथा लहरों और बुलबुलों के समान चंचल है। जैसे सूर्य की गति, संक्रातियों को अनेक रूप से बताती है उसी प्रकार (लक्ष्मी भी), अनेक पुरुषों के पास जाने वाली है। जैसे पाताल की गुफा अधिक अंधकार वाली होती है। वैसे ही लक्ष्मी तमोगुण वाली है। जैसे हिडम्बा राक्षसी, भीम नामक पाण्डव द्वारा हरण किए गये हृदय वाली है (अर्थात् उसको भीम ने अपनी पत्नी बनाया था।) उसी प्रकार लक्ष्मी भी, भयंकर साहस (दुःसाहस) करने वाले से हरण कर ली जाती है। जिस प्रकार वर्षा, शीघ्र (कम समय में) बिजली चमकाने वाली होती है। उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी, बहुत समय तक अपनी चमक (प्रभा) नहीं दिखाती अर्थात् शीघ्र चली जाती है। जैसे दुष्टा राक्षसनी, अनेक पुरुषों को अपनी छाया दिखाकर कम बल वाले (शक्तिहीन) को पागल बना देती है। उसी प्रकार लक्ष्मी भी विविध मानवों को अपनी कांति दिखाने वाली है तथा कम बुद्धि वाले को उन्मत्त (पागल) कर देती है।

भावार्थ– यह लक्ष्मी विचित्र है। धूर्तों व दुष्टों से भी प्रेम करती है। जल के बुलबुले के समान अस्थिर है। सूर्य की गति जैसे उत्तरायण व दक्षिणायन होती है। वैसे ही लक्ष्मी कभी सीधी गति चलती है तो कभी विपरीत गति वाली होती है। भीम पाण्डव से जैसे हिडम्बा राक्षसनी से प्रेम किया था वैसे ही लक्ष्मी भी भयंकर व्यक्तियों से प्रेम करती है। वर्षा में जैसे बिजली शीघ्र चमकती है और छिप जाती है उसी प्रकार लक्ष्मी आकर शीघ्र चली जाती है। जैसे पाताल की गुफा में अंधकार ही अंधकार रहता है वैसे ही लक्ष्मी प्राप्त करने पर अवगुण ही अवगुण आ जाते हैं। जैसे राक्षसिनी अपनी भयंकर परछाई से सभी को दिखाती है वैसे ही लक्ष्मी अपनी प्रभा से सभी को आकर्षित करती है। जिसके पास कम बल या कम बुद्धि है वह तो मानों लक्ष्मी को देखकर पागल सा बन जाता है।

विशेष– (1) यहाँ पर लक्ष्मी की विचित्रता और अस्थिरता का मनोरम चित्रण किया गया है।
(2) सभी वाक्यों में पूर्णोयमा अलंकार है।
(3) विरपक, वसुजननी, संक्रान्ति, तम, भीम, छाया, स्वत्पसत्त्व–शब्दों के दो-दो अर्थ होने से सर्वत्र पूलेष अलंकार है।
(4) लघु वाक्यों की सुन्दर योजना है।
(5) व्यास-शैली का मनोरम उदाहरण है।

◆ *सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्त्वममङ्गलमिव न बहुमन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति।* (म.द.वि. 2010, 20[illegible]

शब्दार्थ– **सरस्वती-परिगृहीतं** = सरस्वती को प्राप्त करने वाले व्यक्ति से। **ईर्ष्या इव न आलिङ्गति** = मानो ईर्ष्या के कारण [illegible] नहीं करती है। **गुणवन्त जनम्** = गुणवान् पुरुष को। **अपवित्रम् इव** = मानो अपवित्र समझकर। **न स्पृशति** = उ[illegible]

स्पर्श भी नहीं करती है। **उदार-सत्त्वं** = उदार प्राणी को। **अमंगलम् इव न बहुमन्यते** = अशुभ के समान मानकर उसका बहुत सम्मान नहीं करती। **सुजनम्** = सदाचारी व्यक्ति को। **अनिमित्तं इव न पश्यति** = मानो अपशकुन समझकर नहीं देखती है। **अभिजातम्** = कुलीन पुरुष को। **अहिं इव लङ्घयति** = साँप समझकर मानो उसको पार करके चली जाती है। **शूरं** = वीर पुरुष को। **कण्टकं इव** = काँटे के समान। **परिहरति** = परित्याग कर देती है। **दातारं** = दानी पुरुष को। **दुःस्वप्नं इव** = अशुभ स्वप्न के समान। **न स्मरति** = याद नहीं करती है। **विनीतं** = विनयी पुरुष को। **पातकिनं इव** = पापी के समान समझकर उसके। **न उपसर्पति** = पास में नहीं जाती है। **मनस्विनं** = स्वाभिमानी की। **उन्मत्तम् इव** = पागल के समान। **उपहसति** = हँसी उड़ाती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्‌धृत है। महान् अनुभवी विद्वान् शुकनास नामक मंत्री, चन्द्रापीड को लक्ष्मी की अस्थिरता प्रस्तुत करता हुआ कहता है–

सरलार्थ– (हे पुत्र चन्द्रापीड! यह चंचला लक्ष्मी) सरस्वती को प्राप्त करने वाले अर्थात् विद्वान् पुरुष से मानो ईर्ष्या के कारण प्रेम नहीं करती है। गुणवान् पुरुष को मानो अपवित्र समझकर उसका स्पर्श भी नहीं करती है। उदार प्राणी को अशुभ के समान मानकर उसका बहुत सम्मान नहीं करती है। सदाचारी व्यक्ति को मानो अपशकुन समझकर उसे नहीं देखती है। कुलीन पुरुष को साँप समझकर उसको पार करके चली जाती है। वीर पुरुष का काँटे के समान परित्याग कर देती है। दानी पुरुष को अशुभ स्वप्न के समान याद नहीं करती है। विनयी के पास पापी के समान नहीं जाती है। स्वाभिमानी की पागल के समान हँसी उड़ाती है।

भावार्थ– शुकनास मंत्री ने लक्ष्मी की चंचलता और अस्थिरता को प्रस्तुत करते हुए अनेक उदाहरण दिए हैं तथा बताया है कि लक्ष्मी इतनी विचित्र नारी है कि यह विद्वान्, गुणवान्, उदार, सुजन, कुलीन (उच्च कुल वाला) वीर, दानी, विनयी, मनस्वी आदि किसी भी पुरुष के पास नहीं रहती है। यदि कदाचित् इनमें से किसी के पास आ जाती है तो इन्हें तुच्छ समझकर इनके पास से चली जाती है। अर्थात् गुणवानों को भी कुछ नहीं समझती है।

विशेष– (1) सद्-गुणवानों से द्वेष करने से लक्ष्मी की चंचलता प्रस्तुत की गयी है।
(2) सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ उपमा अलंकार को सुंदर समन्वय है।
(3) छोटे-छोटे वाक्यों में व्यास शैली प्रयोग की गयी है।
(4) भाषा सुबोधगम्य होने पर प्रसाद गुण है।

❐

◆ ***परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथाहि, सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानामपि नीचस्वभावतामविष्करोति। तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्य प्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।***

(म.द.वि. 2005, 2011)

शब्दार्थ– **परस्पर-विरुद्धं च** = और आपस में विरोधी। **इन्द्रजालं इव** = जादू के समान्। **जगति** = संसार में। **दर्शयन्ती** = दिखाती हुई। **निज चरितं प्रकटयति** = अपनी जीवनी को प्रदर्शित करती है। **तथाहि** = जैसे। **सततम्** = निरंतर। **ऊष्माणं** = गर्मी, घमण्ड। **उपजनयन्ती अपि** = पैदा करती हुई भी। **जाड्यम्** = शीतलता, मूर्खता को। **उपजनयति** = प्रदान करती है। **उन्नतिं** = प्रगति, उच्चता को। **आदधाना अपि** = प्रस्तुत करती हुई भी। **नीच-स्वभावतां** = निम्नता, तुच्छ स्वभाव को। **आविष्करोति** = उत्पन्न करती है। **तोय-राशि-संभवा अपि** = समुद्र से उत्पन्न होने पर भी। **तृष्णां** = प्यास, लालसा को। **संवर्धयति** = बढ़ाती है। **ईश्वरतां** = शिवत्व, ऐश्वर्यत्व को। **दधाना अपि** = धारण करती हुई भी। **अशिव-प्रकृति-तित्वं** = शिव रहित, अशुभ का। **आतनोति** = विस्तार करती रहती है। **बल-उपचयं** = शक्ति समूह, सेना को एकत्रित। **आहरन्ती अपि** = करती हुई भी। **लघिमानं** = दुर्बलता, तुच्छता को। **आपादयति** = प्राप्त करा देती है। **अमृत-सहोदरा** = अमृत की सगी बहन होने पर भी। **कटुक-विपाका** = कडुए परिणाम वाली है। **विग्रहवती** = शरीर धारण करने वाली, झगड़ा कराने वाली। **अपि** = भी। **अप्रत्यक्ष-दर्शना** = साक्षात् दिखाई नहीं पड़ती है। **पुरुषोत्तमरता अपि** = विष्णु भगवान, उत्तम पुरुष में आसक्त होकर भी। **खलजनप्रिया** = दुष्टों की प्रेमिका है। **रेणुमयी इव** = धूल से बनी हुई, रजोगुण वाली होकर भी। **स्वच्छम् अपि** = निर्मल पुरुषों को भी। **कलुषी करोति** = मैला बना देती है, तुच्छ हृदय वाला बना देती है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। महान् विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के विरोधी तत्त्वों को बताते हुए उसकी तुच्छता पर प्रकाश डालता है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड! यह चंचला लक्ष्मी) संसार में परस्पर विरोधी अपने चरित (जीवन) को जादू के समान दिखाती हुई, अपने को प्रदर्शित करती है। अर्थात् इसके चरित में विरोधी विशेषताएँ हैं। जैसे—निरन्तर गर्मी को पैदा करती हुई भी शीतलता प्रदान करती है अर्थात् सदा घमण्ड पैदा करती हुई भी मूर्खता प्रदान करती है। यह उच्चता को प्रस्तुत करती हुई भी निम्नता (नीचेपन) को उत्पन्न करती है अर्थात् प्रगति प्रदान करती हुई भी तुच्छ-स्वभाव को पैदा करती है। यह समुद्र (जल समूह) से उत्पन्न होने पर भी प्यास को बढ़ाती है अर्थात् यह लालसा को बढ़ाती रहती है। यह शिवत्व (कल्याण) को धारण करती हुई भी अशिवत्व (अमंगलता) का विस्तार करती है अर्थात् ऐश्वर्यता को धारण करती हुई भी अशुभ का विस्तार करती रहती है। यह शक्ति समूह को प्रदान करती हुई भी दुर्बलता प्राप्त करा देती है। भाव यह है कि यह लक्ष्मी शक्ति को एकत्रित कराती हुई भी तुच्छता को प्राप्त करा देती है। यह अमृत की सगी बहन होने पर भी कड़ुए परिणाम वाली है। यह शरीर धारण करने वाली होने पर प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ती है अर्थात् यह झगड़ा करा देती है फिर भी नहीं दिखाई देती। यह विष्णु भगवान् के प्रति आसक्त है, फिर भी दुष्टों की प्रेमिका है। अर्थात् उत्तम पुरुषों के पास रहकर भी, दुष्ट इसे प्यार करते हैं। यह मानो धूलि से बनी हुई है। इसी कारण निर्मल पुरुष को भी मैला कर देती है अर्थात् यह रजोगुण वाली होकर भी स्वच्छ पुरुष को तुच्छ (पापी) बना देती है।

भावार्थ— लक्ष्मी संसार में अपने चरित को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि उसमें विरोधी बातें दिखाई पड़ती हैं। जैसे—गर्मी को पैदा करके भी शीतलता या तुच्छता को पैदा करती है अर्थात् धन प्राप्त करके व्यक्ति घमण्डी हो जाता है, परन्तु तुच्छ कार्य करने लगता है। लक्ष्मी मानव को नीच स्वभाव का बना देती है। सदा मानव में लालसा पैदा करती रहती है। सदा अमंगल प्रदान करती है। तुच्छता, कड़ुआ परिणाम आदि भी लक्ष्मी अप्रत्यक्ष रूप में प्रदान करती है। भले ही यह नारायण भगवान के समीप रहती हो, परन्तु दुष्ट भी इसे अपनी प्रेमिका मानते हैं। इतना ही नहीं, जिसके पास यह लक्ष्मी जाती है उसको पापी बना देती है।

विशेष—
(1) लक्ष्मी में परस्पर विरोधी गुणों के द्वारा उसकी अस्थिरता को प्रदर्शित किया गया है।
(2) 'परस्पर...चरितम्' में उपमा अलंकार है।
(3) प्रायः सभी वाक्यों में विरोधाभास व श्लेष अलंकार का समन्वय सुंदरता के साथ प्रदर्शित है।
(4) लक्ष्मी को पुरुषोत्तम अर्थात् विष्णु भगवान् की सहचरी माना जाता है।
(5) छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया गया है।

◆ ***यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्।*** (म.द.वि. 2006)

शब्दार्थ— **यथा यथा च इयं चपला** = जैसे-जैसे यह चंचल लक्ष्मी। **दीप्यते** = अपनी चमक दिखाती है। **तथा-तथा** = वैसे-वैसे। **दीप-शिखा इव** = दीपक की लौ के समान। **कज्जल-मलिनम्** = काजल के समान काले, अशुभ। **कर्म केवलं उद्वमति** = एकमात्र कर्म को प्रदान करती है। **तथाहि** = जैसे। **इयं** = यह लक्ष्मी। **तृष्णा-विष-वल्लीनाम्** = लालसा रूपी ज़हर की बेलों को। **संवर्धन-वारिधारा** = बढ़ाने के लिए जल की धारा के समान है। **इन्द्रिय-मृगणां** = इन्द्रिय रूपी हिरणों के लिए। **व्याध-गीति** = शिकारी के मधुरगीत के समान है। **सच्चरित-चित्राणां** = अच्छे चरित्र रूपी चित्रों के लिए। **परामर्श-धूम-लेखा** = ढक देने वाली धुएँ की रेखा के समान है। **मोह-दीर्घ-निद्राणाम्** = मोह रूपी गहरी नींद के लिए। **विभ्रम शय्या** = विलासता पूर्ण शय्या है। **धन-मद-पिशाचिकानां** = धन के अहंकार रूपी राक्षसनियों के। **निवास-जीर्ण-वलभी** = रहने के लिए खण्डित अटारी है। **शास्त्र-दृष्टीनाम्** = शास्त्र रूपी नेत्रों के लिए। **तिमिर-उद्गति** = तिमिर रोग को उत्पन्न करने वाली है। **सर्व-अविनयानां** = सभी प्रकार की धूर्तता के। **पुरःपताका** = आगे रहने वाली पताका है। **क्रोध-वेग-ग्राहाणां** = तीव्र क्रोध रूपी मगरमच्छों को। **उत्पत्ति-निम्नगा** = उत्पन्न करने के लिए नदी के समान है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। महान् विद्वान् शुकनास नामक मंत्री, प्रिय चन्द्रापीड को लक्ष्मी की तुच्छता को बताते हुए कहता है—

सरलार्थ— (हे प्रिय चन्द्रापीड!) जैसे-जैसे यह चंचल लक्ष्मी किसी को अपनी चमक दिखाती है वैसे-वैसे दीपक की लौ के समान केवल अशुभ और काजल के समान काले कर्म प्रदान करती है। जैसे—यह लक्ष्मी लालसा रूपी ज़हर की बेलों को बढ़ाने के लिए जल की धारा के समान है अर्थात् यह लालसा पैदा करती रहती है। इन्द्रिय रूपी हिरणों के लिए शिकारी के मधुर गीत के समान है। अर्थात् यह इन्द्रियों को अपने आधीन करती है। यह अच्छे चरित्र रूपी चित्रों को ढक देने के लिए धुएँ की रेखा के समान है। मोह रूपी गहरी नींद के लिए विलासिता पूर्ण शय्या है। धन के अहंकार रूपी राक्षसनियों के रहने के लिए खण्डित अटारी है। शास्त्र रूपी नेत्रों के लिए तिमिर नामक रोग उत्पन्न करने वाली है। सभी प्रकार की धूर्तता के आगे रहने वाली पताका है। तीव्र क्रोध रूपी मगरमच्छों को उत्पन्न करने के लिए नदी के समान है।

भावार्थ— जिस-जिस व्यक्ति के पास यह लक्ष्मी रहती है वह केवल निम्न कर्म करने लगता है। यह तृष्णा (लालसा) को प्रदान करती है। अच्छे आचरण को समाप्त करती है। मोह को बढ़ाती है। धन से मदोन्मत्त बनाती है। शास्त्र की रीति को मिटाती है तथा सदा अविनय को आगे रखती है। लक्ष्मी के कारण ही मानव में तेज क्रोध आता है।

विशेष— (1) इस गद्य-खण्ड में लक्ष्मी को विविध दोष उत्पन्न करके वाली कहा गया है।
(2) सभी वाक्यों में उपमा अलंकार का सौंदर्य है।
(3) तृष्णा-विषवल्ली, इन्द्रिय-मृग, सच्चरित-चित्र, मोहदीर्घनिद्रा, धनमदपिशाचिका, क्रोधग्राह में रूपक अलंकार सुशोभित है।
(4) व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।
(5) भाषा भावों के अनुरूप होने पर भी अलंकृत है।

❑

◆ ***आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संङ्गीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड्गुणकलहंसानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य।***

शब्दार्थ— **विषय-मधूनाम्** = भोग-विषय रूपी मदिराओं को। **आपानभूमिः** = पीने का स्थान (शराब घर) है। **भ्रू-विकार-वाट्यानां** = भ्रू के विकारों के नाटकों की। **संगीतशाला** = रंगभूमि है। **दोष-आशी-विषाणाम्** = दोषों रूपी जहरीले सर्पों के लिए। **आवास-दरी** = रहने की गुफा है। **सत्-पुरुष-व्यवहाराणाम्** = सज्जनों के व्यवहारों को। **उत्सारण-वेत्र लता** = दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। **गुण-कल-हंसकानाम्** = गुण के सुंदर हंसों के लिए। **अकाल-प्रावृड्** = अचानक होने वाली वर्षा है। **लोक अपवाद-विस्फोटकानाम्** = लोक में व्याप्त अपवादों रूपी फोड़ों के लिए। **विसर्पण भूमि** = फैलने का स्थान है। **कपट-नाटकस्य** = कपटरूपी नाटक के लिए। **प्रस्तावना** = भूमिका है। **काम-करिणः** = कामदेव रूपी हाथी के लिए। **कदलिका** = केले का पेड़ है। **साधुभावस्य** = सज्जता के भावों को। **बध्यशाला** = नष्ट करने का स्थान है। **धर्मेन्दु-मण्डलस्य** = धर्म रूपी चन्द्रमंडल के लिए। **राहु-जिह्वा** = राहु की जीभ है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। परम शास्त्रज्ञाता शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों का वर्णन करता हुआ कहता है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड! यह लक्ष्मी) विषय-भोग रूपी मदिराओं को पीने का स्थान (शराब घर) है। भ्रू के विकारों के नाटकों की संगीतशाला या रंगमंच है। दोषों रूपी जहरीले साँपों के रहने की गुफा है। सज्जनों के व्यवहारों को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुण के सुंदर हंसों के लिए अचानक होने वाली वर्षा है। लोक में व्याप्त अपवादों रूपी फोड़े के लिए फैलने का स्थान है। कपट रूपी नाटक के लिए भूमिका है। कामदेव रूपी हाथी के लिए केले का पेड़ है। सज्जनता के भावों को नष्ट करने का स्थान है। धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जीभ है।

भावार्थ— शुकनास ने लक्ष्मी के दोषों को रूपक के माध्यम से संभावना करते हुए यह गद्य प्रस्तुत किया है। यह लक्ष्मी क्रोध के आवेग को पैदा करती है। विषय वासना को शराब के समान देकर नशा प्रदान करती है। लक्ष्मी के कारण भ्रू-विकार आने लगते हैं, यह दोषों को प्रदान करती है, सज्जनों का व्यवहार दूर कर देती है। गुणों को समाप्त करती है। लोकापवादों

को फैलाती है। कपट को प्रदान करती है। काम वासना देती है। सज्जनता को समाप्त करती है तथा धर्म नष्ट कर देती है। इस प्रकार लक्ष्मी दोषों का घर है।

विशेष– (1) इस गद्यांश में लक्ष्मी के विविध दोषों का उद्घाटन किया गया है।
(2) सभी वाक्यों में संभावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) विषय-मधु, दोष-आशीविष, गुण-कलहंस, अपवाद-विस्फोटक, काम-करि, धर्मेन्दु में रूपक अलंकार है।
(4) लघु वाक्यों का प्रयोग किया गया है।
(5) सरल भाषा होने से प्रसाद गुण है।

❐

◆ ***न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसंधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।*** (म.द.वि. 2010)

शब्दार्थ– **न हि तं पश्यामि** = मैं किसी ऐसे पुरुष को नहीं देखता हूँ। **यः हि** = जिसका निश्चय रूप से। **अपरिचितया अनया** = इस अपरिचिता ने। **न निर्भरम् उपगूढः** = पूर्ण रूप से गले न लगाया हो। **यो वा न विप्रलब्धः** = अथवा जिसको इसने धोखा न दिया हो। **नियतम्** = निश्चित रूप से। **इयम्** = यह लक्ष्मी। **आलेख्यगता अपि** = चित्र में स्थित होने पर भी। **चलति** = चली जाती है। **पुस्त-मयी अपि** = धातु की बनी हुई होने पर भी। **इन्द्रजालम् आचरति** = जादू के समान आचरण करती है। **उत्कीर्णा अपि** = कुरेदी हुई भी। **विप्रलभते** = छल-कपट करती है। **श्रुता अपि** = सुनी जाने पर भी। **अभिसंधत्ते** = ठग लेती है। **चिन्तिता अपि** = चिन्तन करने पर भी। **वञ्चयति** = छल करती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। महान् विद्वान् शुकनास नामक मंत्री चन्द्रापीड को लक्ष्मी के विषय में कहता है–

सरलार्थ– (हे चन्द्रापीड!) मैं किसी ऐसे पुरुष को नहीं देखता हूँ जिसको, निश्चय से इस अपरिचिता ने पूर्ण रूप से गले न लगाया हो अथवा जिसको इसने धोखा न दिया हो। निश्चित रूप से यह लक्ष्मी चित्र में स्थित होने पर भी चली जाती है। धातु की बनी हुई होने पर भी जादू के समान आचरण करती है। कुरेदी हुई भी छल-कपट करती है। सुनी जाने पर भी ठग लेती है। चिंतन करने पर भी छल करती है।

भावार्थ– शुकनास मंत्री का अनुभव है कि यह लक्ष्मी संसार के प्रत्येक व्यक्ति को गले लगाती है भले ही उसके साथ इसका परिचय न हो। संसार में ऐसा कोई भी नहीं है जिसे इसने धोखा न दिया हो। चित्रित या कुरेदी गयी वस्तु हिलती नहीं, परन्तु यह तो भाग जाती है। धातु के रूप में यह भाग जाती है। इसका चरित्र इतना विचित्र है कि चाहे इसका कितना ही चिंतन करें तो भी धोखा देकर चली जाती है और पुरुष इसे याद करता रह जाता है।

विशेष– (1) इस गद्य खण्ड में लक्ष्मी की प्रवञ्चना व अस्थिरता का चित्रण है।
(2) 'नियत...वाञ्चयति।' वाक्यों में विरोधाभास अलंकार है।
(3) लघु वाक्य होने से व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।
(4) भाषा की सरलता व प्रभावोत्पादकता है।

❐

◆ ***एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च गच्छन्ति। तथाहि, अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसंमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।***

(म.द.वि. 2001, 2004, 2007, 2010)

शब्दार्थ— **एवं विधया अपि च अनया** = इस प्रकार से यह। **दुराचारया** = बुरा आचरण करने वाली लक्ष्मी। **कथम् अपि दैववशेन** = किसी प्रकार संयोगवश। **राजानः परिगृहीता** = राजाओं पर कृपा करती है, राजा इसे अपना लेते हैं। **विक्लवाः भवन्ति** = तो वे व्याकुल हो जाते हैं। **सर्व-अविनय-अधिष्ठानतां च गच्छति** = और सभी अवगुणों के घर बन जाते हैं। **तथाहि** = जैसे। **अभिषेक-समये एव** = राज्याभिषेक के समय ही। **एतेषां** = इन राजाओं की। **दाक्षिण्यम्** = उदारता। **मंगल-कलश-जलैः इव** = मानो मांगलिक घड़ों के जलों से। **प्रक्षाल्यते** = धो दी जाती है। **अग्निकार्य-धूमेन इव** = यज्ञ के धुएँ से ही मानो। **हृदयम्** = हृदय। **मलिनी क्रियते** = मैले कर दिए जाते हैं। **पुरोहित-कुश-अग्र-संमार्जनीभिः इव** = मानो पुरोहित की कुशा की झाड़ू के अग्रभाग से। **क्षान्तिः अपह्रियते** = क्षमा दूर कर दी जाती है। **उष्णीष-पट्ट-बन्धेन इव** = मानो पगड़ी के कपड़े को बाँधते ही। **जरा-आगमन-स्मरण** = वृद्धावस्था के आने की स्मृति को। **आच्छाद्यते** = ढक दिया जाता है। **आतपत्र-मण्डलेन इव** = छत्र-मण्डल से मानो। **परलोक-दर्शनम् अपसार्यते** = परलोक में जाने के विचारों को दूर कर दिया जाता है। **चामर-पवनैः इव** = मानो चामर की वायु से। **सत्यवादिता** = सत्य बोलना। **अपह्रियते** = दूर कर दिया जाता है। **वेत्रदण्डैः इव** = मानो बेंत की छड़ियों से। **गुणाः उत्सार्यन्ते** = गुणों को हटा दिया जाता है। **जय-शब्द कलकल रवैः इव** = जयकार के सुन्दर शब्दों से मानो। **साधुवा यदाः तिरस्क्रियन्ते** = सुन्दर वाणी को दबा दिया जाता है। **ध्वज-पट-पल्लवैः इव** = ध्वजाओं के वस्त्रों से मानो। **यशः परामृश्यते** = यश पोंछ दिया जाता है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
परम ज्ञानी शकुनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के कारण होने वाली राजाओं की विकृतियों पर प्रकाश डालते हुए कहता है—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड!) इस प्रकार से यह बुरा आचरण करने वाली लक्ष्मी, यदि किसी संयोगवश, राजाओं पर कृपा करती है या राजा इसे अपना लेते हैं तो वे व्याकुल हो जाते हैं और सभी अवगुणों के घर बन जाते है। उदाहरण के लिए— राज्याभिषेक के समय ही, इन राजाओं की उदारता मानो मांगलिक घड़ों के जलों से धो दी जाती हैं, यज्ञ के धुएँ से ही मानो इनके हृदय मैले कर दिए जाते हैं, मानो पुरोहित की कुशा की झाड़ू के अग्रभाग से उनकी क्षमा दूर कर दी जाती है, मानो पगड़ी के कपड़े के बाँधते ही उनमें वृद्धावस्था के आने की स्मृति को ढक दिया जाता है, छत्र-मण्डल से मानो परलोक में जाने के विचारों को दूर कर दिया जाता है, मानो चामर की वायु से उनका सत्य-बोलना, दूरकर दिया गया है, मानो बेंत की छड़ियों से उनके गुणों हटा दिया जाता है, मानो जयकार के सुन्दर शब्दों से उनकी सुन्दर वाणी को दबा दिया जाता है, ध्वजाओं के वस्त्रों से मानो यश पोंछ दिया जाता है।

भावार्थ— शुकनास कहते हैं कि यह लक्ष्मी इतने अपवित्र आचरण वाली है कि राजाओं की बनकर भी उन्हें व्याकुल बना देती है और वे अनेक प्रकार के पापाचरण करने लगते हैं। राज्याभिषेक के समय मंगलकलश, यज्ञ, पुरोहित की कुशा की झाड़ू, पगड़ी धारण करना, छत्र को धारण करना, चामर की हवा, बेंत, जयकार का शब्द और ध्वजा आदि का प्रयोग होता है जिनसे मानो राजाओं की चतुरता, क्षमा, सत्यवादिता, परलोक का भय, गुण, मधुरवचन, यश आदि सभी समाप्त हो जाते हैं। लक्ष्मी का मद इतना तीव्र व विषम होता है कि राजा बनते ही व्यक्ति सभी अच्छाइयों और सद्गुणों को भुला देता है।

विशेष— (1) इस गद्यांश में लक्ष्मी के कारण राजाओं में उत्पन्न होने वाले दोषों का चित्रण किया गया है।
(2) 'अभिषेक...यशः' में उत्प्रेक्षा अलंकारों का सौंदर्य है।
(3) राज्याभिषे के विविध-विधानों का उल्लेख किया गया है।
(4) भाषा भावों के अनुरूप मनोरम है।
(5) व्यास-शैली का प्रयोग है।

◆ ***तथाहि, केचिद्भ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः सम्पद्भिः प्रलोभ्यमानाः, धनलवलाभापलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषाटासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः, प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्रतामुपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति।***

शब्दार्थ— **तथाहि** = और भी। **केचिद्** = कुछ राजा। **श्रम-वश-शिथिल-शकुनि-गल-पुट-चटुलाभिः** = परिश्रम के कारण शिथिल (ढ़ीली) पक्षी की गर्दन के समान चञ्चल। **खद्योत-उन्मेष-मुहूर्त-मनोहराभिः** = जुगनुओं की चमक के समान क्षणभर सुन्दर। **मनस्वि-जन-गर्हिताभिः** = मनस्वीजनों के द्वारा निन्दनीय। **संपद्भिः** = सम्पत्तियों से। **प्रलोभ्यमानाः** = लोभ को प्राप्त हुए। **धन-लव-लाभ-अपलेप-विस्मृत-जन्मानः** = थोड़े से धन के लाभ के अहंकार के कारण अपने जन्म को भी याद न करते हुए। **अनेक-दोष-उपचितेन** = बहुत से शारीरिक दोषों से। **दोष-असृज इव** = दूषित खून के समान। **राग-आवशेन** = प्रेम के आवेश में। **बाध्यमानाः** = पीड़ित किए जाते हुए। **विविध-विषय-ग्रास-लालसैः** = अनेक प्रकार की विषय-भागों के ग्रास (टुकड़ों) की इच्छाओं के द्वारा। **पञ्चभिः अपि** = पाँच होती हुई भी। **अनेक सहस्र-संख्यैः इव इन्द्रियैः** = मानो हजारों संख्या में इन्द्रियों के द्वारा। **आयास्यमानाः** = दुःखी किए जाते हुए। **प्रकृति-चञ्चलतया** = स्वभाव से चञ्चल होने पर भी। **लब्ध-प्रसरेण** = अवसर प्राप्त किए गये। **एकेन अपि** = एक होते हुए भी। **शत-सहस्रतां इव उपगतेन** = सैंकड़ों-हजारों रूपों को मानो प्राप्त करके। **मनसा आकुलीक्रियमाणा** = मन से बहुत व्याकुल कर दिए जाने पर। **विह्वलतां उपयान्ति** = अत्यन्त खिन्न और उदास हो जाते हैं।

प्रसंग— **प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। प्रकाण्ड विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों को बताता है कि वह कुछ राजाओं को भी किस प्रकार व्याकुल कर देती है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड!) इस लक्ष्मी के विषय में और भी दोष हैं। कुछ राजागण परिश्रम के कारण शिथिल (ढ़ीली) पक्षी की गर्दन के समान चञ्चल, जुगनुओं की चमक के समान क्षणभर सुन्दर तथा मनस्वी जनों के द्वारा निन्दनीय सम्पत्तियों से (लक्ष्मी से) राजा लोभ को प्राप्त होते हैं तथा थोड़े से धन के लाभ के अहंकार के कारण अपने जन्म को भी याद नहीं करते हैं। बहुत से शारीरिक दोषों के होने पर भी दूषित खून के समान ये प्रेम के आवेश से (शरीर से) पीड़ित किए जाते हैं। अनेक प्रकार की विषय भोगों के ग्रास (टुकड़ों) की इच्छाओं के द्वारा, पाँच होती हुई भी, मानों हजारों की संख्या में इन्द्रियों के द्वारा दुःखी किए जाते हैं। स्वभाव से चञ्चल होने के कारण, अवसर प्राप्त किए गये, एक होते हुए भी, सैंकड़ों, हजारों रूपों को मानों प्राप्त करके मन से बहुत व्याकुल कर दिए जाते हैं। जिससे वे अत्यन्त खिन्न या उदास हो जाते हैं।

भावार्थ— मंत्री शुकनास का कथन है कि कुछ राजा लोग लक्ष्मी के वश में शीघ्र हो जाते हैं जो लक्ष्मी चञ्चल, क्षणभर चमक दिखाने वाली और निन्दा योग्य है। कुछ तो धन के अहंकार से इतने चूर हो जाते हैं कि उन्हें यहीं नहीं पता है कि उनका भी कर्मों के अनुसार जन्म हुआ है और अशुभ कर्म करने से अशुभ गति मिलेगी। जैसे शरीर वात, पित्त, कफ विकारों से पीड़ित होकर रक्त विकार से युक्त होता है वैसे ही काम-क्रोध आदि से पीड़ित होकर विषय-भोगों से पीड़ित रहते है।। यद्यपि प्रत्येक मानव की पाँच इन्द्रियाँ हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, नेत्र। परन्तु ये लोग विषयों में इतने लम्पट होते हैं कि मानो उनकी इन्द्रियाँ हजारों हैं जिनसे ये विषयों में आसक्त हैं परन्तु उनसे दुःखी रहते हैं। इनका स्वभाव इतना चञ्चल रहता है कि एक मन होता हुआ भी अनेकों रूपों में दुःखी रहते हैं। ये सभी कारण हैं जिनसे राजा सम्पूर्ण जीवन में दुःखी रहता है।

विशेष—
(1) प्रस्तुत गद्य-खण्ड में लक्ष्मी की आसक्ति से दुःखों को प्राप्त होने वाले कुछ राजाओं का चित्रण किया गया है।
(2) यहां पर उपमा व उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुंदर समन्वय है।
(3) एक ही दीर्घ वाक्य में गहन भावों की अभिव्यक्ति है जो बाणभट्ट की शैली की विशेषता हैं
(4) भाषा भावों के अनुरूप है।

◻

◆ ***ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण सञ्चार्यन्ते, मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति।***

शब्दार्थ— **ग्रहैः इव गृह्यन्ते** = मानो गृहों के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। **भूतैः इव अभिभूयन्ते** = मानो भूतों के द्वारा तिरस्कार किए जाते हैं। **मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते** = मानो मन्त्रों से वशीभूत हो जाते हैं। **सत्त्वैः इव अवष्टभ्यन्ते** = मानो हिंसक पशुओं का शिकार बना लिये जाते हैं। **वायुना इव विडम्ब्यन्ते** = मानो वायु रोग से पीड़ित किए गये हों। **पिशाचैः इव ग्रस्यन्ते** = मानो राक्षसों के द्वारा भक्षण किए गये हों। **मदनशरैः** = कामदेव के बाणों से। **मर्म आहता इव** = मार्मिक घायल होकर। **मुखभंग सहस्राणि कुर्वते** = हजारों मुख मुद्राएँ करते हैं। **धन-उष्मणा पच्यमाना इव** = धन की गर्मी से संतप्त होकर ही मानो। **विचेष्टन्ते** = कुचेष्टाएँ करते हैं। **गाढ-प्रहार-आहता इव** = तेज प्रहार से घायल होकर ही मानो। **अंगानि न धारयन्ति** = अंगों को नहीं धारण करते हैं। **कुलीरा इव** = मानो कैंकड़े के समान। **तिर्यक् परिभ्रमन्ति** = तिरछे (कुटिल, असभ्य) आचरण करते हैं। **अधर्म-भग्न-गतयः** = अधर्म के द्वारा मानो उनकी गति समाप्त कर दी गयी हो। **पंगवः इव** = लंगड़ों के समान। **परेण संचार्यन्ते** = दूसरों द्वारा (सहारा देकर) चलाए जाते हैं। **मृषावाद-विषपाक-संजात-मुखरोगाः** = असत्य बोलने के कारण मुख रोग हो जाने से। **इव** = मानो। **अतिकृच्छ्रेन जल्पन्ति** = बहुत कठिनाई से बोल पाते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
लक्ष्मी को प्राप्त करके कुछ राजाओं की किस प्रकार की कुचेष्टाएँ हो जाती हैं—इस पर प्रकाश डालते हुए शुकनास कहता है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड़! लक्ष्मीवान् अनेक राजा) मानो ग्रहों के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। मानों भूतों के द्वारा तिरस्कार किए जाते हैं। मानो मन्त्रों से वशीभूत हो जाते हैं। मानो हिंसक पशुओं के द्वारा शिकार बना लिए जाते हैं। मानो वायु रोग से पीड़ित कर दिए जाते हैं। मानो राक्षसों के द्वारा भक्षण किए गये हों। कामदेव के बाणों से मार्मिक घायल होकर हजारों मुखमुद्राएँ बनाते हैं। धन की गर्मी से संतुष्ट होकर ही मानो कुचेटाएँ करते हैं। तेज प्रहार से घायल होकर ही मानो ठीक प्रकार से अंगों को धारण नहीं करते हैं। मानो कैकड़े के समान तिरछा (कुटिल, असम्य) आचरण करते हैं। अधर्म के द्वारा मानो उनकी गति समाप्त कर दी गयी है। अतः लंगड़ों के समान (सहारा देकर) चलाए जाते हैं। असत्य बोलने के कारण मुखरोग हो जाते हैं। मानो बहुत कठिनाई से बोल पाते हैं।

भावार्थ— शुकनास मंत्री अपने अनुभव से कुछ उन राजाओं के विषय में जानकारी देता है जो लक्ष्मी व ऐश्वर्य के अहंकार के कारण विचित्र आचरण करते हैं। उनमें गहन काम वासना रहती है, धन की गर्मी से वे अनेक अनर्थकारी तथा कामुक चेष्टाएँ करते हैं। ठीक प्रकार से चल नहीं पाते हैं। मुख को तिरछा करके कुचेष्टाएँ करते हैं। अधर्म करते हैं तथा असत्य बोलते हैं जिस कारण ही मानो उनका चलना और बोलना भी उपयुक्त नहीं है।

विशेष— (1) इस गद्य-खण्ड में लक्ष्मी-प्राप्त करने वाले कुछ राजाओं की दुर्दशा का चित्रण किया गया है।
(2) सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षा अलंकार सहजता से प्रयुक्त हैं
(3) 'कुलीरा...सञ्चार्यन्ते' इन दोनों वाक्यों में उपमा अलंकार है।
(4) व्यास शैली प्रयुक्त है।
(5) भाषा भावों के अनुरूप है।

❑

◆ ***सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदंष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिताः कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति; इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति।***

शब्दार्थ— **सप्तच्छद-तरवः इव** = जिस प्रकार सप्तपर्ण के वृक्ष। **कुसुम-रजो-विकारैः** = फूलों की पराग के विकारों (तीव्र गंध) से या रजोगुण के विकार से। **पार्श्व-वर्तिनां** = पास में रहने वाले मनुष्यों के। **शिरः-शूलं उत्पादयन्ति** = शिर में वेदना पैदा करते हैं। **आसन्न-मृत्यव इव** = जिनकी मृत्यु होने वाली है ऐसे व्यक्तियों के समान। **बन्धुजनम् अपि न अभिजानन्ति** = भाई-बन्धुओं को भी नहीं पहिचानते हैं अथवा अपनों को भी नहीं जानते हैं। **उत्कम्पित लोचना इव** = काँपने वाली आँखों वाले के समान। **तेजस्विनः न इक्षन्ते** = चमकते हुए पदार्थों या तेजस्वी व्यक्तियों को नहीं देखते हैं। **कालदष्टा इव** =

सर्प से डसे हुए व्यक्तियों के समान। **महामन्त्रैः अपि** = महान् मंत्रों से, अच्छी मन्त्रणा (सलाह) से भी। **न प्रतिबुध्यन्ते** = होश में नहीं आते हैं। **जातुष-आमरणानि इव** = लाख के आभूषणों के समान। **सोष्मानं न सहन्ते** = अग्नि, तेजस्वी को सहन नहीं करते हैं। **दुष्टवारणा-इव** = दुष्ट हाथियों के समान। **महा-मानस्तंभ-निश्चली-कृता अपि** = विशाल खम्भों से बाँध कर अचल कर दिए जाने पर भी अथवा झूठे अभिमान के कारण निश्चल होकर। **न गृह्णन्ति उपदेशम्** = (महान्, गुरुओं के) उपदेश को स्वीकार नहीं करते हैं। **तृष्णा-विष-मूर्च्छिताः** = लालसा रूपी विष से मूर्च्छित होकर। **कनक-मयं इव सर्वं पश्यन्ति** = सभी स्वर्ण-निर्मित के समान देखते हैं। **इषवः इव** = बाणों के समान। **पान-वर्धित-तैक्ष्ण्याः** = शाण से बढ़ाई गयी तेज धार वाले, शराब पीने से तेज स्वभाव वाले। **पर-प्रेरिता** = दूसरों के द्वारा चलाए गये, या दुष्टों के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके। **विनाशयन्ति** = अपना विनाश कर लेते हैं। **दूर-स्थितानि अपि फलानि इव** = बहुत ऊँचे लगे हुए फलों के समान। **दण्ड-विक्षेपैः** = डण्डे के फैंकने से, दण्ड देकर के। **महाकुलानि** = बड़े-बड़े कुलों को। **शातयन्ति** = नष्ट कर देते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।

ऐश्वर्य व लक्ष्मी के मद से चूर राजाओं की दुर्दशा व कुचेष्टाओं का वर्णन करता हुआ महान् ज्ञानी व अनुभवी शुकनास चन्द्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— हे पुत्र चन्द्रापीड! जिस प्रकार सप्तपर्ण का वृक्ष फूलों के विकारों (तीव्रगन्ध) से पास में रहने वाले मनुष्यों के सिर में दर्द पैदा करते हैं उसी प्रकार राजा भी रजोगुण के कारण, पास में रहने वाले व्यक्तियों के सिर में वेदना उत्पन्न कर देते हैं। जिस पर जिसकी मृत्यु होने वाली है ऐसे व्यक्ति अपने भाई-बन्धुओं को भी नहीं पहिचानते, उसी प्रकार राजा भी (झूठे अहंकार के कारण) अपने जनों से आँखें फेर लेते हैं मानो उन्हें न पहिचानते हों। जिस प्रकार काँपने वाली आँखों वाला (नेत्ररोगी) किसी तेजस्वी (चमकने वाले) पदार्थ को नहीं देख पाता उसी प्रकार राजा भी किसी तेज वाले व्यक्ति को देखना नहीं चाहते हैं। जिस प्रकार जहरीले साँप से डँसा हुआ (काटा गया) व्यक्ति महान् मंत्रों से भी होश में नहीं आता है। उसी प्रकार राजा भी झूठे अभिमान से इतने निश्चल हो जाते हैं कि गुरुजनों के उपदेश को भी नहीं मानते हैं। जिस प्रकार लाख के बने हुए आभूषण अग्नि की गर्मी को सहन नहीं करते उसी प्रकार राजा भी किसी के तेज का सहन नहीं करते हैं। जिस प्रकार दुष्ट हाथी, विशाल खम्बों से बाँध दिए जाने पर भी किसी की बात को नहीं मानते हैं उसी प्रकार राजा अत्यन्त अहंकार से इतने अचल हो जाते हैं कि गुरु के उपदेश को स्वीकार नहीं करते। ये राजा लालसा रूपी विष से मानो इतने मूर्च्छित हो गये हैं कि सभी को स्वर्ण से बना हुआ देखते हैं। जिस प्रकार बाण, शाण पर चढ़ाई गयी तेज धार वाले होकर शत्रुओं के द्वारा चलाए जाने पर विनाश कर देते हैं। उसी प्रकार राजा लोग शराब पीने से तेज स्वभाव वाले होकर, अन्य (दुष्टों) जनों से प्रेरणा प्राप्त करके अपना विनाश कर लेते हैं। जिस प्रकार वृक्ष पर बहुत ऊपर लगे हुए फलों को दण्डा फैंककर नीचे गिरा दिए जाते हैं उसी प्रकार राजा भी दण्ड आदि देकर दूर रहने वाले कुलों को भी नष्ट कर देते हैं।

भावार्थ— धन व ऐश्वर्य के कारण राजागण पास में रहने वालों को भी दुःखी करते हैं। अपने बन्धुजनों को पहिचान नहीं करते हैं। तेजस्वी को उपेक्षा करते हैं। उन्हें कितनी ही अच्छी सलाह दी जाये तो भी वे नहीं समझते हैं। किसी के तेज को सहन नहीं करते। अत्यन्त अहंकार से इतने भरे रहते हैं कि गुरु के उपदेश को स्वीकार नहीं करते। उनमें इतनी लालसा रहती है कि सभी जगह स्वर्ण ही स्वर्ण देखते हैं और उसे प्राप्त करना चाहते हैं। शराब आदि पीकर इतने अचेतन से हो जाते हैं मूर्खों की बात मानकर अपना विनाश कर लेते हैं। वे व्यर्थ में ही उच्चकुल के व्यक्तियों को नष्ट कर देते हैं।

विशेष— (1) इस गद्य-खण्ड में लक्ष्मी में आसक्त कुछ राजाओं का दुर्दशा का चित्रण किया गया है।

(2) सभी वाक्यों में पूर्णोपमा अलंकार का सुंदर प्रयोग है।

(3) रजः, तेजस्विनः, महामन्त्रैः, सोष्माणं, महामान, पान, पर-प्रेरिता, दण्ड आदि शब्दों के दो-दो अर्थ होने के कारण श्लेष अलंकार है।

(4) मृषावाद-विष, तृष्णा-विष में रूपक अलंकार है।

(5) भाषा भावों के अनुसार प्रयुक्त है।

❑

◆ *अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वजयन्ति; चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसंव्यतामुपगताः वल्मीकतृणाग्रावस्थिताः जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।* (म.द.वि. 2009)

शब्दार्थ— **अकाल-कुसुम-प्रसवा इव** = असमय में (अचानक) खिलने वाले फूलों के समान। **मनोहर-आकृतयः अपि** = सुन्दर आकार वाले होकर भी। **लोक-विनाश-हेतवः** = संसार के विनाश के कारण होते हैं। **श्मशान-अग्नयः इव** = श्मशान की आग के समान। **अतिरौद्र भूतयः** = अत्यन्त भयानक राख (भूति) से युक्त होते हैं, भयानक विभूति वाले होते हैं। **तैमिरिका इव** = तिमिर नामक नेत्र के रोगी के समान। **अदूरदर्शिनः** = दूर तक नहीं देख सकते, दूरदर्शी नहीं होते। **उपसृष्टा इव** = वेश्याओं के समान। **क्षुद्र-अधिष्ठित-भवनाः** = तुच्छ व्यक्तियों से भरे हुए भवन वाले होते हैं। **श्रूयमाणा अपि** = इनकी बातें आदि सुनने पर भी। **प्रेत-पटहा इव** = शवयात्रा के नगाड़े के समान। **उद्वेजयन्ति** = मन को दुःखी करते हैं। **चिन्त्यमाना अपि** = विचार करने पर भी। **महापातक-अध्यवसाया इव** = महापाप का कार्य करने के समान। **उपद्रवं उपजनयन्ति** = उपद्रव को पैदा करते हैं। **अनुदिवसं** = प्रतिदिन। **आपूर्यमाणाः पापेन इव** = मानो पाप से भरे जाने के कारण। **आध्मातमूर्तयः भवन्ति** = मोटे शरीर वाले हो जाते हैं। **तद् अवस्थाः च** = इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त करने वाले। **व्यसन-शत-संव्यताम् उपागताः** = सैंकड़ों की संख्या में कुव्यसनों (बुरी आदतों) को करके भी उसी प्रकार नहीं पहिचानते हैं। **वल्मीक-तृण-अग्र-अवस्थिकाः** = बॉबी के ऊपर पैदा हुए तिनके के अग्रभाग में स्थित। **जल-बिन्दव इव** = जल के बिन्दु गिरने के बाद अपनी स्थिति को नहीं जानते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा लिखित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
धन व ऐश्वर्य के मद में डूबे हुए राजाओं की स्थिति का चित्रण करते हुए शुकनास मंत्री चन्द्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड़!) जिस प्रकार असमय (बेमौसम के) खिले हुए फूल आकार से सुन्दर होते हुए भी लोक विनाश के सूचक होते हैं उसी प्रकार राजा भी शरीर से सुन्दर होकर भी (अपने दुराचारों से) लोक का विनाश कर देते हैं। जिस प्रकार श्मशान की अग्नि अत्यन्त भयंकर राख (भूति) वाली होती है उसी प्रकार राजा भी बहुत भय प्रदान करने वाले ऐश्वर्य (भूति) वाले होते हैं। जिस प्रकार तिमिर नामक नेत्र का रोगी दूर के पदार्थों को नहीं देख सकता। उसी प्रकार राजा भी अदूरदर्शी हो जाते हैं। जिस प्रकार वेश्याओं का भवन तुच्छ (कामुक) व्यक्तियों से भरा रहता है उसी प्रकार राजाओं का महल भी निम्न धूर्तों से भरा रहता है। जिस प्रकार शव-यात्रा के नगाड़ों को सुनने पर मन को कष्ट होता है उसी प्रकार राजाओं की बातें सुनने पर मानसिक कष्ट होता है। महापापों का कार्य करने के समान, ये विचार करने पर भी ये राजागण उपद्रव पैदा करने वाले होते हैं। प्रतिदिन मानो पापों से भरे जाने के कारण मोटी आकृति वाले हो जाते हैं। इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त करने वाले राजा, सैंकड़ों संख्या में कुव्यसनों (बुरी आदतों) को करके अपने पतन को भी उसी प्रकार नहीं पहिचानते हैं जैसे बॉबी के ऊपर पैदा हुए तिनके के अग्रभाग में स्थित जल के बिन्दु गिरने के बाद अपनी दशा को नहीं पहचानता अर्थात् नष्ट हो जाता है।

भावार्थ— शुकनास नामक मंत्री अपने अनुपम अनुभवों को सुनाते हुए कहता है कि राजा सुन्दर आकृति वाले होने पर भी प्रजा के विनाश का उसी प्रकार कारण बन जाते हैं जैसे बेमौसम में पैदा होने वाले फूल सुन्दर होकर भी संसार के विनाश की सूचना देते हैं। जैसे श्मशान की अग्नि अशुभ होती है उसी प्रकार राजाओं का ऐश्वर्य व धन भी अशुभ कार्यों में लग जाता है। कुमार्गगामी राजा न तो दूरदर्शी होते हैं और न अच्छे जनों का समागम करते हैं, बल्कि दुष्टों के साथ रहते हैं। राजा के विषय में सुनना या उनके लिए अच्छा विचार करना सदा कष्टदायक होता है। उनका मोटापा मानो उनके पाप का भरा हुआ घड़ा है। वे नहीं जानते कि उनके पतन का क्या प्रतिफल होगा?

विशेष— (1) प्रस्तुत गद्य-खण्ड में लक्ष्मी के मद में चूर राजाओं के कुकृत्यों पर प्रकाश डाला गया है।
(2) अकालकुसुम—यदि फूल बिना मौसम के खिलते हैं तो यह लोक के विनाश की सूचना देते हैं।
(3) सभी वाक्यों में उपमा अलंकार का सौंदर्य हैं
(4) भूतयः, अदूरदर्शिनः क्षुद्र के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार है।
(5) भाषा भावानुसार प्रयुक्त है।

❐

◆ *अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीबकैः द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधावकर्णनं महानुभावेतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्यातिं यशः इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वम् इति दोषानपि गुण-पक्ष-मध्या-रोपयद्भिः।* (म.द.वि. 2008)

शब्दार्थ– **अपरे तु** = और दूसरी प्रकार के राजा तो। **स्वार्थ-निष्पादन-परैः** = अपने स्वार्थ को पूरा करने वाले। **धन-पिशित-ग्रास-गृध्रै** = धन रूपी माँस को खाने में गीध के समान। **आस्थान-नलिनी-बकैः** = राजमहल रूपी कमलिनी (के आश्रम में रहने वाले) बगुलों के समान हैं। **द्यूतं विनोद इति** = जुआ खेलना मनोरंजन है। **पर-दारा-अभिगमनं वैदग्धम् इति** = पराई स्त्री का भोग चतुराई है। **मृगया श्रम इति** = शिकार करना व्यायाम है। **पानं विलास इति** = मदिरा को पीना विलासता है। **प्रमत्ततां शौर्यं इति** = प्रमत्त (मतवाला) होना वीरता है। **स्व-दार-परित्यागम् अव्यसनिता इति** = अपनी पत्नी का परित्याग करना व्यसन का अभाव है। **गुरु-वचन-अवधीरणम् अपर-प्रणेयत्वम्-इति** = गुरुओं की आज्ञा को न सुनना दूसरों के शासन को अस्वीकार करना है। **अजित-भृत्यतां** = सेवकों को न जीतना या वश में न करना। **सुख-उपसेव्यत्वम्** = सरलता से सेवा कराना है। **नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्या-अभिसक्तिं रसिकता इति** = नृत्य, गीत, बाजे तथा वेश्या में लगाव, रसिकता है। **महा-अपराध-अवकर्णनं महानुभावता इति** = महान् अपराधों को न सुनना महानुभावता है। **परिभव-सहत्वं क्षमा इति** = अपमान को सहन करना क्षमा है। **स्वच्छन्दतां प्रभुत्वम् इति** = स्वच्छन्द प्रवृत्ति प्रभुता है। **देवावमाननं महासत्वता इति** = देवताओं का अपमान करना ही महान् वीरता है। **वन्दिजन-ख्यातिं यश इति** = चारणों द्वारा की गयी प्रशंसा ही यश है। **तरलताम् उत्साहः इति** = चपलता ही उत्साह है। **अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वं इति** = विशेषज्ञ न होना ही पक्षपात का अभाव है। **इति** = इस प्रकार। **दोषान् अपि** = दोषों को भी। **गुणपक्षं अध्यारोपयद्भिः** = गुणों के रूप में बताते हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।

कुछ मिथ्याभिनानी राजाओं को धूर्त किस प्रकार धोखा देते हैं–इस प्रकार प्रकाश डालते हुए शुकनास चन्द्रापीड से कहता है–

सरलार्थ– (हे पुत्र चन्द्रापीड!) इसी प्रकार के दूसरे राजा तो, अपने स्वार्थ को पूरा करने वाले, धन रूपी माँस को खाने में गीध के समान, राजमहल रूपी कमलिनी (के आश्रय में रहने वाले) बगुलों के समान धूर्तों से इस प्रकार ठगे जाते हैं–(हे राजन्!) जुआ खेलना मनोरंजन है। पराई स्त्री का भोग चतुराई है। शिकार करना व्यायाम है। शराब पीना विलासता है। मतवालापन वीरता है। अपनी पत्नी का परित्याग करना व्यसनों का अभाव है। गुरु की आज्ञा को न सुनना, दूसरों के शासन को अस्वीकार करना है। सेवकों को न जीतना या वश में रखना मानों उनसे सरलता से सेवा कराना है। नृत्य, संगीत, बाजे व वेश्या में लगाव ही रसिकता है। महान् अपराधों को न सुनना ही महानुभावता है। अपमान को सहन करना क्षमा है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति प्रभुता है। देवताओं का अपमान करना ही महान् वीरता है। चारणों द्वारा की गयी प्रशंसा ही यश है। चपलता ही उत्साह है। विशेषज्ञता का न होना ही पक्षपात का अभाव है। इस प्रकार (वे धूर्त) दोषों को भी गुणों के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भावार्थ– मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को समझाता है कि संसार में कुछ महाधूर्त, चापलूस तथा राजा को बहकाने वाले भी होते हैं जो राजा की इस प्रकार झूठी प्रशंसा करते हैं कि उन्हें कुमार्ग पर लगा देते हैं। जुआ, परस्त्री सेवन, शिकार, शराब, मादकता, अपनी स्त्री का त्याग, गुरू वचन का अपमान, संगीत व वेश्या में आसक्ति आदि को क्रमशः मनोरंजन, चतुराई, व्यायाम, विलासता, वीरता, व्यसन-हीनता, स्वतंत्रता, रसिकता आदि कह कर राजाओं का मन बहलाते हैं, उनसे धन लूटते हैं और राजाओं के महलों में अपना स्थान बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

विशेष– (1) इस गद्यांश में लक्ष्मी में मतवाले अविवेकी राजाओं का धूर्तों द्वारा मूर्ख बनाने का चित्रण हैं

(2) धन-पिशित, आस्थान-नलिनी में रूपक अलंकार है।

(3) संपूर्ण वाक्य में दीपक अलंकार है।

(4) एक ही वाक्य में विविध भावों का सार हैं

(5) भाषा सरल व सुबोधगम्य है।

❐

◆ *अन्तः स्वयमपि विहसद्भिः, प्रतारण कुशलैर्धूर्तैरमानुषोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा, वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति। आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति।*

शब्दार्थ— **अन्तः स्वयम् अपि विहसद्भिः** = अपने अन्तरंग में स्वयं हँसने वाले। **प्रतारण-कुशलैः** = ठगने में अत्यन्त कुशल। **धूर्तैः** = धूर्तों के द्वारा। **अमानुष लोक-उचिताभिः स्तुतिभिः** = देवताओं के लिए उपयुक्त स्तोत्रों के द्वारा, प्रशंसाओं के द्वारा। **प्रतार्यमाणा** = ठगे जाते हैं। **वित्तमद-मत्त-चित्ता** = धन के मद से मतवाले चित्त वाले राजा। **निश्चेतनतया** = बिना विवेक के ही। **'तथा एव'** = वैसा ही संभव है। **इति** = इस प्रकार। **आत्मनि आरोपित-अलीक-अभिमाना** = अपने में झूठा आरोप करके अहंकारी हो जाते हैं। **मर्त्यधर्माणः अपि** = मरणशील होते हुए भी। **दिव्य-अंश अवतीर्ण इव** = मानो अपने को दिव्य अंश (भगवान) का अवतार समझते हैं। **स-दैवतम् इव** = मानो किसी देवता से युक्त हों। **अतिमानुषम् आत्मानं उत्प्रेक्षमाणाः** = मानव से अधिक (देवता रूप) अपने विषय में कल्पना करते हैं, अपने को मानते हैं। **प्रारब्ध-दिव्य-उचित-चेष्टा-अनुभवाः** = देवताओं के समान चेष्टाओं और भावों को प्रारंभ करते हैं। **सर्वजनस्य उपहास्यतां उपयान्ति** = सभी लोगों की हँसी का पात्र बन जाते हैं, सभी उनकी हँसी उड़ाते हैं। **च अनुजीविना जनेन** = और सेवकों के द्वारा। **क्रियमाणाम्** = की जाती हुई। **आत्मविडम्बनां** = अपनी मूर्खता का। **अभिनन्दन्ति** = अभिनन्दन करते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत हैं।
अहंकारी व मदोन्मत्त राजा धूर्तों से किस प्रकार ठग लिए जाते हैं—इस पर प्रकाश डालते हुए शुकनास मंत्री चन्द्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— (हे वत्स चन्द्रापीड!) कुछ राजा लोग, अपने अन्दर ही स्वयं हँसने वाले, ठगने में अत्यन्त कुशल धूर्तों के द्वारा, देवताओं के लिए उपयुक्त प्रशंसाओं (स्तोत्रों) को करके ठग लिए जाते हैं। वे राजा धन के मद से मतवाले चित्तवाले होकर बिना विवेक के ही 'वैसा ही संभव है' (जैसा ये धूर्त कहते हैं)—इस प्रकार अपने में झूठा आरोप करके अहंकारी हो जाते हैं। वे मरणशील होते हुए भी अपने को दिव्य अंश (भगवान्) का अवतार समझते हैं। वे मानो किसी देवता से युक्त हों—इस प्रकार मानव से अधिक (देवता रूप में) अपने को मानते हैं। वे राजा, देवताओं के समान चेष्टाओं और भावों का आरंभ करते हैं। परिणामस्वरूप सभी जनों की हँसी का पात्र बन जाते हैं। सभी उनका मजाक उड़ाते हैं और सेवकों के द्वारा की गयी अपनी मूर्खता का (अज्ञानवश) अभिनन्दन करते हैं।

भावार्थ— मूर्ख व महाधूर्त लोग राजा की इस प्रकार की स्तुति करते हैं मानो वे देवता हों। राजा जब अपने को देवता समझने लगता है तो वे सभी हँसी उड़ाते हैं। धन के घमण्ड से राजाओं का मन विवेक रहित हो जाता है कि वे सोचते हैं शायद मेरे में देवत्व आ गया हो—अतः मनुष्य होते हुए भी देवताओं के समान चेष्टा करने लगते हैं तथा अपने को देवता समझकर जब उसी प्रकार का आचरण करते हैं तो सभी उन पर हँसते हैं। वे तब भी अपनी मूर्खता नहीं समझ पाते। सेवकगण उनका झूठा अभिनन्दन करते हैं तो भी वे अज्ञानता के कारण उस असत्य अभिनन्दन का ज्ञान नहीं कर पाते।

विशेष— (1) यहाँ पर लक्ष्मी के मद से उन्मत्त राजाओं का धूर्तों द्वारा ठगे जाने का चित्रण है।
(2) दिव्यांशावतीर्णमिव, सदैवतमिव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) भाषा भावों के अनुरूप है।
(4) दीर्घ वाक्य का प्रयोग किया गया है।

❐

◆ *मनसा देवताध्यारोपणप्रतारणादसद्भूतसम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति।* (म.द.वि. 2008)

शब्दार्थ— **मनसा** = मन से। **देवता-अध्यारोपण-विप्रतारणाद्** = अपने ऊपर देवता का आरोप करके (अपने को देवता समझते हुए)। **असद्भूत-संभावना-उपहताः** = असत्य संभावना कर लेते हैं। **अन्तः प्रविष्ट-अपर-भुजद्वयं इव** = मानो अन्दर छिपी हुई

अन्य दो भुजाएँ हों। **आत्म-बाहुयुगलं संभावयन्ति** = इस प्रकार अपनी दोनों भुजाओं को मानते हैं। **स्वललाटं** = अपने मस्तक की। **त्वक्-अन्तरित-तृतीय-लोचनं** = त्वचा में छिपी हुई तीसरी आँख वाला। **आशङ्कते** = मानते हैं। **दर्शनं प्रदानं अपि** = किसी का दर्शन देना भी। **अनुग्रहं गणयन्ति** = कृपा ही समझते हैं। **दृष्टिपातं अपि** = किसी को देखना भी। **उपकारपक्षे स्थापयन्ति** = उपकार मात्र जानते हैं। **संभाषणम् अपि** = बातचीत करना भी। **संविभागमध्ये कुर्वन्ति** = पुरस्कार प्रदान करना समझते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् **'बाणभट्ट'** द्वारा विरचित कादम्बरी के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। धूर्तों से ठगे जाने पर मिथ्या अहंकारी राजा किस प्रकार अपने को देवता मानने लगते हैं—इस पर प्रकाश डालते हुए शुकनास कहता है—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड़!) अनेक राजा मन से अपने ऊपर देवता का आरोप करके (अपने को देवता समझकर) सत्य संभावना कर लेते हैं और वे अपनी दोनों भुजाओं को, मानो इनके अन्दर दो और भुजाएँ छिपी हुई हैं अर्थात् अपने को चार भुजा वाला विष्णु मानते हैं। अपने मस्तक (माथे) को छिपी हुई तीसरी आँख वाला समझते हैं (अर्थात् अपने को शिव मानते हैं।) इस दशा में, किसी का दर्शन देना भी कृपा समझते हैं। किसी को देखना भी उपकार मात्र मानते हैं। बातचीत करना भी पुरस्कार प्रदान करना समझते हैं।

भावार्थ— कुछ राजाओं को धूर्त पुरुष इतना पागल और विवेकहीन बना देते हैं कि वे अपने को देवता मान लेते हैं। कभी समझते हैं मैं विष्णु हूँ क्योंकि मेरी इन दोनों भुजाओं में दो भुजाएँ और छिपी हुई हैं। कभी अपने को शिव मानते हैं क्योंकि उनके मस्तक पर एक और नेत्र है जो त्वचा (खाल) में ढका हुआ है। इस प्रकार झूठे अहंकारी होकर न किसी को दर्शन देते हैं न किसी को देखते हैं और न किसी से बातचीत करते हैं। इन सभी कार्यों में वे अपने को देवता के समान समझ कर व्यवहार करते हैं।

विशेष— (1) यहाँ पर धूर्तों द्वारा ठगे गये अविवेकी राजाओं की विचित्र लीलाओं का चित्रण है।
(2) सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
(3) समास व व्यास दोनों प्रकार की शैलियां प्रयुक्त है।
(4) भाषा भावों के अनुरूप है।

◆ ***आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने।*** (म.द.वि. 2004)

शब्दार्थ— **आज्ञाम् अपि वरदानं मन्यन्ते** = अपनी आज्ञा को भी वरदान मानते हैं। **स्पर्शम् अपि** = किसी को स्पर्श करना (छूना) भी। **पावनं आकलयन्ति** = उसे पवित्र करने वाला समझते हैं। **मिथ्या-माहात्म्य-गर्व-निर्भरा च** = असत्य महत्ता और अहंकार से भरकर। **न प्रणमन्ति देवताभ्यः** = देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं। **न पूजयन्ति द्विज जातीन्** = ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। **न मानयन्ति मान्यान्** = सम्माननीय जनों का सम्मान नहीं करते। **न अर्चयन्ति अर्चनीयान्** = अर्चना योग्य व्यक्तियों की अर्चना नहीं करते। **न अभिवादयन्ति अभिवादन-अर्हान्** = प्रणाम के योग्य जनों को प्रणाम नहीं करते। **न अभ्युतिष्ठन्ति गुरून्** = गुरु जनों के सम्मान के लिए खड़े नहीं होते हैं। **अनर्थक-आयास-अन्तरित-विषय-उपभोग-सुखम्** = व्यर्थ ही (ज्ञान प्राप्ति का) परिश्रम करके विषय-भोगों के सुखों को नष्ट किया। **इति** = इस प्रकार। **उपहसन्ति विद्वज्जनम्** = विद्वानों की हँसी उड़ाते हैं। **जरा-वैक्लव्य-प्रलपितम्** = बुढ़ापे की व्याकुलता के कारण ही बकवास करता है। **इति** = इस प्रकार। **पश्यन्ति वृद्ध-जन उपदेशम्** = बड़ों के उपदेश को समझते हैं। **आत्म प्रज्ञा परिभवः** = मेरी बुद्धि का अपमान है। **इति** = इस प्रकार। **असूयन्ति** = निन्दा करते हैं। **सचिव-उपदेशाय** = मंत्रियों के उपदेशों की। **हितवादिने** = हितकारी वचन कहने वालों के प्रति। **कुप्यन्ति** = क्रोध करते हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। राजा किस प्रकार झूठे अहंकारी होकर बड़ों का अपमान करते हैं—इसका अनुभव बताते हुए मंत्री शुकनास चन्द्रापीड़ से कहता है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड़! अहंकारी राजा) अपनी आज्ञा को भी वरदान मानते हैं। किसी को स्पर्श करना भी उसे पवित्र करने वाला समझते हैं। वे असत्य महत्ता और अहंकार से भरकर न तो देवताओं को प्रणाम करते हैं, न ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, न सम्माननीय जनों का सम्मान करते हैं, न अर्चना करने योग्य जनों की अर्चना करते हैं। वे प्रणाम योग्य जनों को प्रणाम नहीं करते हैं, न गुरुजनों के सम्मान के लिए खड़े होते हैं। 'व्यर्थ ही (ज्ञान प्राप्ति के लिए) परिश्रम करके विषय भोगों के सुख को इसने नष्ट किया।'—इस प्रकार विद्वानों की हँसी उड़ाते हैं। 'बुढ़ापे की व्याकुलता के कारण ही बकवास करता है'—इस प्रकार बड़ों के उपदेशों को समझते हैं। 'यह मेरी बुद्धि का अपमान है।'—इस प्रकार मंत्रियों के उपदेशों की निन्दा करते हैं तथा हितकारी वचन कहने वालों के प्रति क्रोध करते हैं।

भावार्थ— शुकनास मंत्री कहता है कि धूर्तों के बहकावे में आकर राजा अपने को देवता के समान समझने लगता है वह अपनी आज्ञा को वरदान व स्पर्श को पवित्रता मानने लगता है। इतना अहंकार उन्हें हो जाता है कि पूजनीय देवों को भी कुछ नहीं समझता, ब्राह्मणों, पूजनीय-जनों, गुरुजनों आदि का अपमान करता है। विद्वान् को समझता है कि यह बेकार ज्ञान प्राप्त करने में परिश्रम करता है, आनन्द से रहना नहीं जानता। बड़ों के उपदेशों को बकवास कहते हैं तथा हितकारी व्यक्ति पर क्रोध करने लगता है। इस प्रकार राजा में विनयशीलता नष्ट हो जाती है।

विशेष— (1) यहाँ पर मिथ्या अहंकार से भरे हुए कुछ राजाओं के विचित्र आचरण व विचार का चित्रण किया गया है।
(2) उत्प्रेक्षा अलंकार का सुंदर प्रयोग है।
(3) छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया गया है।
(4) भाषा भावों के अनुरूप सरल है।

❑

◆ ***सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति तं बहुमन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।***

(म.द.वि. 2004)

शब्दार्थ— **सर्वथा** = सभी तरह, पूर्ण रूप से। **तं अभिनन्दन्ति** = उसी का अभिनन्दन करते हैं। **तं आलपन्ति** = उसी से बातचीत करते हैं। **तं पार्श्वे कुर्वन्ति** = उसी को पास में बैठाते हैं। **संवर्धयन्ति** = उसी की बढ़ोतरी करते हैं। **तेन सह सुखं अवतिष्ठन्ते** = उसी के साथ सुख से बैठते हैं। **तस्मै ददति** = उसी को देते हैं। **तं मित्रतां उपजनयन्ति** = उससे मित्रता करते हैं। **तस्य वचनं शृण्वन्ति** = उसी के वचन को सुनते हैं। **तत्र वर्षन्ति** = उसी पर अनुग्रह करते हैं। **तं बहु मन्यते** = उसे ही बहुत मानते हैं। **तम् आप्ततां आपादयन्ति** = उसे ही विश्वासपात्र मानते हैं। **यः** = जो। **अहर्निशं** = रात-दिन। **अनवरतं** = निरन्तर। **उपरचित-अञ्जलिः** = हाथों को जोड़कर। **विगत-अन्य-कर्तव्यः** = अपने कार्यों को छोड़कर। **अधि दैवतम् इव** = अपने मान्य देवता के समान। **स्तौति** = स्तुति करता रहता है, प्रशंसा ही करता है। **वा** = अथवा। **यो** = जो। **माहात्म्यं उद्भावयति** = (राजा की) बड़ाई करता रहता है।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत-गद्य-सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा विरचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
मिथ्या अहंकार में भरे हुए राजा अपने प्रशंसकों को ही महत्ता देते हैं—इस पक्ष को स्पष्ट करते हुए मंत्री शुकनास चन्द्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— (हे प्रिय चन्द्रापीड़! बहुत से राजा लोग, चापलूसों व झूठी बड़ाई करने वालों के बहकावे में आकर) पूरी तरह से उन्हीं (चापलूसों) का अभिनन्दन करते हैं, उन्हीं से बातचीत करते हैं, उन्हें ही पास में बैठाते हैं, उन्हीं की बढोतरी करते हैं, उन्हीं के साथ सुख से बैठते हैं, उन्हें ही दान आदि देते हैं, उन्हीं से मित्रता करते हैं, उन्हीं के वचन सुनते हैं, उन्हीं पर अनुग्रह करते हैं, उन्हें बहुत मानते हैं उन्हीं पर विश्वास करते हैं जो रात-दिन निरन्तर हाथों को जोड़कर, अपने कार्यों को छोड़कर, अपने मान्य देवता के समान स्तुति करता/करते हैं। अथवा जो राजा की सदा बड़ाई करता रहता है।

भावार्थ— बहुत से धूर्त व चापलूस राजाओं की निरन्तर इतनी बड़ाई करते हैं, झूठी प्रशंसा करते हैं या राजा पर झूठा विश्वास जमा लेते हैं कि राजा उन्हें ही अपना मित्र समझ लेता है। राजा उनके बहकावे में आकर अपनी वास्तविकता को नहीं समझ पाते और सदा उन्हीं का ध्यान करते हैं वे धूर्त कार्य तो करते नहीं, राजा के सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। इसका परिणाम राजा के लिए बहुत घातक होता है।

विशेष— (1) यहाँ पर मिथ्या-प्रशसंकों के वशीभूत हुए राजाओं का चित्रण किया गया है।
(2) चाटुकारिता व झूठी-बड़ाई के महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।
(3) सरल पदावली होने से प्रसाद गुण है।
(4) भाषा में प्रवाह है।

❐

◆ ***किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्; अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।***

शब्दार्थ— **किं वा तेषां साम्प्रतं** = उन (राजाओं) के लिए और क्या उचित कार्य हो सकता है? । **येषां** = जिनके लिए। **अति-नृशंस-प्राय उपदेश-निर्घृणं** = अत्यन्त क्रूरता से भरे हुए उपदेशों से दया रहित। **कौटिल्य-शास्त्रं प्रमाणम्** = कौटिल्य का शास्त्र (अर्थशास्त्र) ही प्रमाण माना जाता है। **अभिचारक्रियाः** = केवल हिंसापूर्ण क्रियाएँ करने वाले। **क्रूर एक प्रकृतयः** = एक मात्र क्रूर स्वभाव वाले। **पुरोधसः गुरवः** = पुरोहित ही गुरु हैं। **पर-अनिसंधान-परा** = दूसरों को धोखा देने वाले। **मन्त्रिणः उपदेष्टारः** = मंत्री ही उपदेश देने वाले हैं। **नरपति-सहस्र-मुक्त-उज्झितायां लक्ष्म्यां** = हजारों राजाओं के द्वारा भोगकर छोड़ दी गयी लक्ष्मी में। **आसक्ति** = जिसका लगाव है। **मारणात्मकेषु शास्त्रेषु** = मारने का उपाय बताने वाले शास्त्रों में। **अभियोगः** = जिसका विश्वास है। **सहज-प्रेम-आर्द्र-हृदय-अनुरक्ताः भ्रातरः** = स्वाभाविक स्नेह से सिंचित हृदय वाले भाई। **उच्छेद्याः** = मारने योग्य हैं।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत-गद्य-साहित्य के अमर कलाकार **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अविवेकी व नीच स्वभावी राजाओं का वर्णन करता हुआ मंत्री शुकनास चन्द्रापीड से कहता है—

सरलार्थ— (हे चन्द्रापीड) उन राजाओं के लिए और क्या उचित कार्य हो सकता है? जिनके लिए अत्यन्त क्रूरता से भरे हुए उपदेशों से दयारहित कौटिल्य का शास्त्र (अर्थशास्त्र) ही प्रमाण माना जाता है। केवल हिंसापूर्ण कार्य करने वाले तथा एकमात्र क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित ही गुरु हैं। दूसरों को धोखा देने वाले मंत्री ही उपदेश देने वाले हैं। हजारों राजाओं के द्वारा भोगकर छोड़ दी गयी लक्ष्मी में ही जिनकी आसक्ति (लगाव) है। मारने का उपाय बताने वाले शास्त्रों में जिसका विश्वास है। स्वाभाविक स्नेह से सिञ्चित हृदय वाले भाई (भ्रातृगण) ही मारने योग्य हैं।

भावार्थ— शुकनास कहते हैं कि इस प्रकार के दुष्ट स्वभावी राजाओं के लिए कोई भी उपयुक्त कार्य नहीं हो सकता। क्योंकि उनका कौटिल्य अर्थशास्त्र में विश्वास है, उनका हिंसक क्रूर पुरोहित है, दगाबाज मंत्री उपदेशक है। लक्ष्मी की प्राप्ति ही उनका उद्देश्य है तथा भाइयों की हत्या करने में जो प्रसन्न है। ऐसे राजाओं के लिए कुछ भी सद्कार्य नहीं हो सकते।

विशेष— (1) यहाँ पर विवेकहीन व भ्रष्टबुद्धि वाले राजाओं के कुत्सित कार्यों का चित्रण है।
(2) बाणभट्ट कौटिल्य के अर्थशास्त्र को भी अप्रमाणिक मानते हैं।
(3) सरल भाषा व व्यास शैली प्रयुक्त है।
(4) ये सभी कार्य राजा के लिए हेय है।

❐

◆ ***तदेवं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणी च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः, यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसेकुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन।*** (म.द.वि. 2006)

शब्दार्थ— **तत् एवं प्राय** = इस प्रकार के। **अतिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्र-दारुणे** = अत्यन्त कुटिल, बहुत कष्टदायक तथा हजारों चेष्टाओं से भयानक। **राज्यतन्त्रे अस्मिन्** = इस राज्य तंत्र में। **च** = और। **महा-मोह-कारिणि च यौवने** = बहुत अधिक

वासनाओं से भरे हुए नवयौवन में। **कुमारः** = हे कुमार चन्द्रापीड!। **तथा प्रयतेथा** = इस प्रकार का प्रयत्न करो। **यथा न उपहस्यसे जनैः** = जिससे लोक तुम्हारी हँसी न उड़ाए। **न निन्द्यसे साधुभिः** = सज्जन तुम्हारी निन्दा न करें। **न धिक् क्रियसे गुरुभिः** = गुरुजन तुम्हें धिक् न कहें। **न उपालभ्यसे सुहृद्भिः** = सच्चे मित्र तुम्हें उलाहना न दें। **न शोच्यसे विद्वद्भिः** = विद्वान् तुम्हारे विषय में शोक न करें। **यथा च न प्रकाश्यसे विटैः** = और धूर्त तुम्हें अपने जैसा न कहें। **न प्रतार्यसे कुशलैः** = चालाक तुम से छल न करें। **न आस्वाद्यसे भुजङ्गैः** = कुटिल लोभी तुम्हारे धन का स्वाद न लेते रहें। **न अवलुप्यसे सेवकवृकैः** = भेड़ियों के रूप में सेवक तुम्हारा सर्वनाश न कर दें। **न वञ्च्यसे धूर्तैः** = धूर्त तुम्हें लूट न लें। **न प्रलोभ्यसे वनिताभिः** = सुन्दरी नारियाँ तुम्हें आकर्षित न करें। **न विडम्ब्यसे लक्ष्म्याः** = लक्ष्मी तुम्हें हँसी का पात्र न बना दे। **न आक्षिप्यसे विषयैः** = विषय-वासनाएँ तुम पर आक्षेप न करें। **न अवकृष्यसे रागेण** = प्रेम के कारण तुम खिचें न चले आओ। **न अपह्रियसे सुखेन** = सुख तुम्हारा अपहरण न कर ले।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है।
अनुभवी परम विद्वान् शुकनास राजकुमार चन्द्रापीड़ को विषयवासनाओं से सावधान करता हुआ कहता है—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड़!) इस प्रकार के अत्यन्त कुटिल, बहुत कष्टदायक तथा हजारों प्रकार की चेष्टाओं से भयानक इस राज्यतन्त्र में तथा बहुत अधिक वासनाओं से भरे हुए नवयौवन में—हे राजकुमार चन्द्रापीड! इस प्रकार का प्रयत्न करो जिससे लोक तुम्हारी हँसी न उड़ाए, सज्जन तुम्हारी निन्दा न करें, गुरुजन तुम्हें धिक् न कहें, सच्चे मित्र तुम्हें उलाहना न दें। विद्वान् तुम्हारे विषय में शोक न करें और धूर्त तुम्हें अपने जैसा न कहें, चालाक व्यक्ति तुमसे छल न करें, कुटिल लोभी तुम्हारे धन का स्वाद न लेते रहें, भेड़ियों के रूप में सेवक तुम्हारा सर्वनाश न कर दें, धूर्त तुम्हें लूट न लें, सुन्दरी नारियाँ तुम्हें आकर्षित न करें, लक्ष्मी तुम्हें हँसी का पात्र न बना दें, अहंकार तुम्हें न नचाएँ, कामदेव तुम्हें मादक न बना दे। विषय-वासनाएँ तुम पर आक्षेप न करें, प्रेम के कारण तुम खिंचे न चले आओ, सुख तुम्हारा अपहरण न कर लें अर्थात् तुम सुख के अधीन न हो जाओ।

भावार्थ— शुकनास मंत्री राज्यतंत्र में होने वाले छल-कपट व अनेक प्रकार के कुकृत्य तथा कठोरता को प्रस्तुत करके तथा यौवन के दोषों को बताकर, कुमार चन्द्रापीड को सावधान करना चाहता है कि वह इन सभी प्रकार के दोषों से बचता रहे जिससे लोक, सज्जन, गुरुजन, मित्रगण व विद्वान्—तुम पर ऊँगली न उठा सकें। विट, चालाक कुटिल, भेड़िये सेवक, धूर्त, सुन्दरियाँ, लक्ष्मी, मद, कामदेव, विषय वासना प्रेम, राज्य सुख आदि तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करके तुम्हारी शालीनता महत्ता, महनीयता आदि को न छीन ले और तुम छोटे न पड़ जाओ।

विशेष— (1) यहाँ पर मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को राजा के पद की शालीनता बनाए रखने का उपदेश देता हैं
(2) राजतंत्र व नवयौवन इन दोनों दशाओं में राजा को अतीव सावधान रहने की आवश्यकता है।
(3) भुगङ्गै व सेवकवकैः में रूपक अलंकार है।
(4) मद, मदन, राग, सुख का मानवीकरण किया गया है।
(5) व्यास शैली का प्रयोग है।

□

◆ ***कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनःपुनरभिधीयसे— विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुल क्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्।*** (म.द.वि 2000, 2008)

शब्दार्थ— **कामं** = निश्चय से निःसंदेह। **भवान्** = आप। **प्रकृत्या एव** = स्वभाव से ही। **धीरः** = धैर्यशाली हो। **पित्रा च** = और पिता ने। **महता प्रयत्नेन** = बहुत प्रयत्न करके। **समारोपित-संस्कार** = उदात्त संस्कारों को आपमें भर दिया है। **तरल-हृदयम्** = चञ्चल हृदय वाले। **अप्रतिबुद्धं** = असावधान व्यक्ति को। **धनानि मदयन्ति** = धन-सम्पत्ति अहंकार से भर देती है। **तथापि** = तो भी। **भवद्-गुण-संतोषः** = आपके गुणों से सन्तुष्ट होने के कारण ही। **मां एवं मुखरीकृतवान्** = मैं इस

प्रकार कहने को बाध्य हुआ हूँ। **इदम् एव च** = मैं यही। **पुनः पुनः अवधीयसे** = आपसे बार-बार कहता हूँ। **इयं दुर्विनीता लक्ष्मी** = यह दुराचारिणी लक्ष्मी। **विद्वांसम् अपि** = विद्वान् को भी। **सचेतनम् अपि** = सावधान को भी। **महासत्त्वम् अपि** = अत्यन्त बलवान् को भी। **अभिजानम् अपि** = कुलीन को भी। **धीरम् अपि** = धैर्यशाली को भी। **प्रयत्नवन्तम् अपि पुरुषम्** = प्रयत्न करने वाले पुरुष को भी। **खलीकरोति** = पथभ्रष्ट कर देती है। **पित्रा क्रियमाणम्** = पिता के द्वारा प्रस्तुत। **नवयौवराज्याभिषेक** = नवीन यौवराज्य के अभिषेक रूपी। **मंगलं** = मंगल को। **भवान्** = आप। **सर्वथा कल्याणैः** = सभी प्रकार के कल्याणों के साथ-साथ। **अनुभवतु** = अनुभव करें। **कुल-क्रम-आगताम्** = कुल-परम्परा रूप में प्राप्त होने वाले। **पूर्व-पुरुषैः उढाम्** = पूर्वजों के द्वारा धारण किए गये। **धुरम् उद्वह** = राज्य के भार को धारण करो। **अवनमय** = झुका दो। **द्विषतां शिरांसि** = शत्रुओं के मस्तकों को। **उन्नमय** = उन्नति प्रदान करो। **स्व-बन्धुवर्गं** = अपने बन्धु समूह को।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट् महाकवि **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। लक्ष्मी, ऐश्वर्य और राज्य आदि से प्राप्त दोषों को बताकर विद्वान् शुकनास मंत्री चन्द्रापीड़ को प्रेरणा देता हुआ कहता है—

सरलार्थ— (हे पुत्र चन्द्रापीड!) निःसन्देह, आप स्वभाव से धैर्यशाली हो और पिता ने आप में बहुत प्रयत्न करके उदात्त संस्कारों को भर दिया है। फिर भी, चञ्चल हृदय वाले और असावधान व्यक्ति को धन-सम्पत्ति अहंकार से भर देती है। तो भी, आपके गुणों से सन्तुष्ट होने के कारण ही मैं इस प्रकार कहने को बाध्य हुआ हूँ। मैं बार-बार आपसे यही कहता हूँ—यह दुराचारिणी लक्ष्मी विद्वान् को भी, सावधान पुरुष को भी, अत्यन्त बलवान् को भी, कुलीन को भी, धैर्यशाली को भी और प्रयत्न करते हुए पुरुष को भी पथभ्रष्ट कर देती है। पिता के द्वारा प्रस्तुत नवीन यौवराज्याभिषेक रूपी मंगल को, आप सभी प्रकार के कल्याणों के साथ-साथ अनुभव करें। कुल-परम्परा रूप में प्राप्त होने वाले तथा पूर्वजों के द्वारा धारण किए गये राज्य के भार को तुम स्वीकार करो। शत्रुओं के मस्तकों को झुका दो। अपने बन्धु-समूह को उन्नति प्रदान करो।

भावार्थ— परम विद्वान् व महान् अनुभवी शुकनास मन्त्री चन्द्रापीड़ को यह स्पष्ट कह देता है कि मैं तुम्हारे स्वभाव को ठीक प्रकार से जानता हूँ। तुमने पिता के संस्कार से संस्कारित होकर जो धैर्य व गुण प्राप्त किए हैं, मैं उनसे सन्तुष्ट हूँ। इसी कारण तुम्हें यह सभी कुछ कह रहा हूँ। अन्त में मैं तुम्हें पुनः कहता हूँ कि लक्ष्मी के मद में कभी भी चूर न हो जाना। यह दुराचारिणी सभी को अपने आधीन कर लेती है। यही सब कुछ जानकर तुम समझदारी के साथ यौवराज्याभिषेक को स्वीकार कर राज्य को सँभालो। तुम्हारे वंश की यही परम्परा रही है उसका निर्वाह करो। शत्रुओं को वश में कर लो और अपनों को उन्नति प्रदान करो।

विशेष— (1) चन्द्रापीड के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है कि वह सुसंस्कारित है व राज्य के भार को वहन करने में सक्षम है।
(2) राज्य लक्ष्मी की दुष्टता से सावधान किया गया है।
(3) व्यास शैली का प्रयोग है।
(4) छोटे-छोटे वाक्य हैं जो उपदेश के लिए स्वाभाविक है।

❑

◆ ***अभिषेकानन्तरञ्च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीप भूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयञ्च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावदभिधायोपशशाम। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।***

शब्दार्थ— **अभिषेक-अनन्तरं** = यौवराज्याभिषेक के पश्चात्। **प्रारब्ध दिग्विजय** = दिग् विजय आरंभ करके। **परिभ्रमन्** = चारों ओर घूमते हुए। **विजिताम् अपि तव पित्रा** = आपके पिता के द्वारा जीती हुई भी। **सप्तदीप-भूषणां** = सात द्वीपों से अलंकृत। **वसुन्धराम्** = इस भूमि पर। **पुनः विजयस्व** = फिर से विजय प्राप्त करो। **अयं च ते कालः** = तुम्हारे लिए यही उपयुक्त समय है। **प्रतापं आरोपयितुम्** = अपने प्रताप को स्थापित करने का। **आरूढ-प्रतापो राजा** = जो राजा अपने प्रताप को स्थापित कर लेता है। **त्रैलोक्य-दर्शी इव** = तीनों लोकों के द्रष्टा के समान। **सिद्ध-आदेशः भवति** = अपने आदेश में सफल

होता है। **इति** = इस प्रकार। **एतावत् अभिधाय** = इतना कहकर। **उपशशाम** = शान्त हो गया। **उपशान्त-वचसि शुकनासे** = शुकनास का कथन समाप्त होने पर। **चन्द्रापीड़** = चन्द्रापीड़। **तामिः उपदेश-वाग्भिः** = उन उपदेश के वचनों से। **प्रक्षालितः इव** = मानो धो दिया गया हो। **उन्मीलितः इव** = मानो विकसित हो गया हो। **स्वच्छीकृतः इव** = मानो स्वच्छ हो गया हो। **निर्मृष्ट इव** = मानो माँज दिया गया हो। **अभिलिप्त इव** = मानो लेप करा दिया गया हो। **अलंकृतः इव** = मानो पवित्र कर दिया गया हो। **उद्भाषितः इव** = मानो चमका दिया गया हो। **प्रीत-हृदयः** = प्रसन्नचित्त होकर। **मुहूर्तं स्थित्वा** = कुछ देर रुक कर। **स्वभवनं जगाम** = अपने भवन में चला गया।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। विद्वान् शुकनास उपदेश की समाप्ति पर चन्द्रापीड को दिग्विजय के लिए प्रेरित करता हुआ कहता है—

सरलार्थ— (हे तात चन्द्रापीड!) यौवराज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय आरंभ करके, चारों ओर घूमते हुए, अपने पिता द्वारा जीती हुई, सात द्वीपों से अलंकृत इस भूमि पर फिर से विजय प्राप्त करो। अपने प्रताप को स्थापित करने का तुम्हारे लिए यही उपयुक्त समय है। जो राजा अपने प्रताप को स्थापित कर लेता है वह तीनों लोकों के द्रष्टा के समान अपने आदेश में सर्वथा सफल होता है—इस प्रकार इतना कहकर वह (शुकनास) शान्त हो गया। शुकनास का कथन समाप्त होने पर चन्द्रापीड़ उन उपदेश के वचनों से मानो धो दिया गया हो, मानो विकसित हो गया हो, मानो स्वच्छ हो गया हो, मानो माँज दिया गया हो, मानो स्नान करा दिया गया हो, मानो लेप करा दिया गया हो, मानो सुसज्जित कर दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमका दिया गया हो—इस प्रकार प्रसन्नचित्त होकर, कुछ देर ठहरकर अपने भवन में चला गया।

भावार्थ— मान्य विद्वान् शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश देकर यह भी समझाया कि वे यौवराज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय प्रारंभ करें। चारों दिशाओं में अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें। जिससे तुम्हारा प्रताप सर्वत्र व्याप्त हो जाए। तत्पश्चात् तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करने की किसी की भी शक्ति नहीं रहेगी। इतना कुछ कहकर शुकनास चुप हो गया। चन्द्रापीड़ ने अपने में कुछ नयापन अनुभव किया और वह सभी कुछ समझकर मानो पथभ्रष्ट होने से बच गया। कुछ देर वहाँ बैठकर चन्द्रापीड अपने महल की ओर चला गया।

विशेष—
(1) इस गद्यांश में चन्द्रापीड शुकनास के उपदेश से अतीव संतोष अनुभव करता है।
(2) 'उपदेशवाग्भिः...उद्भाषित इव' में उत्प्रेक्षा अलंकार का सौंदर्य है।
(3) 'राजा त्रैलोक्यदर्शीव' में उपमा अलंकार है।
(4) प्राचीन काल में संपूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों से घिरती हुई थीं।

सूक्तियों की व्याख्या

◆ *केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवन प्रभवम्।*

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। यौवराज्याभिषेक के अवसर पर दर्शन के लिए आए हुए राजकुमार चन्द्रापीड को मंत्रीवर शुकनास उपदेश देता हुआ कहता है–

सरलार्थ– यौवन अवस्था से उत्पन्न होने वाला अंधकार या अज्ञान स्वभाव से ही बहुत गहन होता है जिसे सूर्य भी नहीं मिटा सकता, रत्नों की प्रभा से भी दूर नहीं किया जा सकता और जो दीपक की प्रभा से भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

भावार्थ– अंधकार चाहे कितना ही अधिक हो सूर्य के निकलते ही वह मिट जाता है। भवन के अन्दर का अंधकार रत्नों की चमक से दूर हो जाता है तथा रात्रि का अंधकार दीपक प्रज्वलित करके समाप्त किया जाता है। परन्तु यौवन में जो अंधकार या अज्ञान होता है वह स्वाभाविक रूप से होता है। उस अज्ञान रूपी अंधकार को सूर्य, रत्नों की प्रभा या दीपक का प्रकाश दूर नहीं कर सकता। क्योंकि वह अंधकार हृदय में व्याप्त रहता है। उसमें यौवन का नशा छाया रहता है। उसे दूर करना सहज संभव नहीं है।

❐

◆ *अविनयानामेकैकमपि एषामायतनम् किमुत समवायः।* (म.द.वि. 2005)

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। यौवराज्याभिषेक के अवसर आशीर्वाद के लिए प्रस्तुत चन्द्रापीड को समझाते हुए वयोवृद्ध अनुभवी मंत्री शुकनास कहते हैं–

सरलार्थ– इनमें से प्रत्येक अविनयों के घर हैं, जहाँ सभी हों वहाँ तो क्या कहा जाए?

भावार्थ– संसार में चार प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं–1. जन्म से राज्य प्राप्ति। 2. नवयौवन। 3. अद्वितीय सुन्दरता, 4. दिव्य शक्ति। ये सभी अनेक अनर्थों को पैदा करने वाली होती हैं। अर्थात् जिसमें से एक भी हो वही अनेक बुराइयों को करने वाला हो जाता है तथा जिसमें ये चारों पाई जाए उसका तो कहना ही क्या अर्थात् वह तो न जाने कितनी बुराइयाँ, अपराध, अनाचार व अत्याचार करेगा। शुकनास चन्द्रापीड से कहता है कि प्रायः राजकुमारों में इनमें से एक, दो, तीन या चारों विशेषताएँ मिल जाती हैं। अतः वह महान् अनर्थों को कर सकता हैं, अतः इनसे तुम्हें सावधान रहना चाहिए।

❐

◆ *यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजल-प्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः।*

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। उपदेश के प्रारम्भ में नवयौवन में होने वाले दोषों पर प्रकाश डालते हुए शुकनास मंत्री कहता है–

सरलार्थ– युवा अवस्था के प्रारंभ में प्रायः बुद्धि शास्त्र रूपी जल से धोने पर भी मैली हो जाती है।

भावार्थ– यौवन का ऐसा नशा होता है कि प्रारंभ में ही वह बुद्धि को सद्मार्ग से हटाने लगता है। उस युवक ने भले ही अच्छी तरह शास्त्रों का अध्ययन किया हो या विविध शास्त्रों को पढ़कर उन्हें समझाता हो, फिर भी युवावस्था में मानव में राग

विषयासक्ति, उपभोग की भावना तेज हो जाती है। अतः शुकनास चन्द्रापीड को समझाता है कि तुम्हारी युवावस्था है। अतः अपनी बुद्धि को विचलित मत होने देना। तुमने शास्त्रों का अध्ययन किया है। अतः अच्छे मार्ग पर ही चलना। विषयों में पड़कर कर्त्तव्य न भूल जाना।

◆ ***अनुज्झित-धवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः।***

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के शुकनासोपदेश' से उद्धृत है। नवयौवन में होने वाले दोषों पर प्रकाश डालते हुए मंत्री शुकनास चन्द्रापीड से कहता है–

सरलार्थ– स्वच्छता को न छोड़ने पर भी युवकों की दृष्टि राग से युक्त होती है।

भावार्थ– युवावस्था में यद्यपि युवकों की दृष्टि में किसी प्रकार का रोग नहीं रहता। वह निर्मल होती है परन्तु यौवन में प्रेम-रोग बढ़ जाता है अर्थात् युवक वासना से भरा होने के कारण जहाँ भी देखता है उनकी दृष्टि में विलासता रहती है। किसी युवती को वह निर्मल भावों से नहीं देखता। अतः मन्त्री शुकनास भी कहता है कि चन्द्रापीड की यह युवावस्था है। अतः उसे अपनी दृष्टि को निर्मल रखना चाहिए। उसमें विलासना नहीं रहनी चाहिए।

❐

◆ ***अपगतमले-हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।***

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अनुभवी विद्वान् शुकनास नामक मंत्री चन्द्रापीड से उपदेश की योग्यता बताते हुए कहता है–

सरलार्थ– निर्मल मन में उपदेश के गुण उसी प्रकार आ जाते हैं जैसे निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश कर जाती है।

भावार्थ– स्फटिक मणि श्वेत व पारदर्शी होती है। जब उस पर चन्द्रमा की किरणें पड़ती हैं तो वह स्फटिक मणि भी चन्द्र किरणों के समान चमकती है। शुकनास मंत्री भी चन्द्रापीड से कहता है कि उपदेश गुण या विशेषताएँ उसी पर अपना प्रभाव दिखाती हैं जिसका मन निर्मल हो, जिस मन में राग, द्वेष, विषयासक्ति व मान, मोह आदि न रहे। वह चन्द्रापीड को इसी प्रकार का निर्मल चित्त वाला समझता है जो उपदेश का पात्र है अर्थात् उपदेश को सुनकर उस पर चल सकता है। जो उपदेश का आचरण करता है उसी के लिए ही उपदेश सार्थक होता है, अन्यथा उपदेश देना व्यर्थ सिद्ध होता है।

❐

◆ ***गुरुवचनममलमपि सलिलमपि महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।***

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्यसाहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अनुभवी वयोवृद्ध शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को यह स्पष्ट करता है कि दुष्टों के लिए उपदेश का कोई महत्त्व नहीं है और कहता है–

सरलार्थ– दोषरहित भी गुरु के वचन दुष्ट पुरुष के कानों में जाकर वैसे ही बहुत कष्ट प्रदान करता है जैसे निर्मल जल कानों में पड़ने पर कष्टदायक होता है।

भावार्थ– जल चाहे कितना ही विशुद्ध व निर्मल हो यदि वह कानों में पड़ जाता है तो कानों में पीड़ा होने लगती है उसी प्रकार गुरु के उपदेश को दुष्ट यदि सुनते हैं तो इससे उन्हें लाभ नहीं होता बल्कि वे कष्ट का अनुभव करते हैं। वे समझते हैं कि ये नीरस बातें जीवन को सुखी नहीं बना सकती। हमारी विषयवासनाओं और आनन्ददायक कुकृत्यों को पूरा नहीं कर सकती है। शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को भी यही समझाता है कि तुम जैसे ही निर्मल बुद्धि वाले उपदेश को ग्रहण कर सकते हैं। अभव्य या दुष्ट व्यक्ति उपदेशों का ठीक प्रकार से नहीं समझते।

❐

◆ ***गुरूपदेशः प्रशमहेतुवयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिज-जालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति।***

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। महान् विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को गुरू के उपदेश का महत्त्व प्रस्तुत करते हुए कहता है–

सरलार्थ– जिस प्रकार बुढ़ापा (आयु की अन्तिम अवस्था) केशों के समूह को सफेद बना देता है उसी प्रकार शान्ति प्रदान करने वाला गुरू का उपदेश दोषों को गुणों में बदल देता है।

भावार्थ– जैसे वृद्धावस्था अत्यन्त शान्ति का कारण होती है परन्तु इस अवस्था में काले बाल सफेद हो जाते हैं उसी प्रकार गुरू का उपदेश शान्ति प्रदान करने वाला होता है तथा दोषों के समूह को निर्मल बना देता है अर्थात् गुरू के उपदेश से दोष समाप्त हो जाते हैं और गुण आने लगते हैं जिससे पापी, दोषी या दुष्ट व्यक्ति भी गुणवान्, श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति बन जाता है। गुरू के उपदेश की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

❒

◆ ***कुसुमशर-शर-प्रहार-जर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्।***

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के शुकनासोपदेश से उद्धृत है। गुरू का उपदेश कामुक व्यक्ति के हृदय में नहीं रहता–इस कथन को स्पष्ट करते हुए शुकनास चन्द्रापीड से कहते हैं–

सरलार्थ– जिसका हृदय कामदेव के बाणों के प्रहार से अनेक छिद्र वाला हो गया है उसमें से गुरू का उपदेश जल के समान निकल जाता है।

भावार्थ– जिस पात्र में अनेक छेद (छिद्र) होते हैं जैसे उसमें पानी नहीं ठहरता, बल्कि निकल जाता है। उसी प्रकार जिसका हृदय कामवासना से भरा हुआ है उसके हृदय में गुरू का उपदेश नहीं रहता है। क्योंकि काम के प्रति उसकी आसक्ति इतनी अधिक हो जाती है कि वह उत्तम मार्ग पर चलने की कभी नहीं सोचता है। अतः गुरू के उपदेश के लिए स्वच्छ तथा वासनारहित हृदय होना चाहिए। शुकनास चन्द्रापीड से यही कहते हैं कि तुमने अभी काम-वासनाओं का सेवन नहीं किया है अतः तुम्हें उपदेश देने का यह उचित समय है जबकि तुम उपदेश को ठीक प्रकार से प्राप्त कर सको।

❒

◆ ***अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा अविनयस्य।***

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। शुकनास नामक मंत्री दुष्ट व्यक्ति को उपदेश देना व्यर्थ समझते हैं और चन्द्रापीड से कहते हैं–

सरलार्थ– बुरे स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए कुल या शास्त्र विनय का कारण नहीं होता है।

भावार्थ– जिस व्यक्ति का स्वभाव दुष्ट है वह सदा ही दुष्टता करता है। यदि वह उच्च कुल में भी पैदा होता है तो अपने बुरे स्वभाव को नहीं छोड़ता है। यदि वह शास्त्रों का ज्ञान भी प्राप्त करता है तो भी विनयशील नहीं बनता है। क्योंकि उसके मूल में दुष्टता रहती है। इसी कारण शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को समझाता है कि तुम्हारा अच्छा स्वभाव है, तुम उच्चकुल में पैदा भी हुए हो इसी कारण विनयशील हो। स्वभाव ही सर्वोपरि होता है। जैसे कहा गया है–स्वभाव एवात्र तथा तिरिच्यते।

❒

◆ ***चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः?***

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। महान् विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश के लिए स्वभाव को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहता है–

सरलार्थ– क्या चन्दन से उत्पन्न अग्नि नहीं जलाती है?

भावार्थ– अग्नि का स्वभाव जलाना है वह अच्छे से अच्छे पदार्थ को जलाकर भस्म कर देती है। वह अग्नि चाहे किसी से भी पैदा हुई हो। चन्दन की लकड़ी शीतलता प्रदान करने वाली होती है परन्तु उस लकड़ी में लगी हुई आग पदार्थों को जलाने वाली ही होगी। इसी प्रकार जो व्यक्ति दुष्ट होता है वह दुष्टता ही करता है। भले ही, उसकी उत्पत्ति उच्चवंश में हुई हो। क्योंकि मानव का स्वभाव सबसे बड़ा होता है। भले ही, वह उच्च कुल में पैदा हुआ हो। शुकनास चन्द्रापीड के स्वभाव से संतुष्ट है। वह अग्नि के समान नहीं है।

❒

◆ *गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। शुकनास नामक मंत्री गुरू के उपदेश के महत्त्व को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

सरलार्थ— गुरू का उपदेश, पुरुषों के समस्त दोषों (मल) को धोने में समर्थ, बिना जल का स्नान है।

भावार्थ— जैसे शरीर का मैल उतारने के लिए स्वच्छ जल से शरीर धोना पड़ता है वैसे गुरू का उपदेश नहीं है। उससे तो मानव के अन्दर का मैल धुलता है अर्थात् गुरू का उपदेश जलमय नहीं होता है फिर भी उससे अन्दर के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष दूर हो जाते हैं और मानव का चित्त निर्मल तथा निर्दोष बन जाता है। यह कार्य स्वच्छ जल नहीं कर सकता है। अतः जल की अपेक्षा मानव मन को स्वच्छ करने वाला गुरु का उपदेश महत्त्वपूर्ण होता है।

❐

◆ *न ह्येवंविधमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अनुभवी विद्वान् शुकनास लक्ष्मी के दोष के विषय में कहते (लक्ष्मी) हैं—

सरलार्थ— संसार में इस प्रकार से अपरिचित कोई नहीं है जैसी कि यह दुष्टा है।

भावार्थ— लक्ष्मी एक नारी है। भारतीय नारी केवल एक ही पुरुष के साथ रहती है, अन्य लोगों से अपना निरर्थक मेल नहीं रखती है, परन्तु लक्ष्मी ऐसी नारी है जो संसार के प्रत्येक व्यक्ति से परिचय रखती है। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा हो, दुष्ट हो या सज्जन हो, पापी हो या धर्मात्मा हो—सभी से इस लक्ष्मी का परिचय है। यह इसकी नीचता है। इसी कारण शुकनास मंत्री लक्ष्मी को अनार्या—अर्थात् दुराचारिणी या दुष्टा कहकर पुकारते हैं क्योंकि धन-दौलत, रुपये पैसे से सभी परिचित रहते हैं।

❐

◆ *परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। मान्य शुकनास मंत्री लक्ष्मी के अपवित्र आचरण को बताता है—

सरलार्थ— यह लक्ष्मी इन्द्रजाल (जादू) को दिखाती हुई मानो परस्पर विरुद्ध अपने चरित्र को प्रदर्शित करती है।

भावार्थ— जिस प्रकार जादू में विरोधी बातें दिखाई पड़ती हैं अर्थात् कभी कोई वस्तु छोटी तो कभी बड़ी दिखाई देती है। तभी उसका आकार दिखाई पड़ता है तो कभी वह निराकार हो जाती है वैसे ही लक्ष्मी का स्वभाव भी विरोधी विशेषताओं को लिए हुए है। वह जिसके पास जाती है उसकी उन्नति हो जाती है परन्तु उसमें नीचता आ जाती है। क्योंकि जो धन-सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है वह धन में बड़ा हो जाता है, परन्तु उसमें विविध दोष आने लगते हैं। लक्ष्मी जल से (समुद्र से) पैदा हुई है फिर भी तृष्णा या लालसा को बढ़ाने वाली है। इस प्रकार लक्ष्मी विरोधी स्वभाव वाली है।

❐

◆ *न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट् **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। सुयोग्य विद्वान् शुकनास लक्ष्मी की विचित्र दशा का चित्रण करता हुआ कहता है—

सरलार्थ— मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता हूँ जो इस लक्ष्मी से अपरिचित रहा हो या जिसको इसने धोखा न दिया हो।

भावार्थ— शुकनास कहते हैं कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति लक्ष्मी से परिचित है इसके रूप व आकार को जानता है और इससे प्रेम व मोह करता है। कुछ लोभी तो लक्ष्मी को मरते-मरते भी नहीं छोड़ते। फिर भी, यह लक्ष्मी सभी को धोखा दे जाती है। ऐसा संसार में कोई व्यक्ति नहीं है जिसे इस लक्ष्मी ने धोखा न दिया हो। भाव यह है कि धन आदि से सभी प्रेम करते हैं, फिर भी यह निश्चल रूप से किसी के पास नहीं रहती, बल्कि धोखा देकर चली जाती है।

❐

◆ *आरूढ़प्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत गद्य साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को सुमार्ग पर चलने को प्रेरित करते हुए कहता है—

सरलार्थ— यह समय तुम्हारे लिए प्रताप को बढ़ाने के लिए है। जिस राजा का प्रताप बढ़ जाता है वह त्रिलोक-द्रष्टा के समान अपने आदेश में सफल होता है।

भावार्थ— शुकनास मंत्री चन्द्रापीड को समझाता है कि तुम अभी विषय-वासनाओं से लिप्त नहीं हो, समझदार हो, ज्ञानी हो व वीर हो। तुम राज्याभिषेक के पश्चात् दिग्विजय के लिए भ्रमण करके अपनी शक्ति का परिचय दो। शत्रुओं के शीश झुका दो तथा अपने पक्ष को उन्नति प्रदान करो। परिणामस्वरूप तुम्हारी आज्ञा को कोई भी तिरस्कार नहीं करेगा। जैसे त्रिलोकी भगवान की आज्ञा को सम्पूर्ण संसार मानता है वैसे ही तुम्हारा आदेश सभी को मान्य होगा। तुम्हारा प्रताप चारों ओर फैल जाएगा।

❒

◆ *अहंकार-दाह-ज्वर-मूर्च्छान्धकारिता-विह्वला हि राजप्रकृतिः।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य-साहित्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। सुयोग्य विद्वान् शुकनास चन्द्रापीड को राजा के स्वभाव के विषय में कहता है—

सरलार्थ— राजाओं का स्वभाव, अहंकाररूपी तेज तापमान के कारण होने वाली अचेतनता से अज्ञात और अस्थिर रहता है।

भावार्थ— जिस प्रकार किसी को बहुत तेज बुखार हो जाता है तथा तेज तापमान के कारण वह अचेतन (बेहोश) हो जाता है तब वह किसी को नहीं पहचानता, उसकी बुद्धि कार्य नहीं करती। उसी प्रकार जिस व्यक्ति में अहंकार आ जाता है वह उस अहंकार में इतना मस्त व नासमझ हो जाता है कि विवेक खो बैठता है। अच्छे-बुरे को नहीं पहचानता। अपने-पराए के भेद को भूल जाता है।

❒

◆ *लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अनुभवी व सुयोग्य मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों के विषय में कहता है—

सरलार्थ— (इस लक्ष्मी को) प्राप्त करने पर भी इसका बड़े कष्ट के साथ पालन किया जाता है।

भावार्थ— लक्ष्मी या धन-सम्पत्ति बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है। यदि राजा धन-सम्पत्ति या लक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं तो लक्ष्मी का पालन करना या उसकी रक्षा करना बहुत कठिन होता है। क्योंकि यह किसी न किसी बहाने चली जाती है। लक्ष्मी चञ्चला है, अतः अपने पास सुरक्षित रखने वाले व्यक्ति इसकी सुरक्षा में अनेक कष्टों को उठाते हैं।

❒

◆ *अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।*

प्रसंग— प्रस्तुत सूक्ति संस्कृत-गद्य के सम्राट **'बाणभट्ट'** द्वारा रचित **'कादम्बरी'** के **'शुकनासोपदेश'** से उद्धृत है। अनुभवी व सुयोग्य मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोषों के विषय में कहता है—

सरलार्थ— लक्ष्मी (धन) का अहंकार बहुत कठोर है जो अन्तिम अवस्था (बुढ़ापे) में भी शान्त नहीं होता है।

भावार्थ— जिसके पास लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) आ जाती है। वह व्यक्ति इतने मिथ्या अहंकार से भर जाता है कि अपन से अधिक शक्तिशाली किसी को नहीं समझता है। अपने को वह सबसे बड़ा भाग्यवान् मानता है। लक्ष्मी का यह झूठा घमण्ड इतना प्रभावशाली होता है कि यौवनावस्था में ही नहीं, बल्कि बुढ़ापे में लक्ष्मी का नशा शान्त नहीं होता है अर्थात् वृद्धावस्था में भी लक्ष्मी के कारण अहंकारी बना रहता है।

❖ ❖ ❖

पदरूपाणि 3

(क) शब्दरूपाणि

1. आत्मन् (आत्मा)

(म.द.वि. 2011)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पंचमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
संबोधन	हे आत्मन्!	हे आत्मानौ!	हे आत्मानः!

2. दण्डिन् (दण्ड धारण करने वाला)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दण्डी	दण्डिनौ	दण्डिनः
द्वितीया	दण्डिनम्	दण्डिनौ	दण्डिनः
तृतीया	दण्डिना	दण्डिभ्याम्	दण्डिभिः
चतुर्थी	दण्डिने	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
पंचमी	दण्डिनः	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
षष्ठी	दण्डिनः	दण्डिनोः	दण्डिनाम्
सप्तमी	दण्डिनि	दण्डिनोः	दण्डिषु
संबोधन	हे दण्डिन्!	हे दण्डिनौ!	हे दण्डिनः!

3. वाच् (वाणि)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पंचमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
संबोधन	हे वाक्!, हे वाग्	हे वाचौ!	हे वाचः!

4. सरित् (नदी)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सरित्	सरितौ	सरितः
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
पंचमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्
सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
संबोधन	हे सरित्!	हे सरितौ!	हे सरितः!

5. (क) सर्व (सब) पुंल्लिंग (म.द.वि. 2011)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

(ख) सर्व (सब) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पंचमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

(ग) सर्व (सब) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

6. (क) तद् (वह) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

(ख) तद् (वह) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पंचमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

(ग) तद् (वह) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

7. (क) एतद् (यह) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्	एतौ	एतान्
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

(ख) एतद् (यह) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्	एते	एताः
तृतीया	एतया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पंचमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः	एतासु

(ग) एतद् (यह) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एतत्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्	एते	एतानि
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु

8. (क) यद् (जो) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

(ख) यद् (जो) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पंचमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

(ग) यद् (जो) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

9. (क) किम् (कौन) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

(ख) किम् (कौन) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पंचमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

(ग) किम् (कौन) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

10. (क) इदम् (यह) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

(ख) इदम् (यह) स्त्रीलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमाः
तृतीया	अनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पंचमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः	आसु

(ग) इदम् (यह) नपुंसकलिंग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः	एषु

11. अस्मद् (मैं) (म.द.वि. 2011)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

12. युष्मद् (तुम)

(म.द.वि. 2011)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पंचमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

13. एक (एक)

विभक्ति	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्रथमा	एकः	एका	एकम्
द्वितीया	एकम्	एकाम्	एकम्
तृतीया	एकेन	एकया	एकेन
चतुर्थी	एकस्मै	एकस्यै	एकस्मै
पंचमी	एकस्मात्	एकस्याः	एकस्मात्
षष्ठी	एकस्य	एकस्याः	एकस्य
सप्तमी	एकस्मिन्	एकस्याम्	एकस्मिन्

(**विशेष**–'एक' शब्द के रूप केवल एकवचन में ही होते हैं।)

14. द्वि (दो)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वौ	द्वे	द्वे
द्वितीया	द्वौ	द्वे	द्वे
तृतीया	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
चतुर्थी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पंचमी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
षष्ठी	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः
सप्तमी	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः

(**विशेष**–'द्वि' शब्द के रूप केवल द्विवचन में ही होते हैं।)

15. त्रि (तीन)

विभक्ति	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्रथमा	त्रयः	तिस्रः	त्रीणि
द्वितीया	त्रीन्	तिस्रः	त्रीणि
तृतीया	त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभिः
चतुर्थी	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
पंचमी	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रिभ्यः
षष्ठी	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम्
सप्तमी	त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु

(**विशेष**–'त्रि' शब्द के रूप तीनों लिंगों में केवल बहुवचन में ही होते हैं।)

16. चतुर् (चार)

विभक्ति	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्रथमा	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
द्वितीया	चतुरः	चतस्रः	चत्वारि
तृतीया	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
चतुर्थी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
पंचमी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
षष्ठी	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
सप्तमी	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु

(विशेष–'चतुर्' शब्द के रूप केवल बहुवचन में ही होते हैं।)

17. पञ्चन् (पाँच)

विभक्ति	पुंल्लिगं	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
प्रथमा	पञ्च	पञ्च	पञ्च
द्वितीया	पञ्च	पञ्च	पञ्च
तृतीया	पञ्चभिः	पञ्चभिः	पञ्चभिः
चतुर्थी	पञ्चभ्यः	पञ्चभ्यः	पञ्चभ्यः
पंचमी	पञ्चभ्यः	पञ्चभ्यः	पञ्चभ्यः
षष्ठी	पञ्चानाम्	पञ्चानाम्	पञ्चानाम्
सप्तमी	पञ्चसु	पञ्चसु	पञ्चसु

(विशेष–'पञ्चन्' शब्द के रूप केवल बहुवचन में ही होते हैं।)

❑

(ख) धातु रूपाधिक (आत्मनेपदे)

1. सेव् (सेवा करना)

लट् लकार (म.द.वि. 2011)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
मध्यम पुरुष	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उत्तम पुरुष	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लोट् लकार (म.द.वि. 2011)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
मध्यम पुरुष	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उत्तम पुरुष	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लृट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मध्यम पुरुष	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उत्तम पुरुष	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
मध्यम पुरुष	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उत्तम पुरुष	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

विधिलिङ्

प्रथम पुरुष	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
मध्यम पुरुष	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उत्तम पुरुष	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

2. लभ् (प्राप्त करना)

लट् लकार (म.द.वि. 2011)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यम पुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तम पुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट् लकार (म.द.वि. 2011)

प्रथम पुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यम पुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तम पुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अलभत्	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यम पुरुष	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तम पुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यम पुरुष	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तम पुरुष	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

3. रुच् (अच्छा लगना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	रोचते	रोचेते	रोचन्ते
मध्यम पुरुष	रोचसे	रोचेथे	रोचध्वे
उत्तम पुरुष	रोचे	रोचावहे	रोचामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	रोचताम्	रोचेताम्	रोचन्ताम्
मध्यम पुरुष	रोचस्व	रोचेथाम्	रोचध्वम्
उत्तम पुरुष	रोचै	रोचावहै	रोचामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	रोचिष्यते	रोचिष्येते	रोचिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	रोचिष्यसे	रोचिष्येथे	रोचिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	रोचिष्ये	रोचिष्यावहे	रोचिष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अरोचत	अरोचेताम्	अरोचन्त
मध्यम पुरुष	अरोचथाः	अरोचेथाम्	अरोचध्वम्
उत्तम पुरुष	अरोचे	अरोचावहि	अरोचामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	रोचेत	रोचेयाताम्	रोचेरन्
मध्यम पुरुष	रोचेथाः	रोचेयाथाम्	रोचध्वम्
उत्तम पुरुष	रोचेय	रोचेवहि	रोचेमहि

4. मुद् (प्रसन्न होना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	मोदते	मोदेते	मोदन्ते
मध्यम पुरुष	मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे
उत्तम पुरुष	मोदे	मोदावहे	मोदामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्
मध्यम पुरुष	मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्
उत्तम पुरुष	मोदै	मोदावहै	मोदामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त
मध्यम पुरुष	अमोदथाः	अमोदेथाम्	अगोदध्वम्
उत्तम पुरुष	अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्
मध्यम पुरुष	मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्
उत्तम पुरुष	मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि

5. याच् (माँगना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	याचते	याचेते	याचन्ते
मध्यम पुरुष	याचसे	याचेथे	याचध्वे
उत्तम पुरुष	याचे	याचावहे	याचामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
मध्यम पुरुष	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
उत्तम पुरुष	याचै	याचावहै	याचामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	याचिष्यसे	याचिष्येथे	याचिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	याचिष्ये	याचिष्यावहि	याचिष्यामहि

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त
मध्यम पुरुष	अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्
उत्तम पुरुष	अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
मध्यम पुरुष	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
उत्तम पुरुष	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

उभयपदे धातुरूपाणि (उभयपदी धातुएँ)

1. कृ (करना) परस्मैपद

लट् लकार (म.द.वि. 2011)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरुष	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लोट् लकार (म.द.वि. 2011)

प्रथम पुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यम पुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तम पुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तम पुरुष	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यम पुरुष	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तम पुरुष	अकरवम्	अकरवाव	अकरवाम

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
मध्यम पुरुष	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उत्तम पुरुष	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

कृ (करना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
मध्यम पुरुष	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उत्तम पुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यम पुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यम पुरुष	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
मध्यम पुरुष	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उत्तम पुरुष	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

2. नी (ले जाना) परस्मैपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयति	नयतः	नयन्ति
मध्यम पुरुष	नयसि	नयथः	नयथ
उत्तम पुरुष	नयामि	नयावः	नयामः

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	नयतु	नयताम्	नयन्तु
मध्यम पुरुष	नय	नयतम्	नयत
उत्तम पुरुष	नयानि	नयाव	नयाम

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उत्तम पुरुष	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
मध्यम पुरुष	अनयः	अनयतम्	अनयत
उत्तम पुरुष	अनयम्	अनयाव	अनयाम

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	नयेत्	नयेताम्	नयेयुः
मध्यम पुरुष	नयेः	नयेतम्	नयेत
उत्तम पुरुष	नयेयम्	नयेव	नयेम

नी (ले जाना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयते	नयेते	नयन्ते
मध्यम पुरुष	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उत्तम पुरुष	नये	नयावहे	नयामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
मध्यम पुरुष	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
उत्तम पुरुष	नयै	नयावहै	नयामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
मध्यम पुरुष	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उत्तम पुरुष	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
मध्यम पुरुष	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
उत्तम पुरुष	अनये	अनयावहि	अनयामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
मध्यम पुरुष	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
उत्तम पुरुष	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

3. हृ (हरना) परस्मैपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हरति	हरतः	हरन्ति
मध्यम पुरुष	हरसि	हरथः	हरथ
उत्तम पुरुष	हरामि	हरावः	हरामः

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	हरतु	हरताम्	हरन्तु
मध्यम पुरुष	हर	हरतम्	हरत
उत्तम पुरुष	हराणि	हराव	हराम

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	हरिष्यसि	हरिष्यथः	हरिष्यथ
उत्तम पुरुष	हरिष्यामि	हरिष्यावः	हरिष्यामः

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अहरत्	अहरताम्	अहरन्
मध्यम पुरुष	अहरः	अहरतम्	अहरत
उत्तम पुरुष	अहरम्	अहराव	अहराम

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	हरेत्	हरेताम्	हरेयुः
मध्यम पुरुष	हरेः	हरेतम्	हरेत
उत्तम पुरुष	हरेयम्	हरेव	हरेम

हृ (हरना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हरते	हरेते	हरन्ते
मध्यम पुरुष	हरसे	हरेथे	हरध्वे
उत्तम पुरुष	हरे	हरावहे	हरामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
मध्यम पुरुष	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
उत्तम पुरुष	हरै	हरावहै	हरामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	हरिष्यसे	हरिष्येथे	हरिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	हरिष्ये	हरिष्यावहे	हरिष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अहरत	अहरेताम्	अहरन्त
मध्यम पुरुष	अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्
उत्तम पुरुष	अहरे	अहरावहि	अहरामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
मध्यम पुरुष	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
उत्तम पुरुष	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

4. भज् (सेवा करना) परस्मैपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भजति	भजतः	भजन्ति
मध्यम पुरुष	भजसि	भजथः	भजथ
उत्तम पुरुष	भजामि	भजावः	भजामः

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	भजतु	भजताम्	भजन्तु
मध्यम पुरुष	भज	भजतम्	भजत
उत्तम पुरुष	भजानि	भजाव	भजाम

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	भक्ष्यति	भक्ष्यतः	भक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	भक्ष्यसि	भक्ष्यथः	भक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	भक्ष्यामि	भक्ष्यावः	भक्ष्यामः

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अभजत्	अभजताम्	अभजन्
मध्यम पुरुष	अभजः	अभजतम्	अभजत
उत्तम पुरुष	अभजम्	अभजाव	अभजाम

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	भजेत्	भजेताम्	भजेयुः
मध्यम पुरुष	भजेः	भजेतम्	भजेत
उत्तम पुरुष	भजेयम्	भजेव	भजेम

भज् (सेवा करना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भजते	भजेते	भजन्ते
मध्यम पुरुष	भजसे	भजेथे	भजध्वे
उत्तम पुरुष	भजे	भजावहे	भजामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	भजताम्	भजेताम्	भजन्ताम्
मध्यम पुरुष	भजस्व	भजेथाम्	भजध्वम्
उत्तम पुरुष	भजै	भजावहै	भजामहै

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	भक्ष्यते	भक्ष्येते	भक्ष्यन्ते
मध्यम पुरुष	भक्ष्यसे	भक्ष्येथे	भक्ष्यध्वे
उत्तम पुरुष	भक्ष्ये	भक्ष्यावहे	भक्ष्यामहे

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अभजत	अभजेताम्	अभजन्त
मध्यम पुरुष	अभजथाः	अभजेथाम्	अभजध्वम्
उत्तम पुरुष	अभजे	अभजावहि	अभजामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	भजेत	भजेयाताम्	भजेरन्
मध्यम पुरुष	भजेथाः	भजेयाथाम्	भजेध्वम्
उत्तम पुरुष	भजेय	भजेवहि	भजेमहि

5. पच् (पकाना) परस्मैपद

(म.द.वि. 2011)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पचति	पचतः	पचन्ति
मध्यम पुरुष	पचसि	पचथः	पचथ
उत्तम पुरुष	पचामि	पचावः	पचामः

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	पक्ष्यसि	पक्ष्यथः	पक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	पक्ष्यामि	पक्ष्यावः	पक्ष्यामः

(म.द.वि. 2011)

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	पचतु	पचताम्	पचन्तु
मध्यम पुरुष	पच	पचतम्	पचत
उत्तम पुरुष	पचानि	पचाव	पचाम

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
मध्यम पुरुष	अपचः	अपचतम्	अपचत
उत्तम पुरुष	अपचम्	अपचाव	अपचाम

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	पचेत्	पचेताम्	पचेयुः
मध्यम पुरुष	पचेः	पचेतम्	पचेत
उत्तम पुरुष	पचेयम्	पचेव	पचेम

पच् (पकाना) आत्मनेपद

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पचते	पचेते	पचन्ते
मध्यम पुरुष	पचसे	पचेथे	पचध्वे
उत्तम पुरुष	पचे	पचावहे	पचामहे

लृट् लकार

प्रथम पुरुष	पक्ष्यते	पक्ष्येते	पक्ष्यन्ते
मध्यम पुरुष	पक्ष्यसे	पक्ष्येथे	पक्ष्यध्वे
उत्तम पुरुष	पक्ष्ये	पक्ष्यावहे	पक्ष्यामहे

लोट् लकार

प्रथम पुरुष	पचताम्	पचेताम्	पचन्ताम्
मध्यम पुरुष	पचस्व	पचेथाम्	पचध्वम्
उत्तम पुरुष	पचै	पचावहै	पचामहै

लङ् लकार

प्रथम पुरुष	अपचत	अपचेताम्	अपचन्त
मध्यम पुरुष	अपचथाः	अपचेथाम्	अपचध्वम्
उत्तम पुरुष	अपचे	अपचावहि	अपचामहि

विधिलिङ् लकार

प्रथम पुरुष	पचेत	पचेयाताम्	पचेरन्
मध्यम पुरुष	पचेथाः	पचेयाथाम्	पचेध्वम्
उत्तम पुरुष	पचेय	पचेवहि	पचेमहि

❖ ❖ ❖

छंदासि 5

छन्द का सामान्य परिचय

काव्य दो प्रकार के होते हैं—1. गद्यकाव्य, 2. पद्यकाव्य। पद्य में छन्दों का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में छन्द दो प्रकार के होते हैं—1. वर्णिक छन्द। 2. मात्रिक छन्द।

1. **वर्णिक छन्द**—वर्णिक छन्दों में वर्णों की गणना की जाती है। आधे वर्ण या व्यञ्जन को छोड़ दिया जाता है। आर्या आदि वर्णिक छन्द हैं।
2. **मात्रिक छन्द**—मात्रिक छन्दों में मात्राओं का क्रम निश्चित रहता है। जैसे—इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी आदि मात्रिक छन्द हैं।

मात्राओं का परिचय

देवनागरी वर्णमाला में दो प्रकार के वर्ण होते हैं—1. स्वर, 2. व्यञ्जन। स्वर अलग से भी लिखे जाते हैं तथा मात्राओं द्वारा भी प्रस्तुत किए जाते हैं। व्यञ्जन की कोई मात्रा नहीं होती, बल्कि व्यञ्जन, स्वरों की सहायता से ही बोले जाते हैं और लिखे भी जाते हैं। मात्राएँ दो प्रकार की होती हैं—

(I) लघु = ह्रस्व = छोटी मात्रा। छन्द में इसकी एक मात्रा होती है, जिसका चिह्न '।' है। अ, इ, उ, ऋ—स्वरों की लघु मात्रा होती है। इन स्वरों की मात्राएँ जिन व्यञ्जनों के साथ मिली रहती हैं उनकी भी एक मात्रा होती है। जैसे—अनु। इव। उर। ऋषि।—यहाँ पर सर्वत्र लघु मात्राएँ हैं क्योंकि अ, इ, उ, ऋ तो लघु स्वर हैं। नु = न् + उ। व = व् + अ। र = र् + अ। षि = ष् + इ। अर्थात् यहाँ व्यञ्जनों के साथ लघु मात्रा वाले स्वर मिले हैं। अतः ये व्यञ्जन भी लघु हैं।

(II) गुरु = दीर्घ = बड़ी मात्रा। छन्द में इसकी दो मात्राएँ होती हैं, जिसका चिह्न 'S' है। निम्नलिखित रूपों में गुरु या दो मात्राएँ होती हैं—

(i) आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ—प्रत्येक स्वर की दो मात्राएँ होती हैं। जैसे—आओ (S S)।

(ii) यदि व्यञ्जनों के साथ इन स्वरों की मात्राएँ हो तो वहाँ भी दो मात्राएँ होती हैं। जैसे—सीता (S S)।

(iii) जिस वर्ण के पश्चात् विसर्ग होता है वह भी गुरु या दो मात्रा वाला होता है। जैसे—रामः (S S)।

(iv) जिस वर्ण के पश्चात् आधा व्यञ्जन होता है उस वर्ण की दो मात्राएँ होती हैं। जैसे—कृष्णा (S S)।

(v) किसी वर्ण पर यदि अनुस्वार या अनुनासिक होता है तो उसकी भी दो मात्राएँ होती हैं। जैसे—रामम् (S S)। अलंकार (। S S।)। काँस्कान् (S S)।

गणों का प्रयोग

मात्राओं के म का ज्ञान करने के लिए गणों का प्रयोग किया जाता है। तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। गण आठ होते हैं। जिनके यह प्रसिद्ध सूत्र है।

ISSSISIIIS
यमाताराजभानुसलगाः।

	नाम	चिन्ह	सूत्र-निर्देश	उदाहरण
1.	यगण	I S S	यमाता	हिमानी।
2.	मगण	S S S	मातारा	आभारी।
3.	तगण	S S I	ताराज	प्रासाद।
4.	रगण	S I S	राजभा	कामना।
5.	जगण	I S I	जभानु	सजीव।
6.	भगण	S I I	भानुस	पावन।
7.	नगण	I I I	नुसल	पवन।
8.	सगण	I I S	सलगाः	सरला।

पाठ्यक्रम में निर्धारित छंदों का विवेचन

1. स्रग्धरा

लक्षण – **म्रभ्नै र्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक रगण, एक भगण एक नगण तथा तीन यगण हों, वह स्रग्धरा छन्द होता है। इसमें सात, सात, सात (त्रिमुनि) पर विराम होता है।

उदाहरण – **ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः,**
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
शष्पैरर्धावलीढैः श्रमवितत मुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा,
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।

गणों का प्रयोग–

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
ग्रीवाभं-	गाभिरा	मं मुहु-	रनुप-	तति स्य-	न्दने द-	त्तदृष्टिः,
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
पश्चार्धे-	न प्रवि-	ष्टः शर-	पतन	भयाद् भू-	यसा पू-	र्वकायम्।
S S I	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S S
शष्पैर-	र्धावली-	ढैः श्रम-	वितत-	मुखभ्रं-	शिभिः की-	र्णवर्त्मा,
S S S	S I S	S I I	I I I	I S S	I S S	I S I(S)
पश्योद-	ग्रप्लुत-	त्वाद् विय-	ति बहु-	तरं स्तो-	कमुर्व्यां	प्रयाति।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण तथा तीन यगण हैं। अतः यह स्रग्धरा छंद का उदाहरण है। छन्द शास्त्र के नियमानुसार चतुर्थ चरण का अन्तिम वर्ण लघु होकर भी गुरु माना जाता है।

अन्य उदाहरण – **या स्रष्टुः सृष्टिराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,**
ये द्वेकालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।

2. वंशस्थ

(म.द.वि. 2011)

लक्षण – **जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण, एक जगण तथा एक रगण होता है, वह वंशस्थ छन्द कहा जाता है।

उदाहरण – **तथा समक्षं दहता मनोभवं**
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती,
प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता।।

गणों का प्रयोग–

जगण	तगण	जगण	रगण
ISI	SSI	ISI	SIS
तथास-	म क्षं द-	हता म-	नोभवं
जगण	तगण	जगण	रगण
ISI	SSI	ISI	SIS
पिनाकि	ना भग्न-	मनोर-	था सती।
जगण	तगण	जगण	रगण
ISI	SSI	ISI	SIS
निनिन्द	रूपं हृ-	दयेन	पार्वती,
जगण	तगण	जगण	रगण
ISI	SSI	ISI	SIS
प्रियेषु	सौभाग्य-	फलाहि	चारुता।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण, एक जगण तथा एक रगण है। अतः यह वंशस्थ छन्द का उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **सुधा सदानन्द पयोदसुन्दरं,**
जगन्निवासं तडिदम्बरं वरम्।
सहीरहारावलि भाविभासितं,
नमामि धन्वन्तरिपादपंकजम्।

3. शिखरिणी

लक्षण – **रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक भगण, एक लघु तथा एक गुरु होता है, छ (रस) और ग्यारह (रुद्र) वर्णों के बाद विराम होता है वह शिखरिणी छन्द कहा जाता है।

उदाहरण – **अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,**
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः,

क्वचित् पुण्यारण्ये शिवशिव-शिवेति प्रलपतः।।

गणों का प्रयोग–

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	लघु	गुरु
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।	ऽ
अहौ वा	हारे वा	बलव-	ति रिपौ	वा सुहृ-	दि	वा,

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	लघु	गुरु
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।	ऽ
मणौ वा	लोष्ठे वा	कुसुम-	शयने	वा दृष-	दि	वा।

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	लघु	गुरु
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।	ऽ
तृणे वा	स्त्रैणे वा	मम स-	मदृशो	यान्तु दि	व	साः,

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	लघु	गुरु
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।	ऽ
क्वचित् पु-	ण्यारण्ये	शिवशि-	वशिवे-	ति प्रल-	प	तः।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक भगण, एक लघु व एक गुरु है। अतः यह शिखरिणी छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै,**
रत्नाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

4. मन्दाक्रान्ता

(म.द.वि. 2011)

लक्षण – **मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगै र्मो भनौ तौ गयुग्मम्।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा दो गुरु होते हैं, वह मन्दाक्रान्ता छन्द कहा जाता है। इसमें चार (अम्बुधि), छ (रस) तथा सात (नग) के बाद विराम होता है।

उदाहरण – **मौनान् मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा,**
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।।

गणों का प्रयोग–

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गुरु गुरु
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ
मौनान् मू-	कः प्रव-	चनप-	टुश्चाटु-	लो जल्प-	को वा,

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गुरु गुरु
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ
धृष्टः पा-	र्श्वे वस-	ति च स-	दा दूर-	तश्चाप्र-	गल्भः।

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गुरु गुरु
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ
क्षान्त्या भी-	रु र्यदि	न सह-	ते प्राय-	शो नाभि	जातः,

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गुरु गुरु
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽऽ
सेवाध-	र्मः पर-	म गह-	नो योगि-	नामप्य-	गम्यः।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण तथा दो गुरु हैं, अतः यह मन्दाक्रान्ता छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं,**
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां,
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम्।।

5. वसंततिलका

लक्षण – **उक्ता वसन्ततिलका तभजाः जगौ गः।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक तगण, एक भगण, दो जगण तथा दो गुरु होते हैं, वह वसंततिलका छन्द कहा जाता है।

उदाहरण – **प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,**
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।।

गणों का प्रयोग–

तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु गुरु
SSI	SII	ISI	ISI	SS
प्रारभ्य-	ते न ख-	लु विघ्न-	भयेन	नीचैः,

तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु गुरु
SSI	SII	ISI	ISI	SS
प्रारभ्य	विघ्नवि-	हता वि-	रमन्ति	म ध्याः।

तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु गुरु
SS I	SII	ISI	ISI	S S
विघ्नैः पु-	नः पुन-	रपि प्र-	तिहन्य-	मा नाः,

तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु गुरु
SSI	SII	IS I	ISI	S I(S)
प्रारब्ध-	मुत्तम-	जना न	परित्य-	ज न्ति।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक तगण, एक मगण, दो जगण तथा दो गुरु हैं। अतः यह वसंततिलका छन्द का उपयुक्त उदाहरण है। अन्तिम चरण का अन्तिम वर्ण लघु होने पर छन्द शास्त्र के नियम के अनुसार गुरु हो जाता है।

अन्य उदाहरण – **निन्दन्तु नीतिनिगुणा यदि वा स्तुवन्तु,**
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

6. शार्दूलविक्रीडितम्

लक्षण – **सूर्याश्वै र्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण तथा एक गुरु होते हैं, वह शार्दूलविक्रीडित छन्द कहा जाता है। इस छन्द में बारह (सूर्य) तथा सात (अश्व) के बाद विराम होता है।

उदाहरण – **रे रे चातक सावधानमनसा, मित्र! क्षणं श्रूयतां**
अम्भोदा बहवो भवन्ति गगने सर्वे तु नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचित् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।।

गणों का प्रयोग–

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तमण	गुरु
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S
रे रे चा-	तक सा-	वधान-	मनसा	मित्र! क्ष-	णं श्रूय-	ताम्,

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गुरु
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S
अम्भोदा	बहवो	भवन्ति	गगने	सर्वे तु	नैतादृ-	शाः।

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गुरु
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S
केचिद् वृ-	ष्टिभिरा	र्द्रयन्ति	वसुधां	गर्जन्ति	केचित् वृ-	था,

मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गुरु
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S
यं यं प-	श्यसि त-	स्य तस्य	पुरतो	मा ब्रूहि	दीनं व-	चः।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण तथा एक गुरु है। अतः यह शार्दूलविक्रीडित छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं,**
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेश गमनेविद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूजिता नहि धनं विद्याविहीनः पशुः।।

7. अनुष्टुप्

लक्षण – **श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं, सर्वत्र लघु पञ्चमम्।**
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अर्थ – अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण में छठा वर्ण गुरु होता है तथा पाँचवा वर्ण लघु होता है। दूसरे और चौथे चरण में सातवां वर्ण लघु होता है तथा पहले और तीसरे चरण में सातवां वर्ण गुरु होता है।

उदाहरण – **आचारः परमो धर्म, आचारः परमं तपः।**
आचारः परमं ज्ञानमाचारात् किं न साध्यते।।

मात्रा चिन्ह – इस उदाहरण के श्लोक में चार चरण हैं। प्रत्येक चरण में आठ-आठ वर्ण हैं (आधे वर्ण को छोड़ दिया गया है।) इन पर लघु-गुरु मात्राओं के चिन्ह इस प्रकार हैं–

	IS	S
आचारः	परमो	धर्म :
1 2 3	456	78

	IS	I
आचारः	परमं	तपः।
1 2 3	456	78

	IS	S
आचारो	परमं	ज्ञाम्
1 2 3	456	78

	I	S	I
आचारात्	किं	न	साध्यते।।
1 2 3	4	5	678

स्पष्टीकरण – यहाँ पर श्लोक के चारों चरणों (भागों) को अलग-अलग दिखाया गया है। लक्षण के अनुसार इस उदाहरण में चारों चरणों में छठा वर्ण गुरु व पाँचवां वर्ण लघु है। पहले व तीसरे चरण में सातवां वर्ण गुरु तथा दूसरे और चौथे में सातवां वर्ण लघु है। इस कारण यह अनुष्टुप् छंद का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

8. आर्या

लक्षण – **यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा च तृतीयेऽपि।**
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

अर्थ – जिस श्लोक के पहले तथा तृतीय चरण में बारह-बारह मात्राएं हों, द्वितीय चरण में 18 मात्राएं हों और चौथे चरण में 15 मात्राएँ हों, उसे आर्या छन्द कहते हैं।

उदाहरण – **आपरितोषाद् विदुषां, न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।**
बलवदपि शिक्षितानां, आत्मन्यप्रत्ययं चेतः।।

मात्रा चिन्ह – इस उदाहरण में चार चरण हैं। जिनके प्रत्येक चरण में मात्राएँ इस प्रकार हैं–

चरण I – S I I S S I I S = 12 मात्राएँ।
आपरितोषाद् विदुषां

चरण II – I S I S S I S I S S S = 18 मात्राएँ।
न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

चरण III – I I I I I S I S S = 12 मात्राएँ।
बलवदपि शिक्षितानां

चरण IV – S S S S I S S S = 15 मात्राएँ।
आत्मन्यप्रत्ययं चेतः।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण में S = गुरु = दो मात्राओं तथा । = लघु = एक मात्रा का चिन्ह है। उदाहरण में पहले चरण में 12, दूसरे चरण में 18, तीसरे चरण में–12, तथा चौथे चरण में 15 मात्राएँ होने से यह आर्या छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – दानं भोगो नाशस् तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गति र्भवति।।

9. इन्द्रवज्रा

लक्षण – **स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।**

अर्थ – इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु होते हैं।

उदाहरण – **अर्थो हि कन्या परकीय एव,**
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं,
प्रत्यर्पित न्यास इवान्तरात्मा।।

गणों का प्रयोग–

तगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
अर्थो हि	कन्या प-	रकीय	एव,
तगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
तामद्य	संप्रेष्य	परिग्र-	हीतुः।
तगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
जातो म-	मायं वि-	शदः प्र-	कामं,
तगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
प्रत्यर्पि-	तन्यास	इवान्त-	रात्मा।।

स्पष्टीकरण – प्रस्तुत उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण (ऽ ऽ ।), एक जगण (। ऽ ।) तथा दो गुरु हैं। परन्तु प्रथम पंक्ति के अन्त में लघु है। छन्द शास्त्र के नियम के अनुसार चरण का अन्तिम वर्ण गुरु माना जाता है यदि आवश्यक हो। अतः उसे गुरु मानने पर यह इन्द्रवज्रा छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके,**
चत्वारिचिन्हानि वसन्ति देहे।
दान प्रसंगो मधुरा च वाणी,
देवार्चनं पण्डिततर्पणञ्च।।

10. उपेन्द्रवज्रा

लक्षण – **उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण, एक तगण, एक जगण तथा दो गुरु होते हैं, उसमें उपेन्द्रवज्रा नामक छन्द होता है।

उदाहरण – **त्वमेव माता च पिता त्वमेव,**
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

गणों का प्रयोग–

जगण	तगण	जगण	दो गुरु
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
त्वमेव	माता च	पिता त्व-	मे व,
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
त्वमेव	बन्धुश्च	सखा त्व-	मे व,
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
त्वमेव	विद्या द्र-	विणं त्व-	मे व,
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
त्वमेव	सर्वं म-	म दे व	दे व,

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक जगण (। ऽ ।), एक तगण (ऽ ऽ ।), एक जगण (। ऽ ।) और दो गुरु हैं। प्रत्येक चरण का अन्तिम वर्ण लघु है जो छन्द शास्त्र के नियम के अनुसार गुरु मान लिया जाता है। अतः यह उपेन्द्रवज्रा छन्द का उपयुक्त उदाहरण है।

अन्य उदाहरण – **पिता सखायो गुरवः स्त्रियश्च,**
न निर्गुणानां हि भवन्ति लोके।
अनन्यभक्ताः प्रियवादिनश्च,
हितश्च वश्याश्च भवन्ति राजन्।।

11. उपजाति

लक्षण – **अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ,**
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु,
वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

अर्थ – जिस छन्द में उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा छन्दों के चरण मिले रहते हैं। अर्थात् कभी इन्द्रवज्रा, तो कभी उपेन्द्रवज्रा या कभी एक चरण उपेन्द्रवज्रा का शेष चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं। इस प्रकार दोनों छन्दों के मिश्रण से बने छन्द को उपजाति छन्द कहते हैं।

उदाहरण – **येषां न विद्या न तपो न दानं,**
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः,
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

गणों का प्रयोग–

जगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
येषां न	विद्या न	तपो न	दानम्,
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
ज्ञानं न	शीलं न	गुणो न	धर्मः।
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
ते मृत्यु-	लोके भु-	वि भार-	भूताः,
जगण	तगण	जगण	दो गुरु
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ।(ऽ)
मनुष्य-	रूपेण	मृगाश्च-	रन्ति।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रथम तीन चरण इन्द्रवज्रा के हैं तथा अन्तिम चरण उपेन्द्रवज्रा का है। अतः इन्द्रवज्रा व उपेन्द्रवज्रा छन्दों के मिश्रण से यहाँ उपजाति छन्द है।

अन्य उदाहरण – **स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु,**
क्लिष्टं नु तावत् फलेव पुण्यम्।
असंनिवृत्यै तदतीतमेते,
मनोरथा नाम तटप्रपाताः।।

12. मालिनी

लक्षण – **ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।**

अर्थ – जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण, एक मगण तथा दो यगण होते हैं, उसे मालिनी छन्द कहते हैं। पढ़ते समय इस छन्द के आठ (भोगी) व सात (लोक) वर्णों के पश्चात् विराम (रुकना) होता है।

उदाहरण – **अतुलित-बलधामं, हेम शैलाभदेहं,**
दनुजवन कृशानु, ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशम्,
रघुपतिनिज भक्तं वातजातं नमामि।।

गणों का प्रयोग–

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	S S S	। S S	। S S
अतुलि-	त बल-	धामं हे-	म शैला	भदेहम्,
। । ।	। । ।	S S S	। S S	। S S
दनुज-	वनकृ-	शानु ज्ञा-	निनाम-	ग्रगण्यम्।
। । ।	। । ।	S S S	। S S	। S S
सकल	गण नि-	धानं वा-	नराणा-	मधीशं,
। । ।	। । ।	S S S	। S S	। S । (S)
रघुप-	तिनिज	भक्तं वा-	तजातं	नमामि।।

स्पष्टीकरण – इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण (। । ।), एक मगण (S S S) तथा दो यगण (। S S) हैं। अतः यह मालिनी छन्द का उदाहरण है। अन्तिम चरण का अन्तिम वर्ण छन्द शास्त्र के अनुसार लघु होकर भी गुरू माना जाता है।

अन्य उदाहरण – **गुणवद्गुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ,**
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्
भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।।

छंदों की पहचान

किसी श्लोक में छंद की पहचान करते समय निम्नलिखित जानकारी आवश्यक है–

1. प्रत्येक श्लोक में चार चरण (भाग) होते हैं। भले ही, वह श्लोक दो पंक्तियों का हो।
2. श्लोक में वर्ण गिनते समय आधे वर्णों को छोड़ देना चाहिए।
3. अनुष्टुप् छंद के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं।
4. मालिनी छंद के प्रत्येक चरण में पन्द्रह वर्ण होते हैं।
5. इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति इन तीनों छंदों के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं। अंतर इतना है–
   (i) इन्दवज्रा छंद के प्रत्येक चरण का प्रथम वर्ण सदा गुरु होता है।
   (ii) उपेन्द्रवज्रा छंद के प्रत्येक चरण का प्रथम वर्ण सदा लघु होता है।
   (iii) उपजाति छंद के किसी चरण का प्रथम वर्ण लघु होता है तथा किसी चरण का प्रथम वर्ण गुरु होता है क्योंकि यह छंद उपवज्रा तथा इन्द्रवज्रा के मिलने पर बनता है।
6. आर्या छंद के चारों चरणों के वर्ण समान नहीं होते।
7. जिस श्लोक के प्रत्येक चरण में 21 वर्ष होते हैं, वहां पर स्रग्धरा नामक छंद होता है।

नोट–छंद की पहचान करने के पश्चात् ही श्लोक में लघु-गुरु चिह्नों के आधार पर गण बनाने चाहिए जैसा कि छंदों के उदाहरणों में प्रस्तुत किया गया है।

❖ ❖ ❖